ॐ

श्रीमद्भगवद्गीता

पदच्छेद, अन्वय

और

साधारणभाषाटीकासहित

सजिल्द एक रुपया

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीमद्भगवद्गीता
पदच्छेद, अन्वय और
साधारणभाषाटीकासहित
गीताप्रेस, गोरखपुर

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९८५ से २०१६ तक १,४७,०००
सं० २०२० चतुर्दश संस्करण १५,०००
सं० २०२४ पञ्चदश संस्करण २५,०००
कुल १,८७,०००
एक लाख सत्तासी हजार

सजिल्द एक रुपया

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगीताजीकी महिमा

वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य वाणीद्वारा वर्णन करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें संपूर्ण वेदोंका सार-सार संग्रह किया गया है। इसका संस्कृत इतना सुन्दर और सरल है कि, थोड़ा अभ्यास करनेसे मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है; परन्तु इसका आशय इतना गम्भीर है कि, आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदा ही नवीन बना रहता है। एवं एकाग्रचित्त होकर श्रद्धा, भक्तिसहित विचार करनेसे इसके पद-पदमें परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। भगवान्‌के गुण, प्रभाव और मर्मका वर्णन जिस प्रकार इस गीताशास्त्रमें किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थोंमें मिलना कठिन है, क्योंकि प्रायः ग्रन्थोंमें कुछ-न-कुछ सांसारिक विषय मिला रहता है, परन्तु "श्रीमद्भगवद्गीता" एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र भगवान्‌ने कहा है कि जिसमें एक भी शब्द सदुपदेशसे खाली नहीं है। इसीलिये श्रीवेदव्यासजीने महाभारतमें गीताजीका वर्णन करनेके उपरान्त कहा है कि—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता सुगीता करनेयोग्य है, अर्थात् श्रीगीताजीको भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णु भगवान्‌के मुखारविन्दसे

निकली हुई है, (फिर) अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है ? तथा स्वयं भगवान्ने भी इसका माहात्म्य अन्तमें वर्णन किया है (अ० १८ श्लो० ६८ से ७१ तक)।

इस गीताशास्त्रमें मनुष्यमात्रका अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रममें स्थित होवे, परन्तु भगवान्में श्रद्धालु और भक्तियुक्त अवश्य होना चाहिये, क्योंकि अपने भक्तोंमें ही इसका प्रचार करनेके लिये भगवान्ने आज्ञा दी है तथा यह भी कहा है कि स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले मनुष्य भी मेरे परायण होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं (अ० ९ श्लो० ३२) एवं अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा मेरी पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त होते हैं (अ० १८ श्लो० ४६)। इन सबपर विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि परमात्माकी प्राप्तिमें सभीका अधिकार है।

परन्तु उक्त विषयके मर्मको न समझनेके कारण बहुत-से मनुष्य जिन्होंने श्रीगीताजीका केवल नाममात्र ही सुना है, वे कह दिया करते हैं कि गीता तो केवल संन्यासियोंके लिये ही है और वे अपने बालकोंको भी इसी भयसे श्रीगीताजीका अभ्यास नहीं कराते कि, गीताके ज्ञानसे कदाचित् लड़का घर छोड़कर संन्यासी न हो जाय, किन्तु उनको विचार करना चाहिये कि मोहके कारण अपने क्षात्र-धर्मसे विमुख होकर भिक्षाके अन्नसे निर्वाह करनेके लिये तैयार हुए अर्जुनने जिस परमरहस्यमय गीताके उपदेशसे आजीवन गृहस्थमें रहकर अपने कर्तव्यका पालन किया, उस गीताशास्त्रका यह उलटा परिणाम किस प्रकार हो सकता है।

अतएव कल्याणकी इच्छावाले मनुष्योंको उचित है कि

मोहको त्याग करके अतिशय श्रद्धा, भक्तिपूर्वक अपने बालकोंको अर्थ और भावके सहित श्रीगीताजीका अध्ययन करावें, एवं स्वयं भी इसका पठन और मनन करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर हो जायँ; क्योंकि अति दुर्लभ मनुष्यके शरीरको प्राप्त होकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी दुःखमूलक क्षणभंगुर भोगोंके भोगनेमें नष्ट करना उचित नहीं है ।

श्रीगीताका प्रधान विषय

श्रीगीताजीमें भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये मुख्य दो मार्ग बताये हैं—एक सांख्ययोग, दूसरा कर्मयोग । उनमें—

(१) संपूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भांति अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामय होनेसे मायाके कार्यरूप संपूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं; ऐसे समझकर मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होना (अ० ५ श्लो० ८,९) तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवके सिवा अन्य किसीके भी होनेपनेका भाव न रहना, यह तो सांख्ययोगका साधन है ।

(२) और सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि, असिद्धिमें समत्वभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवान्‌के ही लिये सब कर्मोंका आचरण करना (अ० २ श्लो० ४८; अ० ५ श्लो० १०) तथा श्रद्धा, भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर नाम, गुण और प्रभावसहित उनके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना (अ० ६ श्लो० ४७), यह निष्काम कर्मयोगका साधन है ।

उक्त दोनों साधनोंका परिणाम एक होनेके कारण वास्तवमें अभिन्न माने गये हैं (अ० ५ श्लो० ४,५), परंतु साधनकालमें अधिकारी-भेदसे दोनोंका भेद होनेके कारण दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न बताये गये हैं। (अ० ३ श्लो० ३), इसलिये एक पुरुष दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं चल सकता। जैसे श्रीगङ्गाजीपर जानेके दो मार्ग होते हुए भी एक मनुष्य दोनों मार्गोंद्वारा एक कालमें नहीं जा सकता। उक्त साधनोंमें कर्मयोगका साधन संन्यास-आश्रममें नहीं बन सकता, क्योंकि संन्यास-आश्रममें कर्मोंका स्वरूपसे भी त्याग कहा है और सांख्ययोगका साधन सभी आश्रमोंमें बन सकता है।

यदि कहो कि, सांख्ययोगको भगवान्‌ने संन्यासके नामसे कहा है, इसलिये उसका संन्यास-आश्रममें ही अधिकार है, गृहस्थमें नहीं; तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि दूसरे अध्यायमें श्लो० ११से३० तक जो सांख्यनिष्ठाका उपदेश किया गया है, उसके अनुसार भी भगवान्‌ने जगह-जगह अर्जुनको युद्ध करनेकी योग्यता दिखायी है। यदि गृहस्थमें सांख्ययोगका अधिकार ही नहीं होता तो इस प्रकार भगवान्‌का कहना कैसे बन सकता ? हां, इतनी विशेषता अवश्य है कि, सांख्यमार्गका अधिकारी देहाभिमानसे रहित होना चाहिये; क्योंकि जबतक शरीरमें अहंभाव रहता है, तबतक सांख्ययोगका साधन भली प्रकार समझमें नहीं आता, इसीसे भगवान्‌ने सांख्ययोगको कठिन बताया है (गीता अध्याय ५ श्लोक ६) और निष्काम कर्मयोग साधनमें सुगम होनेके कारण अर्जुनके प्रति जगह-जगह कहा है कि तूं निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ निष्काम कर्मयोगका आचरण कर।

अथ ध्यानम्

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

अर्थ—जिसकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए है, जिसकी नाभिमें कमल है, जो देवताओं-का भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगत्का आधार है, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त है, नीलमेघके समान जिसका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिसके सम्पूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियोंद्वारा ध्यान करके प्राप्त किया जाता है, जो संपूर्ण लोकोंका स्वामी है, जो जन्ममरणरूप भयका नाश करनेवाला है, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति, कमलनेत्र विष्णु भगवान्को मैं (शिरसे) प्रणाम करता हूं ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिसका गायन करते हैं, योगीजन ध्यानमें स्थित तद्गत हुए मनसे जिसका दर्शन करते हैं, देवता और असुरगण (कोई भी) जिसके अन्तको नहीं जानते, उस (परम पुरुष नारायण) देवके लिये मेरा नमस्कार है ।

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः ॥ १ ॥
गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ॥ २ ॥
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥ ३ ॥
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ ४ ॥
भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५ ॥
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ ६ ॥

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीत-
मेको देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥ ७ ॥

श्रीबाँकेविहारी

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

भाषाटीकासहित

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ११ तक दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान शूर-वीरोंकी गणना और सामर्थ्यका कथन, (१२—१९) दोनों सेनाओंकी शङ्ख-ध्वनिका कथन,(२०—२७) अर्जुनद्वारा सेनानिरीक्षणका प्रसङ्ग,(२८—४७) मोहसे व्याप्त हुए अर्जुनके कायरता, स्नेह और शोकयुक्त वचन ।

धृतराष्ट्र उवाच

युद्धके विषयमें धृतराष्ट्रका प्रश्न ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

पदच्छेदः

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, समवेताः, युयुत्सवः,
मामकाः, पाण्डवाः, च, एव, किम्, अकुर्वत, संजय ॥ १ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
	धृतराष्ट्र बोला—		
संजय	=हे संजय	कुरुक्षेत्रे	=कुरुक्षेत्रमें
धर्मक्षेत्रे	=धर्मभूमि	समवेताः	=इकट्ठे हुए

युयुत्सवः	= युद्धकी इच्छावाले	एव*	
		पाण्डवाः	= पाण्डुके पुत्रोंने
मामकाः	= मेरे	किम्	= क्या
च	= और	अकुर्वत	= किया

संजय उवाच

धृतराष्ट्रकृत प्रश्नके उत्तरमें द्रोणाचार्यके पास दुर्योधनके गमन-का वर्णन ।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

दृष्ट्वा, तु, पाण्डवानीकम्, व्यूढम्, दुर्योधनः, तदा,
आचार्यम्, उपसंगम्य, राजा, वचनम्, अब्रवीत् ॥ २ ॥

इसपर संजय बोला—

तदा	= उस समय	दृष्ट्वा	= देखकर
राजा	= राजा	तु	= और
दुर्योधनः	= दुर्योधनने	आचार्यम्	= द्रोणाचार्यके
व्यूढम्	= व्यूहरचनायुक्त	उपसंगम्य	= पास जाकर (यह)
पाण्डवानीकम्	= पाण्डवोंकी सेनाको	वचनम्	= वचन
		अब्रवीत्	= कहा

पाण्डवसेनाको देखनेके लिये गुरुसे दुर्योधन-की प्रार्थना ।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

पश्य, एताम्, पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य, महतीम्, चमूम्,
व्यूढाम्, द्रुपदपुत्रेण, तव, शिष्येण, धीमता ॥ ३ ॥

* यहां "एव" शब्द समुच्चयार्थ है ।

आचार्य	= हे आचार्य	व्यूढाम्	= व्यूहाकार खड़ी की हुई
तव	= आपके	पाण्डु-पुत्राणाम्	= पाण्डुपुत्रोंकी
धीमता	= बुद्धिमान्	एताम्	= इस
शिष्येण	= शिष्य	महतीम्	= बड़ी भारी
द्रुपदपुत्रेण	= द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा	चमूम्	= सेनाको
		पश्य	= देखिये

पाण्डवसेनाके प्रधान प्रधान महारथियों के नाम ।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः, युधि, युयुधानः, विराटः, च, द्रुपदः, च महारथः ॥ ४ ॥

अत्र	= इस (सेना) में	(सन्ति)	= हैं (जैसे)
महेष्वासाः	= बड़े बड़े धनुषोंवाले	युयुधानः	= सात्यकि
		च	= और
युधि	= युद्धमें	विराटः	= विराट
भीमार्जुन-समाः	= भीम और अर्जुनके समान	च	= तथा
		महारथः	= महारथी
शूराः	= बहुतसे शूरवीर	द्रुपदः	= राजा द्रुपद

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतुः, चेकितानः, काशिराजः, च, वीर्यवान्, पुरुजित, कुन्तिभोजः, च, शैब्यः, च, नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥

च	= और	पुरुजित्	= पुरुजित्
धृष्टकेतुः	= धृष्टकेतु	कुन्तिभोजः	= कुन्तिभोज
चेकितानः	= चेकितान	च	= और
च	= तथा	नरपुङ्गवः	= मनुष्योंमें श्रेष्ठ
वीर्यवान्	= बलवान्		
काशिराजः	= काशिराज	शैब्यः	= शैब्य

[„] युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

युधामन्युः, च, विक्रान्तः, उत्तमौजाः, च, वीर्यवान्,
सौभद्रः, द्रौपदेयाः, च, सर्वे, एव, महारथाः ॥ ६ ॥

च	= और	च	= और
विक्रान्तः	= पराक्रमी	द्रौपदेयाः	= द्रौपदीके पांचों पुत्र
युधामन्युः	= युधामन्यु		
च	= तथा		(यह)
वीर्यवान्	= बलवान्	सर्वे	= सब
उत्तमौजाः	= उत्तमौजा		
सौभद्रः	= सुभद्रापुत्र अभिमन्यु	एव	= ही
		महारथाः	= महारथी हैं

अपनी सेनाके प्रधानप्रधानशूर-वीरोंको जाननेके लिये गुरुसे दुर्योधनकी प्रार्थना

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम,
नायकाः, मम, सैन्यस्य, संज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते ॥ ७ ॥

द्विजोत्तम	= हे ब्राह्मणश्रेष्ठ	ते	= आपके
अस्माकम्	= हमारे पक्षमें	संज्ञार्थम्	= जाननेके लिये
तु	= भी	मम	= मेरी
ये	= जो जो	सैन्यस्य	= सेनाके
विशिष्टाः	= प्रधान हैं	(ये)	= जो जो
तान्	= उनको	नायकाः	= सेनापति हैं
	(आप)	तान्	= उनको
निबोध	= समझ लीजिये	ब्रवीमि	= कहता हूं

दुर्योधनद्वारा अपनी सेनाके प्रधान प्रधान महारथियों के नामोंका कथन।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कृपः, च, समितिंजयः,
अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, तथा, एव, च ॥ ८ ॥

एक तो स्वयम्—

भवान्	= आप	च	= तथा
च	= और	तथा	= वैसे
भीष्मः	= पितामह भीष्म	एव	= ही
च	= तथा	अश्वत्थामा	= अश्वत्थामा
कर्णः	= कर्ण	विकर्णः	= विकर्ण
च	= और	च	= और
समितिंजयः	= संग्रामविजयी	सौमदत्तिः	= सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा
कृपः	= कृपाचार्य		

दुर्योधनद्वारा अपनी सेना के शूरवीरों की प्रशंसा।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

अन्ये, च, बहवः, शूराः, मदर्थे, त्यक्तजीविताः,
नानाशस्त्रप्रहरणाः, सर्वे, युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

तथा–

अन्ये	= और	मदर्थे	= मेरे लिये
च	= भी	त्यक्त-जीविताः	= जीवनकी आशाको त्यागनेवाले
बहवः	= बहुतसे		
शूराः	= शूरवीर		
नानाशस्त्र-प्रहरणाः	= अनेक प्रकारके शस्त्र अस्त्रोंसे युक्त	सर्वे	= सबके सब
		युद्ध-विशारदाः	= युद्धमें चतुर हैं

दुर्योधनका पाण्डवसेना की अपेक्षा अपनी सेनाको अजेय बतलाना।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्,
पर्याप्तम्, तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

और–

भीष्माभि-रक्षितम्	= भीष्मपितामह-द्वारा रक्षित	बलम्	= सेना
अस्माकम्	= हमारी	अपर्याप्तम्	= सब प्रकारसे अजेय है
तत्	= वह	तु	= और

भीमाभि-रक्षितम्	= भीमद्वारा रक्षित	बलम्	= सेना
एतेषाम्	= इन लोगोंकी	पर्याप्तम्	= जीतनेमें सुगम है
इदम्	= यह		

भीष्मकी रक्षाके लिये द्रोणादि शूरवीरोंके प्रति दुर्योधन की प्रेरणा ।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिताः,
भीष्मम्, एव, अभिरक्षन्तु, भवन्तः, सर्वे, एव, हि ॥११॥

च	= इसलिये	सर्वे	= सबके सब
सर्वेषु	= सब	एव	= ही
अयनेषु	= मोर्चोंपर	हि	= निःसन्देह
यथा-भागम्	= अपनी अपनी जगह	भीष्मम्	= भीष्म-पितामहकी
		एव	= ही
अवस्थिताः	= स्थित रहते हुए	अभिरक्षन्तु	= सब ओरसे रक्षा करें
भवन्तः	= आपलोग		

दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये भीष्मका गर्जकर शङ्ख बजाना ।

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

तस्य, संजनयन्, हर्षम्, कुरुवृद्धः, पितामहः,
सिंहनादम्, विनद्य, उच्चैः, शङ्खम्, दध्मौ, प्रतापवान् ॥१२॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यसे कहते हुए दुर्योधनके वचनोंको सुनकर—

कुरुवृद्धः	= कौरवोंमें वृद्ध	संजनयन्	= उत्पन्न करते हुए
प्रतापवान्	= बड़े प्रतापी	उच्चैः	= उच्च स्वरसे
पितामहः	= { पितामह भीष्मने	सिंहनादम्	= { सिंहकी नाद-के समान
तस्य	= { उस(दुर्योधन) के (हृदयमें)	विनद्य	= गर्जकर
		शङ्खम्	= शङ्ख
हर्षम्	= हर्ष	दध्मौ	= बजाया

दुर्योधनकी सेना-में नाना प्रकारके बाजोंका भयंकर शब्द होना ।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

ततः, शङ्खाः, च, भेर्यः, च, पणवानकगोमुखाः,
सहसा, एव, अभ्यहन्यन्त, सः, शब्दः, तुमुलः, अभवत् ॥१३॥

ततः	= उसके उपरान्त	सहसा	= एक साथ
शङ्खाः	= शङ्ख	एव	= ही
च	= और	अभ्यहन्यन्त	= बजे
भेर्यः	= नगारे		(उनका)
च	= तथा	सः	= वह
		शब्दः	= शब्द
पणवानक-गोमुखाः	= { ढोल मृदङ्ग और नृसिंहादि बाजे	तुमुलः	= बड़ा भयङ्कर
		अभवत्	= हुआ

श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन-द्वारा शङ्खोंका बजाया जाना ।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

ततः, श्वेतैः, हयैः, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ,
माधवः, पाण्डवः, च, एव, दिव्यौ, शङ्खौ, प्रदध्मतुः ॥१४॥

ततः	= इसके अनन्तर	माधवः	= श्रीकृष्ण महाराज
श्वेतैः	= सफेद	च	= और
हयैः	= घोड़ोंसे	पाण्डवः	= अर्जुनने
युक्ते	= युक्त	एव	= भी
महति	= उत्तम	दिव्यौ	= अलौकिक
स्यन्दने	= रथमें	शङ्खौ	= शङ्ख
स्थितौ	= बैठे हुए	प्रदध्मतुः	= बजाये

[„] पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

पाञ्चजन्यम्, हृषीकेशः, देवदत्तम्, धनंजयः,
पौण्ड्रम्, दध्मौ, महाशङ्खम्, भीमकर्मा, वृकोदरः ॥१५॥

उनमें-

हृषीकेशः	= { श्रीकृष्ण महाराजने	देवदत्तम्	= { देवदत्त नामक शङ्ख (बजाया)
पाञ्चजन्यम्	= { पाञ्चजन्य नामक शङ्ख	भीमकर्मा	= { भयानक कर्मवाले
धनंजयः	= अर्जुनने		

वृकोदरः	=भीमसेनने	महाशङ्खम्	=महाशङ्ख
पौण्ड्रम्	=पौण्ड्र नामक	दध्मौ	=बजाया

युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवद्वारा शङ्खोंका बजाया जाना।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्रः, युधिष्ठिरः,
नकुलः, सहदेवः, च, सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

कुन्तीपुत्रः	=कुन्तीपुत्र	च	=तथा
राजा	=राजा		
युधिष्ठिरः	=युधिष्ठिरने	सहदेवः	=सहदेवने
अनन्तविजयम्	=अनन्तविजय नामक (और)	सुघोषमणिपुष्पकौ	=सुघोष और मणिपुष्पक नामवाले शङ्ख (बजाये)
नकुलः	=नकुल		

पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान-प्रधान योधाओंद्वारा शङ्खोंका बजाया जाना।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

काश्यः, च, परमेष्वासः, शिखण्डी, च, महारथः,
धृष्टद्युम्नः, विराटः, च, सात्यकिः, च, अपराजितः ॥१७॥

परमेष्वासः	=श्रेष्ठ धनुषवाला	शिखण्डी	=शिखण्डी
काश्यः	=काशिराज	च	=और
च	=और	धृष्टद्युम्नः	=धृष्टद्युम्न
महारथः	=महारथी	च	=तथा

विराटः	=राजा विराट	अपराजितः	=अजेय
च	=और	सात्यकिः	=सात्यकि

[,,] द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥१८॥

द्रुपदः, द्रौपदेयाः, च, सर्वशः, पृथिवीपते,
सौभद्रः, च, महाबाहुः, शङ्खान्, दध्मुः, पृथक्, पृथक् ॥१८॥

तथा—

द्रुपदः	=राजा द्रुपद	सौभद्रः	=सुभद्रापुत्र अभिमन्यु
च	=और	सर्वशः	=इन सबने
द्रौपदेयाः	=द्रौपदीके पांचों पुत्र	पृथिवीपते	=हे राजन्
		पृथक्	=अलग
च	=और	पृथक्	=अलग
महाबाहुः	=बड़ी भुजावाला	शङ्खान्	=शङ्ख
		दध्मुः	=बजाये

पाण्डवसेना-की शङ्खध्वनिसे धृतराष्ट्रपुत्रोंके हृदयोंका विदीर्ण होना ।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

सः, घोषः, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्,
नभः, च, पृथिवीम्, च, एव, तुमुलः, व्यनुनादयन् ॥१९॥

च	=और	तुमुलः	=भयानक
सः	=उस	घोषः	=शब्दने

नभः	=आकाश	धार्त-राष्ट्राणाम्	=धृतराष्ट्र-पुत्रोंके
च	=और	हृदयानि	=हृदय
पृथिवीम्	=पृथिवीको	व्यदारयत्	=विदीर्ण कर दिये
एव	=भी		
व्यनु-नादयन्	=शब्दायमान करते हुए		

दुर्योधनकी सेना-को युद्धके लिये तैयार देखकर दोनों सेनाओंके बीचमें रथ खड़ा करनेके लिये भगवान्‌के प्रति अर्जुनकी प्रेरणा

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

अथ, व्यवस्थितान्, दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वजः,
प्रवृत्ते, शस्त्रसंपाते, धनुः, उद्यम्य, पाण्डवः ॥२०॥
हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत ॥२१॥

महीपते	=हे राजन्	धार्तराष्ट्रान्	=धृतराष्ट्रपुत्रोंको
अथ	=उसके उपरान्त	दृष्ट्वा	=देखकर
कपिध्वजः	=कपिध्वज	तदा	=उस
पाण्डवः	=अर्जुनने	शस्त्रसंपाते प्रवृत्ते	=शस्त्र चलनेकी तैयारीके समय
व्यवस्थि-तान्	=खड़े हुए		

धनुः	= धनुष	अच्युत	= हे अच्युत
उद्यम्य	= उठाकर	मे	= मेरे
हृषीकेशम्	= हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराजसे	रथम्	= रथको
		उभयोः	= दोनों
		सेनयोः	= सेनाओंके
इदम्	= यह	मध्ये	= वीचमें
वाक्यम्	= वचन		
आह	= कहा	स्थापय	= खड़ा करिये

दुर्योधनकी सेनामें आये हुए शूरवीरोंको देखनेके लिये अर्जुनका स्वेच्छा प्रगट करना।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्, कैः, मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे ॥२२॥

यावत्	= जबतक	अस्मिन्	= इस
अहम्	= मैं	रणसमुद्यमे	= युद्धरूप व्यापारमें
एतान्	= इन		
अवस्थितान्	= स्थित हुए	मया	= मुझे
योद्धुकामान्	= युद्धकी कामना-वालोंको	कैः	= किन किनके
		सह	= साथ
निरीक्षे	= अच्छी प्रकार देख लूं (कि)	योद्धव्यम्	= युद्ध करना योग्य है

["] योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागताः,
धार्तराष्ट्रस्य, दुर्बुद्धेः, युद्धे, प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

और–

दुर्बुद्धेः	=दुर्बुद्धि	अत्र	=इस सेनामें
धार्तराष्ट्रस्य	=दुर्योधनका	समागताः	=आये हैं
युद्धे	=युद्धमें	(तान्)	=उन
प्रिय-चिकीर्षवः	=कल्याण चाहनेवाले	योत्स्य-मानान्	=युद्ध करनेवालोंको
ये	=जो जो	अहम्	=मैं
एते	=ये राजालोग	अवेक्षे	=देखूंगा

संजय उवाच

भगवान्‌का दोनों सेनाओंके बीचमें रथको खड़ा करना और अर्जुनके प्रति कौरवोंको देखनेके लिये आज्ञा देना ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम् ॥२४॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च, महीक्षिताम्,
उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरून्, इति ॥२५॥

संजय बोला—

भारत	= हे धृतराष्ट्र		च	= और
गुडाकेशेन	= अर्जुनद्वारा		सर्वेषाम्	= संपूर्ण
एवम्	= इस प्रकार		महीक्षिताम्	= राजाओंके सामने
उक्तः	= कहे हुए		रथोत्तमम्	= उत्तम रथको
हृषीकेशः	= महाराज श्रीकृष्ण-चन्द्रने		स्थापयित्वा	= खड़ा करके
			इति	= ऐसे
उभयोः	= दोनों		उवाच	= कहा कि
सेनयोः	= सेनाओंके		पार्थ	= हे पार्थ
मध्ये	= बीचमें		एतान्	= इन
भीष्मद्रोण-प्रमुखतः	= भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने		समवेतान्	= इकट्ठे हुए
			कुरून्	= कौरवोंको
			पश्य	= देख

अर्जुनका दोनों सेनामें स्थित हुए बान्धवोंको देखना ।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थः, पितॄन्, अथ, पितामहान्,
आचार्यान्, मातुलान्, भ्रातॄन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन्,
तथा, श्वशुरान्, सुहृदः, च, एव, सेनयोः, उभयोः, अपि ।

अथ	= उसके उपरान्त	मातुलान्	= मामोंको
पार्थः	= पृथापुत्र अर्जुनने	भ्रातृन्	= भाइयोंको
तत्र	= उन	पुत्रान्	= पुत्रोंको
उभयोः	= दोनों	पौत्रान्	= पौत्रोंको
अपि	= ही	तथा	= तथा
सेनयोः	= सेनाओंमें	सखीन्	= मित्रोंको
स्थितान्	= स्थित हुए	श्वशुरान्	= ससुरोंको
पितृन्	= { पिताके भाइयोंको	च	= और
		सुहृदः	= सुहृदोंको
पितामहान्	= पितामहोंको	एव	= भी
आचार्यान्	= आचार्योंको	अपश्यत्	= देखा

["] तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून्, अवस्थितान् ॥
कृपया, परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत् ।

इस प्रकार—

तान्	= उन	सः	= वह
अवस्थितान्	= खड़े हुए	परया	= अत्यन्त
सर्वान्	= संपूर्ण	कृपया	= करुणासे
बन्धून्	= बन्धुओंको	आविष्टः	= युक्त हुआ
समीक्ष्य	= देखकर	कौन्तेयः	= कुन्तीपुत्र अर्जुन

विषीदन्	=शोक करता हुआ	अब्रवीत्	=बोला
इदम्	=यह		

अर्जुन उवाच

स्वजनोंको युद्धके लिये तैयार देखकर अर्जुनके शरीर और मनमें कायरता और शोकजनित चिह्नोंके होनेका कथन।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा, इमम्, स्वजनम्, कृष्ण, युयुत्सुम्, समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
सीदन्ति, मम, गात्राणि, मुखम्, च, परिशुष्यति,
वेपथुः, च, शरीरे, मे, रोमहर्षः, च, जायते ॥२९॥

कृष्ण	=हे कृष्ण	सीदन्ति	=शिथिल हुए जाते हैं
इदम्	=इस	च	=और
युयुत्सुम्	=युद्धकी इच्छावाले	मुखम्	=मुख (भी)
समुपस्थितम्	=खड़े हुए	परिशुष्यति	=सूखा जाता है
स्वजनम्	=स्वजन-समुदायको	च	=और
दृष्ट्वा	=देखकर	मे	=मेरे
मम	=मेरे	शरीरे	=शरीरमें
गात्राणि	=अङ्ग	वेपथुः	=कम्प
		च	=तथा
		रोमहर्षः	=रोमाञ्च
		जायते	=होता है

["] गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

गाण्डीवम्, स्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते,
न, च, शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मनः ॥३०॥

तथा–

हस्तात्	=हाथसे	मे	=मेरा
गाण्डीवम्	=गाण्डीव धनुष	मनः	=मन
स्रंसते	=गिरता है	भ्रमति इव	=भ्रमित-सा हो रहा है
च	=और		
त्वक्	=त्वचा	(अतः)	=इसलिये (मैं)
एव	=भी	अवस्थातुम्	=खड़ा रहनेको
परिदह्यते	=बहुत जलती है	च	=भी
च	=तथा	न शक्नोमि	=समर्थ नहीं हूं

अर्जुनका विपरीत लक्षणों-को देखकर युद्धमें स्वजनोंको मारनेसे हानि समझना ।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ २१ ॥

निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव,
न, च, श्रेयः, अनुपश्यामि, हत्वा, स्वजनम्, आहवे ॥२१॥

और–

केशव	=हे केशव	च	=भी
निमित्तानि	=लक्षणोंको	विपरीतानि	=विपरीत (ही)

पश्यामि	=देखता हूं (तथा)	श्रेयः	=कल्याण
आहवे	=युद्धमें	च	=भी
स्वजनम्	=अपने कुलको	न	=नहीं
हत्वा	=मारकर	अनुपश्यामि	=देखता

स्वजनवधसे मिलनेवाले राज्य-भोग और सुख आदिको अर्जुन-का न चाहना।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥
न, काङ्क्षे, विजयम्, कृष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च,
किम्, नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा॥ ३२॥

और—

कृष्ण	=हे कृष्ण (मैं)	(काङ्क्षे)	=चाहता
विजयम्	=विजयको	गोविन्द	=हे गोविन्द
न	=नहीं	नः	=हमें
काङ्क्षे	=चाहता	राज्येन	=राज्यसे
च	=और	किम्	=क्या (प्रयोजन है)
राज्यम्	=राज्य	वा	=अथवा
च	=तथा	भोगैः	=भोगोंसे (और)
सुखानि	=सुखोंको (भी)	जीवितेन	=जीवनसे (भी)
न	=नहीं	किम्	=क्या (प्रयोजन है)

["] येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥
येषाम्, अर्थे, काङ्क्षितम्, नः, राज्यम्, भोगाः, सुखानि, च,
ते, इमे, अवस्थिताः, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च॥ ३३॥

क्योंकि—

नः	=हमें	इमे	=यह सब
येषाम्	=जिनके	धनानि	=धन
अर्थे	=लिये	च	=और
राज्यम्	=राज्य	प्राणान्	=जीवन-(की आशा)को
भोगाः	=भोग		
च	=और	त्यक्त्वा	=त्यागकर
सुखानि	=सुखादिक	युद्धे	=युद्धमें
काङ्क्षितम्	=इच्छित हैं	अवस्थिताः	=खड़े हैं
ते	=वे (ही)		

अर्जुनका त्रिकोकीके राज्यके लिये भी आचार्यादि स्वजनोंको न मारनेकी इच्छा प्रकट करना।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ॥

आचार्याः, पितरः, पुत्राः, तथा, एव, च, पितामहाः, मातुलाः, श्वशुराः, पौत्राः, श्यालाः, संबन्धिनः, तथा ॥३४॥

जो कि—

आचार्याः	=गुरुजन	मातुलाः	=मामा
पितरः	=ताऊ चाचे	श्वशुराः	=ससुर
पुत्राः	=लड़के	पौत्राः	=पोते
च	=और	श्यालाः	=साले
तथा	=वैसे	तथा	=तथा (और भी)
एव	=ही		
पितामहाः	=दादा	संबन्धिनः	=सम्बन्धी लोग हैं

["] एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नतः, अपि, मधुसूदन,
अपि, त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः, किम्, नु, महीकृते ॥३५॥

इसलिये—

मधुसूदन	=हे मधुसूदन (मुझे)	एतान्	=इन सबको
घ्नतः	=मारनेपर	हन्तुम्	=मारना
अपि	=भी (अथवा)	न	=नहीं
त्रैलोक्य-राज्यस्य	=तीन लोकके राज्यके	इच्छामि	=चाहता (फिर)
हेतोः	=लिये	महीकृते	=पृथिवीके लिये (तो)
अपि	=भी (मैं)	नु किम्	=कहना ही क्या है

अर्जुनका अपने आततायी पान्धवोंको भी मारनेमें पाप समझना ।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, नः, का, प्रीतिः, स्यात्, जनार्दन,
पापम्, एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिनः ॥

जनार्दन	=हे जनार्दन	प्रीतिः	=प्रसन्नता
धार्तराष्ट्रान्	=धृतराष्ट्रके पुत्रोंको	स्यात्	=होगी
		एतान्	=इन
निहत्य	=मारकर (भी)	आततायिनः	=आततायियोंको
नः	=हमें	हत्वा	=मारकर (तो)
का	=क्या		

अस्मान्	=हमें	एव	=ही
पापम्	=पाप	आश्रयेत्	=लगेगा

स्वजनोंको न मारनेकी योग्यताका निरूपण

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७॥

तस्मात्, न, अर्हाः, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्, स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिनः, स्याम, माधव ॥३७॥

तस्मात्	=इससे	न अर्हाः	=योग्य नहीं हैं
माधव	=हे माधव	हि	=क्योंकि
स्वबान्धवान्	=अपने बान्धव	स्वजनम्	=अपने कुटुम्बको
धार्तराष्ट्रान्	={ धृतराष्ट्रके पुत्रोंको	हत्वा	=मारकर (हम)
		कथम्	=कैसे
हन्तुम्	=मारनेके लिये	सुखिनः	=सुखी
वयम्	=हम	स्याम	=होंगे

लोभके कारण दुर्योधनादिकी कुलनाशक कर्ममें प्रवृत्ति देखकर भी अर्जुनका अपने लिये उससे निवृत्त होनेको योग्य समझना

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥

यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः, कुलक्षयकृतम्, दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम् ॥३८॥

यद्यपि	=यद्यपि	एते	=यह लोग
लोभोपहत-चेतसः	={ लोभसे भ्रष्टचित्त हुए	कुलक्षयकृतम्	={ कुलके नाशकृत

दोषम्	=दोषको	पातकम्	=पापको
च	=और	न	=नहीं
मित्रद्रोहे	={ मित्रोंके साथ विरोध करनेमें	पश्यन्ति	=देखते हैं

"] कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्,
कुलक्षयकृतम्, दोषम्, प्रपश्यद्भिः, जनार्दन ॥३९॥

परन्तु—

जनार्दन	=हे जनार्दन	अस्मात्	=इस
कुलक्षयकृतम्	={ कुलके नाश करनेसे होते हुए	पापात्	=पापसे
		निवर्तितुम्	=हटनेके लिये
		कथम्	=क्यों
दोषम्	=दोषको	न	=नहीं
प्रपश्यद्भिः	=जाननेवाले	ज्ञेयम्	={ विचार करना चाहिये
अस्माभिः	=हमलोगोंको		

कुलके नाशसे धर्मकी हानि और पापकी वृद्धि । कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः, सनातनाः,
धर्मे, नष्टे, कुलम्, कृत्स्नम्, अधर्मः, अभिभवति, उत ॥४०॥

क्योंकि–

कुलक्षये	= कुलके नाश होनेसे	कृत्स्नम्	= संपूर्ण
सनातनाः	= सनातन	कुलम्	= कुलको
कुलधर्माः	= कुलधर्म	अधर्मः	= पाप
प्रणश्यन्ति	= नष्ट हो जाते हैं	उत	= भी
धर्मे	= धर्मके	अभिभवति	= बहुत दबा लेता है
नष्टे	= नाश होनेसे		

पापकी वृद्धिसे वर्णसंकरताकी उत्पत्ति ।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

अधर्माभिभवात्, कृष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः, स्त्रीषु, दुष्टासु, वार्ष्णेय, जायते, वर्णसंकरः ॥४१॥

तथा–

कृष्ण	= हे कृष्ण		(और)
अधर्माभिभवात्	= पापके अधिक बढ़ जानेसे	वार्ष्णेय	= हे वार्ष्णेय
कुलस्त्रियः	= कुलकी स्त्रियां	स्त्रीषु	= स्त्रियोंके
प्रदुष्यन्ति	= दूषित हो जाती हैं	दुष्टासु	= दूषित होनेपर
		वर्णसंकरः	= वर्णसंकर
		जायते	= उत्पन्न होता है

वर्णसंकरतासे पितरोंको नरककी प्राप्ति ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

संकरः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च, पतन्ति, पितरः, हि, एषाम्, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

और वह—

संकरः	=वर्णसंकर	लुप्तपिण्डोदकक्रियाः	=लोप हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले
कुलघ्नानाम्	=कुलघातियोंको	एषाम्	=इनके
च	=और	पितरः	=पितरलोग
कुलस्य	=कुलको	हि	=भी
नरकाय	=नरकमें ले जानेके लिये	पतन्ति	=गिर जाते हैं
एव	=ही (होता है)		

वर्णसंकर-कारक दोषोंसे जातिधर्म और कुलधर्मका नाश

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४ ३ ॥

दोषैः, एतैः, कुलघ्नानाम्, वर्णसंकरकारकैः,
उत्साद्यन्ते, जातिधर्माः, कुलधर्माः, च, शाश्वताः ॥४३॥

और—

एतैः	=इन	शाश्वताः	=सनातन
वर्णसंकरकारकैः	=वर्णसंकरकारक	कुलधर्माः	=कुलधर्म
दोषैः	=दोषोंसे	च	=और
कुलघ्नानाम्	=कुलघातियोंके	जातिधर्माः	=जातिधर्म
		उत्साद्यन्ते	=नष्ट हो जाते हैं

कुलधर्मके नाशसे नरककी प्राप्ति ।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४ ४ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन,
नरके, अनियतम्, वासः, भवति, इति, अनुशुश्रुम ॥४४॥

तथा—

जनार्दन	= हे जनार्दन	नरके	= नरकमें
उत्सन्नकुल-धर्माणाम्	= { नष्ट हुए कुलधर्मवाले	वासः	= वास
		भवति	= होता है
मनुष्याणाम्	= मनुष्योंका	इति	= ऐसा
अनियतम्	= { अनन्त कालतक		(हमने)
		अनुशुश्रुम	= सुना है

राज्यके लोभसे अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
स्वजनोंको मारनेमें पाप यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

समझकर अहो, बत, महत्पापम्, कर्तुम्, व्यवसिताः, वयम्,
अर्जुनका यत्, राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यताः ॥४५॥
पश्चाताप करना।

अहो	= अहो	व्यवसिताः	= तैयार हुए हैं
बत	= शोक है (कि)	यत्	= जो कि
वयम्	= { हमलोग (बुद्धि-मान् होकर भी)	राज्यसुख-लोभेन	= { राज्य और सुखके लोभसे
महत्पापम्	= महान् पाप	स्वजनम्	= अपने कुलको
		हन्तुम्	= मारनेके लिये
कर्तुम्	= करनेको	उद्यताः	= उद्यत हुए हैं

बिना सामना यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
किये कौरवोंद्वारा मरा जानेमें धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

अर्जुनका स्व- यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणयः,
कल्याण समझना धार्तराष्ट्राः, रणे, हन्युः, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत् ॥४६॥

यदि	= यदि	रणे	= रणमें
माम्	= मुझ	हन्युः	= मारें (तो)
अशस्त्रम्	= शस्त्ररहित	तत्	= वह (मारना भी)
अप्रतीकारम्	= न सामना करनेवालेको	मे	= मेरे लिये
शस्त्रपाणयः	= शस्त्रधारी	क्षेमतरम्	= अति कल्याण कारक
धार्तराष्ट्राः	= धृतराष्ट्रके पुत्र	भवेत्	= होगा

संजय उवाच

शोकयुक्त अर्जुनका धनुष-बाण छोड़कर बैठना।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

एवम्, उक्त्वा, अर्जुनः, संख्ये, रथोपस्थे, उपाविशत्,
विसृज्य, सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

संजय बोला कि—

संख्ये	= रणभूमिमें	सशरम्	= बाणसहित
शोकसंविग्नमानसः	= शोकसे उद्विग्न मनवाला	चापम्	= धनुषको
		विसृज्य	= त्यागकर
अर्जुनः	= अर्जुन	रथोपस्थे	= रथके पिछले भागमें
एवम्	= इस प्रकार		
उक्त्वा	= कहकर	उपाविशत्	= बैठ गया

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो
नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से १० तक अर्जुनकी कायरताके विषयमें श्रीकृष्णार्जुनका संवाद । (११–३०) सांख्ययोगका विषय । (३१–३८) क्षात्र-धर्मके अनुसार युद्ध करनेकी आवश्यकताका निरूपण । (३९–५३) निष्काम कर्मयोगका विषय । (५४–७२) स्थिरबुद्धि पुरुषके लक्षण और उसकी महिमा ।

संजय उवाच

संजयद्वारा अर्जुनकी कायरताका वर्णन ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

तम्, तथा, कृपया, आविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्,
विषीदन्तम्, इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदनः ॥ १ ॥

संजय बोला कि—

तथा	=पूर्वोक्त प्रकारसे	तम्	=उस (अर्जुन) के प्रति
कृपया	=करुणा करके		
आविष्टम्	=व्याप्त (और)	मधुसूदनः	=भगवान् मधुसूदनने
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्	=आंसुओंसे पूर्ण (तथा) व्याकुल नेत्रोंवाले	इदम्	=यह
		वाक्यम्	=वचन
विषीदन्तम्	=शोकयुक्त	उवाच	=कहा

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

श्रीभगवानुवाच

अर्जुनके मोहयुक्त करुणा-अवस्थाकी चिन्ता।
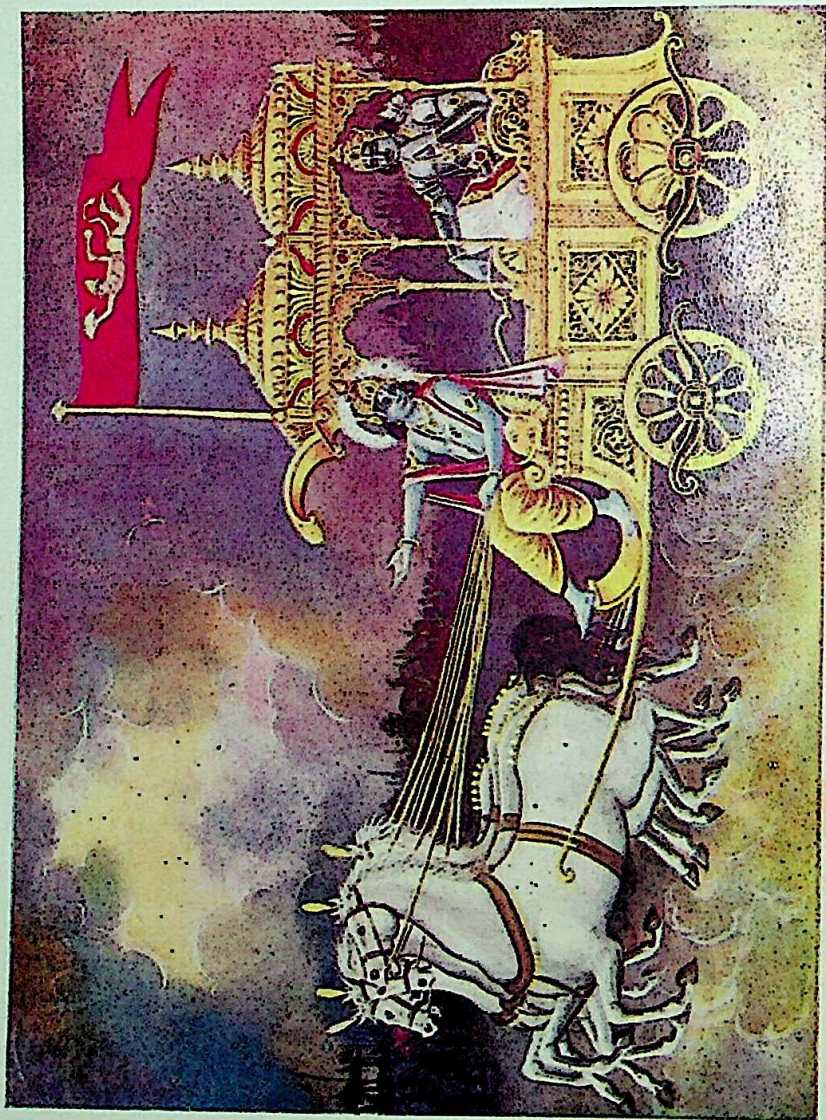
कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे, समुपस्थितम्,
अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन ॥ २ ॥

अर्जुन = हे अर्जुन
त्वा = तुमको (इस)
विषमे = विषमस्थलमें
इदम् = यह
कश्मलम् = अज्ञान
कुतः = किस हेतुसे
समुपस्थितम् = प्राप्त हुआ
(यतः) = क्योंकि

(यह)
अनार्यजुष्टम् = न तो श्रेष्ठ पुरुषोंसे आचरण किया गया है
अस्वर्ग्यम् = न स्वर्गको देनेवाला है
अकीर्तिकरम् = न कीर्तिको करनेवाला है

कायरताको त्याग कर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान् की आज्ञा।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

क्लैब्यम्, मा, स्म, गमः, पार्थ, न एतत्, त्वयि, उपपद्यते,
क्षुद्रम्, हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परंतप ॥ ३ ॥

इसलिये—

पार्थ = हे अर्जुन
क्लैब्यम् = नपुंसकताको
मा स्म गमः = मत प्राप्त हो
एतत् = यह

त्वयि	= तेरेमें	हृदय-दौर्बल्यम्	= हृदयकी दुर्बलताको
न उपपद्यते	= योग्य नहीं है	त्यक्त्वा	= त्यागकर
परंतप	= हे परंतप	उत्तिष्ठ	= युद्धके लिये खड़ा हो
क्षुद्रम्	= तुच्छ		

अर्जुन उवाच

अर्जुनका भीष्मादिके साथ युद्ध न करनेकी इच्छा प्रगट करना।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

कथम्, भीष्मम्, अहम्, संख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन, इषुभिः, प्रति, योत्स्यामि, पूजार्हौ, अरिसूदन ॥ ४ ॥

तब अर्जुन बोला कि—

मधुसूदन	= हे मधुसूदन	कथम्	= किस प्रकार
अहम्	= मैं	इषुभिः	= बाणोंकरके
संख्ये	= रणभूमिमें	योत्स्यामि	= युद्ध करूंगा
भीष्मम्	= भीष्मपितामह	(यतः)	= क्योंकि
च	= और	अरिसूदन	= हे अरिसूदन
द्रोणम्	= द्रोणाचार्यके	(तौ)	= वे दोनों ही
प्रति	= प्रति	पूजार्हौ	= पूजनीय हैं

अर्जुनका गुरुजनों को मारनेकी अपेक्षा भीख मांगकर खानेको श्रेष्ठ समझना।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

गुरून्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्, भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु, गुरून्, इह, एव, भुञ्जीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

इसलिये इन—

महानुभावान्	= महानुभाव
गुरून्	= गुरुजनोंको
अहत्वा	= न मारकर
इह	= इस
लोके	= लोकमें
भैक्ष्यम्	= भिक्षाका अन्न
अपि	= भी
भोक्तुम्	= भोगना
श्रेयः	= कल्याणकारक (समझता हूं)
हि	= क्योंकि
गुरून्	= गुरुजनोंको
हत्वा	= मारकर
(अपि)	= भी
इह	= इस लोकमें
रुधिरप्रदिग्धान्	= रुधिरसे सने हुए
अर्थकामान्	= अर्थ और कामरूप
भोगान्	= भोगोंको
एव	= ही
तु	= तो
भुञ्जीय	= भोगूंगा

अपने कर्तव्यके विषयमें अर्जुनको संशय होना

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

न, च, एतत्, विद्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यद्वा, जयेम, यदि, वा, नः, जयेयुः, यान्, एव, हत्वा, न, जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

और हमलोग—

एतत्	=यह	जयेयुः	=वे जीतेंगे (और)
च	=भी	यान्	=जिनको
न	=नहीं	हत्वा	=मारकर
विद्मः	=जानते (कि)	न जिजीविषामः	=जीना भी नहीं चाहते
नः	=हमारे लिये	ते	=वे
कतरत्	=क्या (करना)	एव	=ही
गरीयः	=श्रेष्ठ है	धार्तराष्ट्राः	=धृतराष्ट्रके पुत्र
यद्वा	=अथवा (यह भी नहीं जानते कि)	प्रमुखे	=हमारे सामने
जयेम	=हम जीतेंगे	अवस्थिताः	=खड़े हैं
यदि वा	=या		
नः	=हमको		

अर्जुनका भगवान्‌के शरण होकर कर्तव्य पूछना।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्, धर्मसंमूढचेताः, यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि, तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

इसलिये–

कार्पण्य-दोषोपहत-स्वभावः	= कायरतारूप दोष करके उपहत हुए स्वभाववाला	श्रेयः	= कल्याणकारक साधन
		स्यात्	= हो
		तत्	= वह
	(और)	मे	= मेरे लिये
धर्म-संमूढचेताः	= धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ (मैं)	ब्रूहि	= कहिये (क्योंकि)
		अहम्	= मैं
		ते	= आपका
त्वाम्	= आपको	शिष्यः	= शिष्य हूं (इसलिये)
पृच्छामि	= पूछता हूं	त्वाम्	= आपके
यत्	= जो (कुछ)	प्रपन्नम्	= शरण हुए
निश्चितम्	= निश्चय किया हुआ	माम्	= मेरेको
		शाधि	= शिक्षा दीजिये

अर्जुनका त्रिलोकीके राज्यसे भी शोककी निवृत्ति न मानना।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

न, हि, प्रपश्यामि, मम, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्, इन्द्रियाणाम्, अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्, अपि, च, आधिपत्यम् ॥ ८ ॥

हि	=क्योंकि	(तत्)	=उस (उपाय) को
भूमौ	=भूमिमें	न	=नहीं
असपत्नम्	=निष्कण्टक	प्रपश्यामि	=देखता हूं
ऋद्धम्	=धनधान्यसंपन्न	यत्	=जो कि
राज्यम्	=राज्यको	मम	=मेरी
च	=और	इन्द्रियाणाम्	=इन्द्रियोंके
सुराणाम्	=देवताओंके	उच्छोषणम्	=सुखानेवाले
आधिपत्यम्	=स्वामीपनेको	शोकम्	=शोकको
अवाप्य	=प्राप्त होकर	अपनुद्यात्	=दूर कर सके
(अपि)	=भी (मैं)		

संजय उवाच

अर्जुनका युद्धसे उपराम होना ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

एवम्, उक्त्वा, हृषीकेशम्, गुडाकेशः, परंतप, न, योत्स्ये, इति, गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह ॥ ९ ॥

संजय बोला—

परंतप = हे राजन्	गोविन्दम् = श्रीगोविन्द भगवान्‌को
गुडाकेशः = निद्राको जीतनेवाला अर्जुन	न योत्स्ये = युद्ध नहीं करूंगा
हृषीकेशम् = अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति	इति = ऐसे
	ह = स्पष्ट
	उक्त्वा = कहकर
एवम् = इस प्रकार	तूष्णीम् = चुप
उक्त्वा = कहकर (फिर)	बभूव = हो गया

अर्जुनकी अज्ञानता पर भगवान् का मुस्कराना ।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १० ॥

तम्, उवाच, हृषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, विषीदन्तम्, इदम्, वचः ॥१०॥

उसके उपरान्त—

भारत = हे भरतवंशी धृतराष्ट्र	तम् = उस
	विषीदन्तम् = शोकयुक्त अर्जुनको
हृषीकेशः = अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजने	प्रहसन् इव = हंसते हुए-से
	इदम् = यह
उभयोः = दोनों	वचः = वचन
सेनयोः = सेनाओंके	
मध्ये = बीचमें	उवाच = कहा

श्रीभगवानुवाच

शोक करनेको अयोग्य बताते हुए भगवान्का अर्जुनके प्रति उपदेश आरम्भ करना।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥११॥

अशोच्यान्, अन्वशोचः, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च, भाषसे,
गतासून्, अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिताः ॥११॥

हे अर्जुन—

त्वम्	= तू	गतासून्	= जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये
अशोच्यान्	= न शोक करने योग्योंके लिये	च	= और
अन्वशोचः	= शोक करता है	अगतासून्	= जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये (भी)
च	= और	न	= नहीं
प्रज्ञावादान्	= पण्डितोंके(से) वचनोंको	अनुशोचन्ति	= शोक करते हैं
भाषसे	= कहता है (परन्तु)		
पण्डिताः	= पण्डितजन		

आत्माकी नित्यता का निरूपण।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे,
जनाधिपाः, न, च, एव, न, भविष्यामः, सर्वे, वयम्, अतः, परम् ॥

क्योंकि आत्मा नित्य है इसलिये शोक करना अयुक्त है। वास्तवमें—

न	= न	(एवम्)	= ऐसा
तु	= तो	एव	= ही (है कि)

अहम्	= मैं	(आसन्)	= थे
जातु	= किसी कालमें	च	= और
न	= नहीं	न	= न
आसम्	= था (अथवा)	(एवम्)	= ऐसा
त्वम्	= तूं	एव	= ही (है कि)
न	= नहीं	अतः	= इससे
(आसीः)	= था (अथवा)	परम्	= आगे
इमे	= यह	वयम्	= हम
जनाधिपाः	= राजा लोग	सर्वे	= सब
न	= नहीं	न	= नहीं
		भविष्यामः	= रहेंगे

आत्माकी नित्यता का निरूपण और धीर पुरुषकी प्रशंसा।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

देहिनः, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा,
तथा, देहान्तरप्राप्तिः, धीरः, तत्र, न, मुह्यति ॥१३॥

किन्तु—

यथा	= जैसे	जरा	= वृद्ध अवस्था (होती है)
देहिनः	= जीवात्माकी		
अस्मिन्	= इस	तथा	= वैसे ही
देहे	= देहमें	देहान्तर-प्राप्तिः	= अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है
कौमारम्	= कुमार		
यौवनम्	= युवा (और)	तत्र	= उस विषयमें

धीरः	=धीर पुरुष	न	=नहीं
		मुह्यति	=मोहित होता है

अर्थात् जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्थारूप स्थूल शरीरका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है वैसे ही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होनारूप सूक्ष्म शरीरका विकार भी अज्ञानसे ही आत्मामें भासता है इसलिये तत्त्वको जाननेवाला धीर पुरुष इस विषयमें नहीं मोहित होता ।

इन्द्रिय और विषयोंके संयोगकी अनित्यताका निरूपण और उनको सहन करनेके लिये आज्ञा ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥१४॥

मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः,
आगमापायिनः, अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत ॥१४॥

कौन्तेय	=हे कुन्तीपुत्र	आगमापायिनः	=क्षणभङ्गुर
			(और)
शीतोष्णसुखदुःखदाः	=सर्दी गर्मी और सुख दुःखको देनेवाले	अनित्याः	=अनित्य हैं
			(इसलिये)
मात्रास्पर्शाः	=इन्द्रिय और विषयोंके संयोग	भारत	=हे भरतवंशी अर्जुन
		तान्	=उनको (तूं)
तु	=तो	तितिक्षस्व	=सहन कर

तितिक्षाका फल यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ,
समदुःखसुखम्, धीरम्, सः, अमृतत्वाय, कल्पते ॥१५॥

हि	= क्योंकि	एते	= यह (इन्द्रियोंके विषय)
पुरुषर्षभ	= हे पुरुषश्रेष्ठ	न व्यथन्ति	= व्याकुल नहीं कर सकते
समदुःख-सुखम्	= दुःखसुखको समान समझने-वाले	सः	= वह
यम्	= जिस	अमृतत्वाय	= मोक्षके लिये
धीरम्	= धीर	कल्पते	= योग्य होता है
पुरुषम्	= पुरुषको		

सत् असत्का निर्णय । नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

न, असतः, विद्यते, भावः, न, अभावः, विद्यते, सतः,
उभयोः, अपि, दृष्टः, अन्तः, तु, अनयोः, तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

और हे अर्जुन–

असतः	= असत् (वस्तु) का तो	तु	= और
		सतः	= सत्का
भावः	= अस्तित्व	अभावः	= अभाव
न	= नहीं	न	= नहीं
विद्यते	= है	विद्यते	= है

	(इस प्रकार)	अन्तः	=तत्त्व
अनयोः	=इन	तत्त्वदर्शिभिः	= ज्ञानी पुरुषोंद्वारा
उभयोः	=दोनोंका		
अपि	=ही	दृष्टः	=देखा गया है

सत् और असत्-के स्वरूपका वर्णन

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति ॥१७॥

इस न्यायके अनुसार—

अविनाशि	=नाशरहित	ततम्	=व्याप्त है
तु	=तो		(क्योंकि)
तत्	=उसको	अस्य	=इस
विद्धि	=जान (कि)	अव्ययस्य	=अविनाशीका
येन	=जिससे	विनाशम्	=विनाश
इदम्	=यह	कर्तुम्	=करनेको
सर्वम्	=संपूर्ण	कश्चित्	=कोई भी
	(जगत्)	न अर्हति	=समर्थ नहीं है

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः,
अनाशिनः, अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत ॥१८॥

और इस—

अनाशिनः	=नाशरहित	अन्तवन्तः	=नाशवान्
अप्रमेयस्य	=अप्रमेय	उक्ताः	=कहे गये हैं
नित्यस्य	=नित्यस्वरूप	तस्मात्	=इसलिये
शरीरिणः	=जीवात्माके	भारत	=हे भरतवंशी अर्जुन (तू)
इमे	=यह		
देहाः	=सब शरीर	युध्यस्व	=युद्ध कर

आत्माको [मरने और मारनेवाला जो मानते हैं उनकी निन्दा ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्, उभौ, तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते ॥ १९ ॥

और—

यः	=जो	उभौ	=दोनों ही
एनम्	=इस आत्माको	न	=नहीं
हन्तारम्	=मारनेवाला	विजानीतः	=जानते हैं
वेत्ति	=समझता है		(क्योंकि)
च	=तथा	अयम्	=यह आत्मा
यः	=जो	न	=न
एनम्	=इसको	हन्ति	=मारता है
हतम्	=मरा		(और)
मन्यते	=मानता है	न	=न
तौ	=वे	हन्यते	=मारा जाता है

आत्माके शुद्ध-स्वरूपका कथन।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्-
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा, न, भूयः, अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने, शरीरे ॥ २० ॥

अयम् =यह आत्मा
कदाचित् =किसी कालमें भी
न =न
जायते =जन्मता है
वा =और
न =न
म्रियते =मरता है
वा =अथवा
न =न
(अयम्) =यह आत्मा
भूत्वा =हो करके
भूयः =फिर
भविता =होनेवाला है (क्योंकि)
अयम् =यह
अजः =अजन्मा
नित्यः =नित्य
शाश्वतः =शाश्वत (और)
पुराणः =पुरातन है
शरीरे =शरीरके
हन्यमाने =नाश होनेपर भी (यह)
न हन्यते =नाश नहीं होता है

आत्माको अजन्मा और अविनाशी जाननेवालेकी प्रशंसा।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्, कथम्, सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम् ॥२१॥

पार्थ	=हे पृथापुत्र अर्जुन	सः	=वह
यः	=जो पुरुष	पुरुषः	=पुरुष
एनम्	=इस आत्माको	कथम्	=कैसे
अविनाशिनम्	=नाशरहित	कम्	=किसको
नित्यम्	=नित्य	घातयति	=मरवाता है (और)
अजम्	=अजन्मा (और)	(कथम्)	=कैसे
अव्ययम्	=अव्यय	कम्	=किसको
वेद	=जानता है	हन्ति	=मारता है

वस्त्रोंके दृष्टान्तसे जीवात्माके शरीर-परिवर्तनका कथन ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णाति, नरः, अपराणि, तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि, संयाति, नवानि, देही ॥ २२ ॥

और यदि तू कहे कि मैं तो शरीरोंके वियोगका शोक करता हूं तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि—

यथा	=जैसे	विहाय	=त्यागकर
नरः	=मनुष्य	अपराणि	=दूसरे
जीर्णानि	=पुराने	नवानि	=नये वस्त्रोंको
वासांसि	=वस्त्रोंको	गृह्णाति	=ग्रहण करता है

तथा	=वैसे (ही)	विहाय	=त्यागकर
देही	=जीवात्मा	अन्यानि	=दूसरे
जीर्णानि	=पुराने	नवानि	=नये शरीरोंको
शरीराणि	=शरीरोंको	संयाति	=प्राप्त होता है

सर्वव्यापी आत्माके नित्य स्वरूपका विस्तार से वर्णन ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः, न, च, एनम्, क्लेदयन्ति, आपः, न, शोषयति, मारुतः ॥२३॥

और हे अर्जुन—

एनम्	=इस आत्माको	एनम्	=इसको
शस्त्राणि	=शस्त्रादि	आपः	=जल
न	=नहीं	न	=नहीं
छिन्दन्ति	=काट सकते हैं (और)	क्लेदयन्ति	=गीला कर सकते हैं
एनम्	=इसको	च	=और
पावकः	=आग	मारुतः	=वायु
न	=नहीं	न	=नहीं
दहति	=जला सकती है (तथा)	शोषयति	=सुखा सकता है

[„] **अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।**
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥२४॥

अच्छेद्यः, अयम्, अदाह्यः, अयम्, अक्लेद्यः, अशोष्यः, एव, च, नित्यः, सर्वगतः, स्थाणुः, अचलः, अयम्, सनातनः ॥२४॥

क्योंकि–

अयम् = यह आत्मा
अच्छेद्यः = अच्छेद्य है
अयम् = यह आत्मा
अदाह्यः = अदाह्य
अक्लेद्यः = अक्लेद्य
च = और
अशोष्यः = अशोष्य है
(तथा)

अयम् = यह आत्मा
एव = निःसन्देह
नित्यः = नित्य
सर्वगतः = सर्वव्यापक
अचलः = अचल
स्थाणुः = स्थिर रहनेवाला
(और)
सनातनः = सनातन है

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

अव्यक्तः, अयम्, अचिन्त्यः, अयम्, अविकार्यः, अयम्, उच्यते, तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि ॥ २५ ॥

और–

अयम् = यह आत्मा
अव्यक्तः = अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियोंका अविषय (और)
अयम् = यह आत्मा
अचिन्त्यः = अचिन्त्य अर्थात् मनका अविषय (और)

अयम् = यह आत्मा
अविकार्यः = विकाररहित अर्थात् न बदलनेवाला
उच्यते = कहा जाता है
तस्मात् = इससे (हे अर्जुन)
एनम् = इस आत्माको
एवम् = ऐसा

विदित्वा	= जानकर	न अर्हसि =	योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है
(त्वम्)	= तूं		
अनु-शोचितुम्	= शोक करनेको		

दूसरोंके सिद्धान्त-से भी आत्माके लिये शोक करने-का निषेध ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मृतम्, तथापि, त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥२६॥

अथ च	= और यदि	मन्यसे	= माने
त्वम्	= तूं	तथापि	= तो भी
एनम्	= इसको	महाबाहो	= हे अर्जुन
नित्यजातम्	= सदा जन्मने	एवम्	= इस प्रकार
वा	= और	शोचितुम्	= शोक करनेको
नित्यम्	= सदा	न अर्हसि	= योग्य नहीं है
मृतम्	= मरनेवाला		

["] **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।**
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७॥

जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च, तस्मात्, अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥२७॥

हि	= क्योंकि (ऐसा होनेसे तो)	जातस्य	= जन्मनेवालेकी
		ध्रुवः	= निश्चित

मृत्युः	=मृत्यु	तस्मात्	=इससे (भी)
च	=और	त्वम्	=तूं (इस)
मृतस्य	=मरनेवालेका	अपरिहार्ये	=बिना उपायवाले
ध्रुवम्	=निश्चित	अर्थे	=विषयमें
जन्म	=जन्म	शोचितुम्	=शोक करनेको
	(होना सिद्ध हुआ)	न अर्हसि	=योग्य नहीं है

शरीरोंकी अनित्यता का निरूपण और उनके लिये शोक करनेका निषेध ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत,
अव्यक्तनिधनानि, एव, तत्र, का, परिदेवना ॥२८॥

और यह भीष्मादिकोंके शरीर मायामय होनेसे अनित्य हैं, इससे शरीरोंके लिये भी शोक करना उचित नहीं; क्योंकि—

भारत	=हे अर्जुन		(केवल)
भूतानि	=संपूर्ण प्राणी	व्यक्त-मध्यानि	=बीचमें ही शरीरवाले (प्रतीत होते) हैं
अव्यक्तादीनि	=जन्मसे पहिले बिना शरीरवाले		(फिर)
	(और)	तत्र	=उस विषयमें
अव्यक्त-निधनानि एव	=मरनेके बाद भी बिना शरीरवाले ही हैं	का	=क्या
		परिदेवना	=चिन्ता है

आत्मतत्त्वके ज्ञाता, वक्ता और श्रोताकी दुर्लभता का निरूपण ।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्, वदति, तथा, एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम्, अन्यः, शृणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित् ॥२९॥

और हे अर्जुन ! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है, इसलिये—

कश्चित् = कोई (महापुरुष) ही
एनम् = इस आत्माको
आश्चर्यवत् = आश्चर्यकी ज्यों
पश्यति = देखता है
च = और
तथा = वैसे
एव = ही
अन्यः = दूसरा कोई (महापुरुष) ही
आश्चर्यवत् = आश्चर्यकी ज्यों (इसके तत्त्वको)
वदति = कहता है
च = और
अन्यः = दूसरा (कोई ही)
एनम् = इस आत्माको
आश्चर्यवत् = आश्चर्यकी ज्यों
शृणोति = सुनता है
च = और
कश्चित् = कोई कोई
श्रुत्वा = सुनकर
अपि = भी
एनम् = इस आत्माको
न एव = नहीं
वेद = जानता

आत्मा की नित्यता का निरूपण और उसके लिये शोक करनेका निषेध ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

देही, नित्यम्, अवध्यः, अयम्, देहे, सर्वस्य, भारत,
तस्मात्, सर्वाणि, भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि ॥३०॥

भारत	=हे अर्जुन	तस्मात्	=इसलिये
अयम्	=यह	सर्वाणि	=संपूर्ण
देही	=आत्मा	भूतानि	=भूतप्राणियों-के लिये
सर्वस्य	=सबके		
देहे	=शरीरमें	त्वम्	=तूं
नित्यम्	=सदा ही	शोचितुम्	=शोक करनेको
अवध्यः	=अवध्य है *	न अर्हसि	=योग्य नहीं है

क्षत्रियोंके लिये धर्मयुक्त युद्धकी प्रशंसा ।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥३१॥

स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि,
धर्म्यात्, हि, युद्धात्, श्रेयः, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते ॥३१॥

च	=और	न अर्हसि	=योग्य नहीं है
स्वधर्मम्	=अपने धर्मको	हि	=क्योंकि
अवेक्ष्य	=देखकर	धर्म्यात्	=धर्मयुक्त
अपि	=भी (तूं)	युद्धात्	=युद्धसे बढ़कर
विकम्पितुम्	=भय करनेको	अन्यत्	=दूसरा

* जिसका वध नहीं किया जा सके ।

	(कोई)	क्षत्रियस्य	=क्षत्रियके लिये
श्रेयः	={ कल्याणकारक कर्तव्य	न	=नहीं
		विद्यते	=है

["] यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३ २ ॥

यदृच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावृतम्,
सुखिनः, क्षत्रियाः, पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदृशम् ॥३२॥

और–

पार्थ	=हे पार्थ	ईदृशम्	=इस प्रकारके
यदृच्छया	=अपने आप	युद्धम्	=युद्धको
उपपन्नम्	=प्राप्त हुए	सुखिनः	=भाग्यवान्
च	=और	क्षत्रियाः	=क्षत्रिय लोग (ही)
अपावृतम्	=खुले हुए		
स्वर्गद्वारम्	=स्वर्गके द्वाररूप	लभन्ते	=पाते हैं

धार्मिक युद्धके त्यागसे स्वधर्म और कीर्तिकी हानि एवं पाप और अपकीर्तिकी प्राप्ति ।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३ ३ ॥

अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यम्, संग्रामम्, न, करिष्यसि,
ततः, स्वधर्मम्, कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि ॥३३॥

अथ	=और	त्वम्	=तूं
चेत्	=यदि	इमम्	=इस

धर्म्यम्	=धर्मयुक्त	च	=और
संग्रामम्	=संग्रामको	कीर्तिम्	=कीर्तिको
न	=नहीं	हित्वा	=खोकर
करिष्यसि	=करेगा	पापम्	=पापको
ततः	=तो	अवाप्स्यसि	=प्राप्त होगा
स्वधर्मम्	=स्वधर्मको		

[„] अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३ ४॥

अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्, संभावितस्य, च, अकीर्तिः, मरणात्, अतिरिच्यते ॥३४॥

च	=और	कथयिष्यन्ति	=कथन करेंगे
भूतानि	=सब लोग	च	=और (वह)
ते	=तेरी	अकीर्तिः	=अपकीर्ति
अव्ययाम्	={ बहुत कालतक रहने वाली	संभावितस्य	={ माननीय पुरुषके लिये
अकीर्तिम्	=अपकीर्तिको	मरणात्	=मरणसे (भी)
अपि	=भी	अतिरिच्यते	={ अधिक (बुरी) होती है

धर्मयुद्धके त्याग-से बड़प्पन और मानकी हानि होनेका कथन।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३ ५॥

भयात्, रणात्, उपरतम्, मंस्यन्ते, त्वाम्, महारथाः, येषाम्, च, त्वम्, बहुमतः, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम् ॥३५॥

च	=और	यास्यसि	=प्राप्त होगा (वे)
येषाम्	=जिनके	महारथाः	=महारथी लोग
त्वम्	=तूं	त्वाम्	=तुझे
बहुमतः	=बहुत माननीय	भयात्	=भयके कारण
भूत्वा	=होकर (भी अब)	रणात्	=युद्धसे
		उपरतम्	=उपराम हुआ
लाघवम्	=तुच्छताको	मंस्यन्ते	=मानेंगे

[,,] अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ६ ॥

अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः,
निन्दन्तः, तव, सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम्, नु, किम् ॥ ३६ ॥

च	=और	अवाच्य-वादान्	=न कहने योग्य वचनोंको
तव	=तेरे		
अहिताः	=वैरी लोग	वदिष्यन्ति	=कहेंगे
तव	=तेरे	नु	=फिर
सामर्थ्यम्	=सामर्थ्यकी	ततः	=उससे
निन्दन्तः	=निन्दा करते हुए	दुःखतरम्	=अधिक दुःख
बहून्	=बहुत-से	किम्	=क्या होगा

[सब प्रकारसे लाभ दिखाकर अर्जुनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा देना ।]

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३ ७ ॥

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्,
तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

इससे युद्ध करना तेरे लिये सब प्रकारसे अच्छा है; क्योंकि—

वा	= या (तो)	भोक्ष्यसे	= भोगेगा
हतः	= मरकर	तस्मात्	= इससे
स्वर्गम्	= स्वर्गको	कौन्तेय	= हे अर्जुन
प्राप्स्यसि	= प्राप्त होगा	युद्धाय	= युद्धके लिये
वा	= अथवा	कृतनिश्चयः	= निश्चयवाला होकर
जित्वा	= जीतकर		
महीम्	= पृथिवीको	उत्तिष्ठ	= खड़ा हो

सुख-दुःखादिको समान समझकर युद्ध करनेसे पाप न लगने का कथन ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ,
ततः, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि ॥३८॥

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्यकी इच्छा न हो तो भी—

सुखदुःखे	= सुख दुःख	युद्धाय	= युद्धके लिये
लाभालाभौ	= लाभ हानि (और)	युज्यस्व	= तैयार हो
जयाजयौ	= जय पराजयको	एवम्	= इस प्रकार (युद्ध करनेसे) (तूं)
समे	= समान	पापम्	= पापको
कृत्वा	= समझकर	न	= नहीं
ततः	= उसके उपरान्त	अवाप्स्यसि	= प्राप्त होगा

निष्काम कर्म-योगका विषय सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा और उसके महत्त्वका कथन ।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

एषा, ते, अभिहिता, सांख्ये, बुद्धिः, योगे, तु, इमाम्, शृणु,
बुद्ध्या, युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि ॥३९॥

पार्थ	= हे पार्थ	योगे	= निष्काम कर्म-योगके† विषयमें
एषा	= यह	शृणु	= सुन (कि)
बुद्धिः	= बुद्धि	यया	= जिस
ते	= तेरे लिये	बुद्ध्या	= बुद्धिसे
सांख्ये	= ज्ञानयोगके* विषयमें	युक्तः	= युक्त हुआ (तूं)
अभिहिता	= कही गयी	कर्मबन्धम्	= कर्मोंके बन्धनको
तु	= और	प्रहास्यसि	= अच्छी तरहसे नाश करेगा
इमाम्	= इसीको (अब)		

निष्कामकर्मयोग-के प्रभावका कथन ।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते,
स्वल्पम्, अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महतः, भयात् ॥४०॥

---

*-† अध्याय ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

और–

इह	= इस निष्काम कर्मयोगमें		(इसलिये)
		अस्य	= इस (निष्काम कर्मयोगरूप)
अभिक्रम-नाशः	= आरम्भका अर्थात् बीजका नाश	धर्मस्य	= धर्मका
		स्वल्पम्	= थोड़ा
न	= नहीं	अपि	= भी (साधन)
अस्ति	= है (और)		
प्रत्यवायः	= उलटा फलरूप दोष (भी)	महतः	= जन्ममृत्युरूप महान्
		भयात्	= भयसे
न	= नहीं	त्रायते	= उद्धार कर देता है
विद्यते	= होता है		

निश्चयात्मक और अनिश्चयात्मक बुद्धि के स्वरूप का निरूपण।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन,
बहुशाखाः, हि, अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम् ॥४१॥

और–

कुरुनन्दन	= हे अर्जुन	एका हि	= एक ही है
इह	= इस (कल्याणमार्गमें)	च	= और
व्यव-सायात्मिका	= निश्चयात्मक	अव्यव-सायिनाम्	= अज्ञानी (सकामी) पुरुषोंकी
बुद्धिः	= बुद्धि	बुद्धयः	= बुद्धियां

बहुशाखाः =बहुत भेदोंवाली । अनन्ताः =अनन्त होती हैं

सकामी पुरुषों-के स्वभाव का कथन ।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

याम्, इमाम्, पुष्पिताम्, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चितः,
वेदवादरताः, पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः, स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्,
क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति ॥४३॥

और—

पार्थ =हे अर्जुन (जो)
कामात्मानः =सकामी पुरुष
वेदवादरताः = केवल फल-श्रुतिमें प्रीति रखनेवाले
स्वर्गपराः = स्वर्गको ही परम श्रेष्ठ माननेवाले (इससे बढ़कर)
अन्यत् =और कुछ
न =नहीं
अस्ति =है
इति =ऐसे

वादिनः =कहनेवाले हैं (वे)
अविपश्चितः =अविवेकीजन
जन्मकर्मफलप्रदाम् = जन्मरूप कर्मफलको देनेवाली (और)
भोगैश्वर्यगतिम् प्रति = भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये
क्रियाविशेषबहुलाम् = बहुत-सी क्रियाओंके विस्तारवाली

इमाम् =इस प्रकारकी | वाचम् =वाणीको
याम् =जिस
पुष्पिताम् ={ दिखाऊ शोभायुक्त | प्रवदन्ति =कहते हैं

सकामी पुरुषों-के अन्तःकरण-में निश्चयात्मक बुद्धि न होनेका कथन ।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४ ४॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहृतचेतसाम्, व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, समाधौ, न, विधीयते ॥४४॥

तया =उस वाणीद्वारा | (उन पुरुषोंके)
अपहृत-चेतसाम् ={ हरे हुए चित्तवाले | समाधौ =अन्तःकरणमें
(तथा) | व्यव-सायात्मिका }=निश्चयात्मक
भोगैश्वर्य-प्रसक्तानाम् ={ भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तिवाले | बुद्धिः =बुद्धि
न =नहीं
विधीयते =होती है

निष्कामी और आत्म-परायण होनेके लिये आज्ञा ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ ४ ५॥

त्रैगुण्यविषयाः, वेदाः, निस्त्रैगुण्यः, भव, अर्जुन, निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः, आत्मवान् ॥४५॥

और–

अर्जुन =हे अर्जुन | वेदाः =सब वेद

त्रैगुण्यविषयाः = तीनों गुणोंके कार्यरूप संसारको विषय करनेवाले अर्थात् प्रकाश करनेवाले हैं

(इसलिये तूं)

निस्त्रैगुण्यः = असंसारी अर्थात् निष्कामी

(और)

निर्द्वन्द्वः = सुखदुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित

नित्यसत्त्वस्थः = नित्य वस्तुमें स्थित (तथा)

निर्योगक्षेमः = योग*क्षेमको† न चाहनेवाला

(और)

आत्मवान् = आत्मपरायण

भव = हो

जलाशयके दृष्टान्तसे ब्रह्मज्ञानकी महिमा।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, संप्लुतोदके,
तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानतः ॥४६॥

क्योंकि—

(मनुष्यका)

सर्वतः = सब ओरसे

संप्लुतोदके = परिपूर्ण जलाशयके

(प्राप्ते सति) = प्राप्त होनेपर

उदपाने = छोटे जलाशयमें

यावान् = जितना

अर्थः = प्रयोजन

(अस्ति) = रहता है

* अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम 'योग' है। † प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है।

विजानतः	= अच्छी प्रकार ब्रह्मको जानने-वाले	सर्वेषु	= सब
		वेदेषु	= वेदोंमें
ब्राह्मणस्य	= ब्राह्मणका (भी)	तावान्	= उतना ही प्रयोजन रहता है

अर्थात् जैसे बड़े जलाशयके प्राप्त हो जानेपर जलके लिये छोटे जलाशयोंकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होनेपर आनन्दके लिये वेदोंकी आवश्यकता नहीं रहती।

फलासक्तिको त्यागकर कर्म करनेके लिये प्रेरणा और कर्म-त्यागका निषेध।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन,
मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, सङ्गः, अस्तु, अकर्मणि ॥४७॥

इससे—

ते	= तेरा		(भी)
कर्मणि	= कर्म करने मात्रमें	मा	= मत
एव	= ही	भूः	= हो (तथा)
अधिकारः	= अधिकार होवे	ते	= तेरी
फलेषु	= फलमें	अकर्मणि	= कर्म न करनेमें (भी)
कदाचन	= कभी		
मा	= नहीं (और तू)	सङ्गः	= प्रीति
कर्मफल-हेतुः	= कर्मोंके फलकी वासनावाला	मा	= न
		अस्तु	= होवे

आसक्तिको त्यागकर समत्व-बुद्धिसे कर्म करनेके लिये आज्ञा।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥४८॥

योगस्थः, कुरु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, धनंजय, सिद्ध्यसिद्ध्योः, समः, भूत्वा, समत्वम्, योगः, उच्यते ॥४८॥

धनंजय	=हे धनंजय	भूत्वा	=होकर
सङ्गम्	=आसक्तिको	योगस्थः	=योगमें स्थित हुआ
त्यक्त्वा	=त्यागकर (तथा)	कर्माणि	=कर्मोंको
		कुरु	=कर (यह)
सिद्ध्यसिद्ध्योः	=सिद्धि और असिद्धिमें	समत्वम्	=समत्वभाव* ही
		योगः	=योग (नामसे)
समः	=समानबुद्धिवाला	उच्यते	=कहा जाता है

सकाम कर्मकी निन्दा और निष्कामकर्मयोग-की प्रशंसा।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥४९॥

दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धनंजय, बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः ॥४९॥

इस समत्वरूप—

बुद्धियोगात्	=बुद्धियोगसे	(अतः)	=इसलिये
कर्म	=(सकाम) कर्म	धनंजय	=हे धनंजय
दूरेण	=अत्यन्त	बुद्धौ	=समत्वबुद्धि-योगका
अवरम्	=तुच्छ है		

* जो कुछ भी कर्म किया जाय उसके पूर्ण होने और न होनेमें तथा उसके फलमें समभाव रहनेका नाम "समत्व" है।

शरणम् = आश्रय
अन्विच्छ = ग्रहण कर
हि = क्योंकि
फलहेतवः = फलकी वासनावाले
कृपणाः = अत्यन्त दीन हैं

निष्काम कर्मयोगीके पुण्य पापोंकी निवृत्तिका कथन और निष्काम कर्म करनेके लिये आज्ञा।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

बुद्धियुक्तः, जहाति, इह, उभे, सुकृतदुष्कृते,
तस्मात्, योगाय, युज्यस्व, योगः, कर्मसु, कौशलम्॥५०॥

और—

बुद्धियुक्तः = समत्वबुद्धियुक्त पुरुष
सुकृत-दुष्कृते = पुण्य-पाप
उभे = दोनोंको
इह = इस लोकमें
(एव) = ही
जहाति = त्याग देता है अर्थात् उनसे लिपायमान नहीं होता
तस्मात् = इससे
योगाय = समत्वबुद्धियोगके लिये ही
युज्यस्व = चेष्टा कर
(यह)
योगः = समत्वबुद्धिरूप योग ही
कर्मसु = कर्मोंमें
कौशलम् = चतुरता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है

कर्मफलके त्यागसे परमपदकी प्राप्ति।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

कर्मजम्, बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः,
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम्॥५१॥

हि	=क्योंकि	जन्मबन्ध-विनिर्मुक्ताः	=जन्मरूप बन्धनसे छूटे हुए
बुद्धियुक्ताः	=बुद्धियोगयुक्त		
मनीषिणः	=ज्ञानीजन		
कर्मजम्	=कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले	अनामयम्	=निर्दोष अर्थात् अमृतमय
फलम्	=फलको	पदम्	=परमपदको
त्यक्त्वा	=त्यागकर	गच्छन्ति	=प्राप्त होते हैं

मोहका नाश होनेसे वैराग्य-की प्राप्ति ।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

यदा, ते, मोहकलिलम्, बुद्धिः, व्यतितरिष्यति,
तदा, गन्तासि, निर्वेदम्, श्रोतव्यस्य, श्रुतस्य, च ॥५२॥

और हे अर्जुन—

यदा	=जिस कालमें	तदा	=तब
ते	=तेरी	(त्वम्)	=तूं
बुद्धिः	=बुद्धि	श्रोतव्यस्य	=सुनने योग्य
मोह-कलिलम्	=मोहरूप दलदलको	च	=और
		श्रुतस्य	=सुने हुएके
व्यति-तरिष्यति	=बिल्कुल तर जायगी	निर्वेदम्	=वैराग्यको
		गन्तासि	=प्राप्त होगा

बुद्धिकी स्थिरता-से योगकी प्राप्ति ।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला,
समाधौ, अचला, बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि ॥५३॥

और–

यदा	= जब		समाधौ	= परमात्माके स्वरूपमें
ते	= तेरी		अचला	= अचल (और)
श्रुति-विप्रतिपन्ना	= अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंको सुननेसे विचलित हुई		निश्चला	= स्थिर
			स्थास्यति	= ठहर जायगी
			तदा	= तब (तूं)
			योगम्	= समत्वरूप योगको
बुद्धिः	= बुद्धि		अवाप्स्यसि	= प्राप्त होगा

अर्जुन उवाच

स्थिर बुद्धि पुरुष-के विषयमें अर्जुनके चार प्रश्न ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥ ५४॥

स्थितप्रज्ञस्य, का, भाषा, समाधिस्थस्य, केशव, स्थितधीः, किम्, प्रभाषेत, किम्, आसीत, व्रजेत, किम् ॥५४॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा–

केशव	= हे केशव		स्थितधीः	= स्थिरबुद्धि पुरुष
समाधिस्थस्य	= समाधिमें स्थित		किम्	= कैसे
			प्रभाषेत	= बोलता है
स्थितप्रज्ञस्य	= स्थिरबुद्धि-वाले पुरुषका		किम्	= कैसे
			आसीत	= बैठता है
का	= क्या		किम्	= कैसे
भाषा	= लक्षण है (और)		व्रजेत	= चलता है

श्रीभगवानुवाच

समाधिमें स्थित हुए स्थिरबुद्धि पुरुषके लक्षण

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५ ५॥

प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्,
आत्मनि, एव, आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते ॥५५॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्णमहाराज बोले—

पार्थ	=हे अर्जुन	तदा	=उस कालमें
यदा	=जिस कालमें (यह पुरुष)	आत्मना	=आत्मासे
		एव	=ही
मनोगतान्	=मनमें स्थित	आत्मनि	=आत्मामें
सर्वान्	=संपूर्ण	तुष्टः	=संतुष्ट हुआ
कामान्	=कामनाओंको	स्थितप्रज्ञः	=स्थिर बुद्धिवाला
प्रजहाति	=त्याग देता है	उच्यते	=कहा जाता है

स्थिरबुद्धि पुरुष-के अन्तःकरण और वचनोंमें रागद्वेषादि के अभावका कथन

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५ ६ ॥

दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु, विगतस्पृहः,
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीः, मुनिः, उच्यते ॥५६॥

तथा—

दुःखेषु	=दुःखोंकी प्राप्तिमें	विगतस्पृहः	=दूर हो गई है स्पृहा जिसकी (तथा)
अनुद्विग्न-मनाः	=उद्वेगरहित है मन जिसका (और)	वीतराग-भयक्रोधः	=नष्ट हो गये हैं राग भय और क्रोध जिसके
सुखेषु	=सुखोंकी प्राप्तिमें		

(ऐसा)	स्थितधीः = स्थिरबुद्धि
मुनिः = मुनि	उच्यते = कहा जाता है

["] यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

यः, सर्वत्र, अनभिस्नेहः, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम्,
न, अभिनन्दति, न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥५७॥

और—

यः = जो पुरुष	न = न
सर्वत्र = सर्वत्र	अभिनन्दति = { प्रसन्न होता है (और)
अनभिस्नेहः = स्नेहरहित हुआ	न = न
तत् तत् = उस उस	द्वेष्टि = द्वेष करता है
शुभाशुभम् = { शुभ तथा अशुभ (वस्तुओं) को	तस्य = उसकी
	प्रज्ञा = बुद्धि
प्राप्य = प्राप्त होकर	प्रतिष्ठिता = स्थिर है

तीसरे प्रश्नके उत्तरमें कछुएके दृष्टान्तसे इन्द्रिय निग्रहका निरूपण ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

यदा, संहरते, च, अयम्, कूर्मः, अङ्गानि, इव, सर्वशः,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥५८॥

च = और	इव = { जैसे (समेट लेता है, वैसे ही)
कूर्मः = कछुआ (अपने)	
अङ्गानि = अङ्गोंको	अयम् = यह पुरुष

यदा	=जब	संहरते	=समेट लेता है (तब)
सर्वशः	=सब ओरसे (अपनी)	तस्य	=उसकी
इन्द्रियाणि	=इन्द्रियोंको	प्रज्ञा	=बुद्धि
इन्द्रियार्थेभ्यः	=इन्द्रियोंके विषयोंसे	प्रतिष्ठिता	=स्थिर होती है

हठपूर्वक भोगोंका त्याग करनेसे भी आसक्ति नष्ट न होनेका और परमात्मदर्शनसे नष्ट होनेका कथन।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः, रसवर्जम्, रसः, अपि, अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते ॥५९॥

यद्यपि—

	(इन्द्रियोंद्वारा)	रसवर्जम्	=राग नहीं (निवृत्त होता) (और)
निराहारस्य	=विषयोंको न ग्रहण करनेवाले	अस्य	=इस पुरुषका (तो)
देहिनः	=पुरुषके (भी) (केवल)	रसः	=राग
विषयाः	=विषय (तो)	अपि	=भी
विनिवर्तन्ते	=निवृत्त हो जाते हैं (परन्तु)	परम्	=परमात्माको
		दृष्ट्वा	=साक्षात् करके
		निवर्तते	=निवृत्त हो जाता है

इन्द्रियोंकी प्रबलताका निरूपण।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

यततः, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपश्चितः,
इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि, हरन्ति, प्रसभम्, मनः ॥६०॥

और–

कौन्तेय	=हे अर्जुन	मनः	=मनको
हि	=जिससे (कि)	प्रमाथीनि	=यह प्रमथन स्वभाववाली
यततः	=यत्न करते हुए		
विपश्चितः	=बुद्धिमान्	इन्द्रियाणि	=इन्द्रियां
पुरुषस्य	=पुरुषके	प्रसभम्	=बलात्कारसे
अपि	=भी	हरन्ति	=हर लेती हैं

इन्द्रियोंको वशमें करके भगवत्परायण होनेके लिये प्रेरणा।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्तः, आसीत, मत्परः,
वशे, हि, यस्य, इन्द्रियाणि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥६१॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि–

तानि	=उन	हि	=क्योंकि
सर्वाणि	=संपूर्ण इन्द्रियोंको	यस्य	=जिस पुरुषके
संयम्य	=वशमें करके	इन्द्रियाणि	=इन्द्रियां
युक्तः	=समाहित चित्त हुआ	वशे	=वशमें होती हैं
मत्परः	=मेरे परायण	तस्य	=उसकी (ही)
आसीत	=स्थित होवे	प्रज्ञा	=बुद्धि
		प्रतिष्ठिता	=स्थिर होती है

विषयोंके चिन्तनसे आसक्ति आदि अवगुणोंकी क्रमसे उत्पत्ति और अधःपतन होनेका कथन।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

ध्यायतः, विषयान्, पुंसः, सङ्गः, तेषु, उपजायते, सङ्गात्, संजायते, कामः, कामात्, क्रोधः, अभिजायते ॥६२॥

और हे अर्जुन ! मनसहित इन्द्रियोंको वशमें करके मेरे परायण न होनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है और—

विषयान्	=विषयोंको		(उन विषयोंकी)
ध्यायतः	=चिन्तन करनेवाले	कामः	=कामना
पुंसः	=पुरुषकी	संजायते	=उत्पन्न होती है
तेषु	=उन विषयोंमें		(और)
सङ्गः	=आसक्ति	कामात्	=कामना (में विघ्न पड़ने)से
उपजायते	=हो जाती है		
	(और)	क्रोधः	=क्रोध
सङ्गात्	=आसक्तिसे	अभिजायते	=उत्पन्न होता है

["] क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

क्रोधात्, भवति, संमोहः, संमोहात्, स्मृतिविभ्रमः, स्मृतिभ्रंशात्, बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति ॥६३॥

और—

क्रोधात्	=क्रोधसे	भवति	=उत्पन्न होता है
संमोहः	=अविवेक अर्थात् मूढ़भाव		(और)
		संमोहात्	=अविवेकसे

स्मृति-विभ्रमः	= स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है		(और)
	(और)	बुद्धिनाशात्	= बुद्धिके नाश होनेसे
स्मृति-भ्रंशात्	= स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे		(यह पुरुष)
बुद्धिनाशः	= बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है	प्रणश्यति	= अपने श्रेय-साधनसे गिर जाता है

चौथे प्रश्नके उत्तरमें रागद्वेष-रहित इन्द्रियों-द्वारा कर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर बुद्धि स्थिर होनेका कथन।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

रागद्वेषवियुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्,
आत्मवश्यैः, विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति ॥६४॥

तु	= परन्तु	इन्द्रियैः	= इन्द्रियोंद्वारा
विधेयात्मा	= स्वाधीन अन्तःकरण-वाला (पुरुष)	विषयान्	= विषयोंको
		चरन्	= भोगता हुआ
रागद्वेष-वियुक्तैः	= रागद्वेषसे रहित	प्रसादम्	= अन्तःकरणकी प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छताको
आत्मवश्यैः	= अपने वशमें की हुई	अधि-गच्छति	= प्राप्त होता है

[,,]

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते,
प्रसन्नचेतसः, हि, आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

और—

प्रसादे	= (उस) निर्मलताके होनेपर	प्रसन्नचेतसः	= प्रसन्नचित्त-वाले पुरुषकी
अस्य	= इसके	बुद्धिः	= बुद्धि
सर्वदुःखानाम्	= संपूर्ण दुःखोंका	आशु	= शीघ्र
हानिः	= अभाव	हि	= ही
उपजायते	= हो जाता है (और उस)	पर्यवतिष्ठते	= अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है

साधनरहित पुरुषको आस्तिकता, शान्ति और सुखकी अप्राप्ति ।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६ ६॥

न, अस्ति, बुद्धिः, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना,
न, च, अभावयतः, शान्तिः, अशान्तस्य, कुतः, सुखम् ॥६६॥

और हे अर्जुन—

अयुक्तस्य	= साधनरहित पुरुषके (अन्तःकरणमें)	च	= और
		अयुक्तस्य	= अयुक्तके (अन्तःकरणमें)
बुद्धिः	= श्रेष्ठ बुद्धि	भावना	= आस्तिक भाव भी
न	= नहीं	न	= नहीं होता है
अस्ति	= होती है		(और)

अभावयतः	= बिना आस्तिक भाववाले पुरुषको	(फिर)	
शान्तिः	= शान्ति	अशान्तस्य	= शान्तिरहित पुरुषको
च	= भी	सुखम्	= सुख
न	= नहीं (होती)	कुतः	= कैसे (हो सकता है)

नौकाके दृष्टान्त-से वशमें न की हुई इन्द्रियोंद्वारा बुद्धिके विचलित किये जानेका कथन ।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु, विधीयते,
तत्, अस्य, हरति, प्रज्ञाम्, वायुः, नावम्, इव, अम्भसि॥६७॥

हि	= क्योंकि	यत्	= जिस (इन्द्रिय) के
अम्भसि	= जलमें	अनु	= साथ
वायुः	= वायु	मनः	= मन
नावम्	= नावको	विधीयते	= रहता है
इव	= जैसे (हर लेता है, वैसे ही विषयोंमें)	तत्	= वह (एक ही इन्द्रिय)
		अस्य	= इस (अयुक्त) पुरुषकी
चरताम्	= विचरती हुई	प्रज्ञाम्	= बुद्धिको
इन्द्रियाणाम्	= इन्द्रियोंके बीचमें	हरति	= हरण कर लेती है

स्थिरबुद्धि पुरुष-के लक्षणों में इन्द्रियनिग्रहकी प्रधानता ।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

तस्मात्, यस्य, महाबाहो, निगृहीतानि, सर्वशः, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥६८॥

तस्मात्	=इससे	निगृहीतानि	=वशमें की हुई होती हैं
महाबाहो	=हे महाबाहो		
यस्य	=जिस पुरुषकी		
इन्द्रियाणि	=इन्द्रियां	तस्य	=उसकी
सर्वशः	=सब प्रकार	प्रज्ञा	=बुद्धि
इन्द्रियार्थेभ्यः	=इन्द्रियोंके विषयोंसे	प्रतिष्ठिता	=स्थिर होती है

अज्ञानियोंके निश्चयमें परमात्मतत्त्वके अभावका और आत्मज्ञानियों के निश्चयमें सृष्टिके अभाव का निरूपण ।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, संयमी, यस्याम्, जाग्रति, भूतानि, सा, निशा, पश्यतः, मुनेः ॥६९॥

और हे अर्जुन—

सर्वभूतानाम्	=संपूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये	तस्याम्	=उस नित्य शुद्ध बोधस्वरूप परमानन्दमें (भगवत्को प्राप्त हुआ)
या	=जो		
निशा	=रात्रि है		

संयमी	= योगी पुरुष	जाग्रति	= जागते हैं
जागर्ति	= जागता है (और)	पश्यतः	= तत्त्वको जाननेवाले
यस्याम्	= जिस नाशवान् क्षणभङ्गुर सांसारिक सुखमें	मुनेः	= मुनिके लिये
		सा	= वह
भूतानि	= सब भूतप्राणी	निशा	= रात्रि है

समुद्रके दृष्टान्तसे निष्कामी पुरुषकी महिमा,

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आपः, प्रविशन्ति, यद्वत्, तद्वत्, कामाः, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, सः, शान्तिम्, आप्नोति, न, कामकामी ॥ ७० ॥

और–

यद्वत्	= जैसे		(उसको चलायमान न करते हुए ही)
आपूर्यमाणम्	= सब ओरसे परिपूर्ण	प्रविशन्ति	= समा जाते हैं
अचलप्रतिष्ठम्	= अचल प्रतिष्ठावाले	तद्वत्	= वैसे ही
समुद्रम्	= समुद्रके प्रति		
आपः	= नाना नदियोंके जल	यम्	= जिस (स्थिरबुद्धि पुरुषके प्रति)

सर्वे	=संपूर्ण	सः	=वह (पुरुष)
कामाः	=भोग (किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही)	शान्तिम्	=परम शान्तिको
		आप्नोति	=प्राप्त होता है
		न	=न कि
प्रविशन्ति	=समा जाते हैं	कामकामी	=भोगोंको चाहनेवाला

संपूर्ण कामना और अहंता-ममताके त्यागसे परम शान्तिकी प्राप्ति।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

विहाय, कामान्, यः, सर्वान्, पुमान्, चरति, निःस्पृहः, निर्ममः, निरहंकारः, सः, शान्तिम्, अधिगच्छति ॥७१॥

क्योंकि—

यः	=जो	निरहंकारः	=अहंकाररहित
पुमान्	=पुरुष	निःस्पृहः	=स्पृहारहित हुआ
सर्वान्	=संपूर्ण		
कामान्	=कामनाओंको	चरति	=बर्तता है
विहाय	=त्यागकर	सः	=वह
निर्ममः	=ममतारहित (और)	शान्तिम्	=शान्तिको
		अधिगच्छति	=प्राप्त होता है

ब्राह्मी स्थितिकी महिमा।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

एषा, ब्राह्मी, स्थितिः, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति, स्थित्वा, अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति ॥७२॥

पार्थ	=हे अर्जुन	ब्राह्मी	=ब्रह्मको प्राप्त हुए पुरुषकी
एषा	=यह		

स्थितिः	=स्थिति है	अपि	=भी
एनाम्	=इसको	अस्याम्	=इस निष्ठामें
प्राप्य	=प्राप्त होकर	स्थित्वा	=स्थित होकर
न विमुह्यति	=मोहित नहीं होता है(और)	ब्रह्मनिर्वाणम्	=ब्रह्मानन्दको
अन्तकाले	=अन्तकालमें	ऋच्छति	=प्राप्त हो जाता है

ॐतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ८ तक ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगके अनुसार अनासक्तभावसे नियत कर्म करनेकी श्रेष्ठताका निरूपण। (९—१६) यज्ञादि कर्म करनेकी आवश्यकताका निरूपण। (१७—२४) ज्ञानवान् और भगवान्के लिये भी लोकसंग्रहार्थ कर्म करनेकी आवश्यकता। (२५—३५) अज्ञानी और ज्ञानवान्के लक्षण तथा रागद्वेषसे रहित होकर कर्म करनेके लिये प्रेरणा। (३६—४३) कामके निरोधका विषय।

अर्जुन उवाच

ज्ञान और कर्मकी श्रेष्ठता के विषयमें अर्जुनकी शङ्का और निश्चित मत कहनेके लिये भगवान् से प्रार्थना।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनार्दन,
तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव ॥ १ ॥

इसपर अर्जुनने प्रश्न किया कि—

जनार्दन	=हे जनार्दन	चेत्	=यदि

कर्मणः	=कर्मोंकी अपेक्षा	केशव	=हे केशव
बुद्धिः	=ज्ञान	माम्	=मुझे
ते	=आपके	घोरे	=भयङ्कर
ज्यायसी	=श्रेष्ठ	कर्मणि	=कर्ममें
मता	=मान्य है	किम्	=क्यों
तत्	=तो फिर	नियोजयसि	=लगाते हैं

["] व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे,
तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम् ॥ २ ॥

तथा आप—

व्यामिश्रेण इव	=मिले हुए से	तत्	=उस
		एकम्	=एक (बात) को
वाक्येन	=वचनसे	निश्चित्य	=निश्चय करके
मे	=मेरी	वद	=कहिये (कि)
बुद्धिम्	=बुद्धिको	येन	=जिससे
मोहयसि इव	=मोहित-सी करते हैं	अहम्	=मैं
		श्रेयः	=कल्याणको
	(इसलिये)	आप्नुयाम्	=प्राप्त होऊं

श्रीभगवानुवाच

अधिकारीभेदसे दो प्रकारकी निष्ठा । लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ,
ज्ञानयोगेन, सांख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज बोले—

अनघ = हे निष्पाप (अर्जुन)
अस्मिन् = इस
लोके = लोकमें
द्विविधा = दो प्रकारकी
निष्ठा = निष्ठा*
मया = मेरेद्वारा
पुरा = पहिले
प्रोक्ता = कही गयी है
सांख्यानाम् = ज्ञानियोंकी
ज्ञानयोगेन = ज्ञानयोगसे† (और)
योगिनाम् = योगियोंकी
कर्मयोगेन = निष्काम कर्मयोगसे‡

भगवत्प्राप्तिके लिये कर्मोंके त्यागका निषेध।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते,
न, च, संन्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति ॥ ४ ॥

* साधनकी परिपक्व अवस्था अर्थात् पराकाष्ठाका नाम 'निष्ठा' है ।

† मायासे उत्पन्न हुए संपूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं, ऐसे समझकर तथा मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाली संपूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहनेका नाम 'ज्ञानयोग' है, इसीको 'संन्यास' 'सांख्ययोग' इत्यादि नामोंसे कहा है ।

‡ फल और आसक्तिको त्यागकर भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवत्-अर्थ समत्वबुद्धिसे कर्म करनेका नाम 'निष्काम कर्मयोग' है, इसीको 'समत्वयोग' 'बुद्धियोग' 'कर्मयोग' 'तदर्थकर्म' 'मदर्थकर्म' 'मत्कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है ।

परन्तु किसी भी मार्गके अनुसार कर्मोंको स्वरूपसे त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि—

पुरुषः	=मनुष्य	न	=न
न	=न (तो)	संन्यसनात् एव	=कर्मोंको त्यागनेमात्रसे
कर्मणाम्	=कर्मोंके	सिद्धिम्	=भगवत्-साक्षात्कार-रूप सिद्धिको
अनारम्भात्	=न करनेसे		
नैष्कर्म्यम्	=निष्कर्मताको*		
अश्नुते	=प्राप्त होता है	समधिगच्छति	=प्राप्त होता है
च	=और		

बिना कर्म किये क्षणमात्र भी किसीसे नहीं रहा जानेका कथन ।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्, कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः ॥ ५ ॥

तथा सर्वथा कर्मोंका स्वरूपसे त्याग हो भी नहीं सकता—

हि	=क्योंकि	न	=नहीं
कश्चित्	=कोई भी (पुरुष)	तिष्ठति	=रहता है
जातु	=किसी कालमें	हि	=निःसन्देह
क्षणम्	=क्षणमात्र	सर्वः	=सब (ही पुरुष)
अपि	=भी		
अकर्मकृत्	=बिना कर्म किये	प्रकृतिजैः	=प्रकृतिसे उत्पन्न हुए

* जिस अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके कर्म अकर्म हो जाते हैं अर्थात् फल उत्पन्न नहीं कर सकते, उस अवस्थाका नाम 'निष्कर्मता' है ।

गुणैः	=गुणोंद्वारा	कर्म	=कर्म
अवशः	=परवश हुए	कार्यते	=करते हैं

मिथ्याचारी पुरुषका लक्षण

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्,
इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते ॥ ६ ॥

इसलिये—

यः	=जो	मनसा	=मनसे
विमूढात्मा	=मूढ़बुद्धि पुरुष	स्मरन्	=चिन्तन करता
कर्मेन्द्रियाणि	=कर्मेन्द्रियोंको (हठसे)	आस्ते	=रहता है
संयम्य	=रोककर	सः	=वह
इन्द्रियार्थान्	=इन्द्रियोंके भोगोंको	मिथ्याचारः	=मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी
		उच्यते	=कहा जाता है

निष्काम कर्मयोगीकी प्रशंसा ।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन,
कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते ॥ ७ ॥

तु	=और	मनसा	=मनसे
अर्जुन	=हे अर्जुन	इन्द्रियाणि	=इन्द्रियोंको
यः	=जो (पुरुष)	नियम्य	=वशमें करके

असक्तः	= अनासक्त हुआ	आरभते	= आचरण करता है
कर्मेन्द्रियैः	= कर्मेन्द्रियोंसे	सः	= वह
कर्मयोगम्	= कर्मयोगका	विशिष्यते	= श्रेष्ठ है

शास्त्रनियत कर्म करनेके लिये आज्ञा ।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः,
शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिद्ध्येत्, अकर्मणः ॥ ८ ॥

इसलिये—

त्वम्	= तू	कर्म	= कर्म करना
नियतम्	= शास्त्रविधिसे नियत किये हुए	ज्यायः	= श्रेष्ठ है
कर्म	= स्वधर्मरूप कर्मको	च	= तथा
कुरु	= कर	अकर्मणः	= कर्म न करनेसे
हि	= क्योंकि	ते	= तेरा
अकर्मणः	= कर्म न करनेकी अपेक्षा	शरीरयात्रा	= शरीरनिर्वाह
		अपि	= भी
		न	= नहीं
		प्रसिद्ध्येत्	= सिद्ध होगा

भगवदर्थ कर्म करनेके लिये आज्ञा ।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९ ॥

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः,
तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसङ्गः, समाचर ॥ ९ ॥

और हे अर्जुन ! बन्धनके भयसे भी कर्मोंका त्याग करना योग्य नहीं है; क्योंकि—

यज्ञार्थात्	=यज्ञ अर्थात् विष्णुके निमित्त किये हुए	(इसलिये) कौन्तेय	=हे अर्जुन
कर्मणः	=कर्मके सिवाय	मुक्तसङ्गः	=आसक्तिसे रहित हुआ
अन्यत्र	=अन्य कर्ममें (लगा हुआ ही)	तदर्थम्	=उस परमेश्वर-के निमित्त
अयम्	=यह		
लोकः	=मनुष्य	कर्म	=कर्मका
कर्मबन्धनः	=कर्मोंद्वारा बंधता है	समाचर	=भली प्रकार आचरण कर

प्रजापतिकी आज्ञानुसार कर्म करनेसे परम श्रेयकी प्राप्ति।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः, अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥ १० ॥

तथा कर्म न करनेसे तूं पापको भी प्राप्त होगा; क्योंकि—

प्रजापतिः	=प्रजापति (ब्रह्मा) ने	प्रसविष्यध्वम्	=वृद्धिको प्राप्त होवो (और)
पुरा	=कल्पके आदिमें		
सहयज्ञाः	=यज्ञसहित	एषः	=यह यज्ञ
प्रजाः	=प्रजाको	वः	=तुमलोगोंको
सृष्ट्वा	=रचकर		
उवाच	=कहा कि	इष्टकामधुक्	=इच्छित कामनाओंके देनेवाला
अनेन	=इस यज्ञद्वारा (तुमलोग)	अस्तु	=होवे

["] देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,
परस्परम्, भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ॥११॥

तथा तुमलोग–

अनेन	=इस यज्ञद्वारा	(एवम्)	=इस प्रकार
देवान्	=देवताओंकी	परस्परम्	=आपसमें
भावयत	=उन्नति करो		(कर्तव्य
	(और)		समझकर)
ते	=वे	भावयन्तः	=उन्नति करते हुए
देवाः	=देवतालोग	परम्	=परम
वः	=तुमलोगोंकी	श्रेयः	=कल्याणको
भावयन्तु	=उन्नति करें	अवाप्स्यथ	=प्राप्त होओगे

देवताओंको बिना दिये भोग भोगनेवालों की निन्दा ।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

इष्टान्, भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविताः,
तैः, दत्तान्, अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः ॥१२॥

तथा–

यज्ञभाविताः	={यज्ञद्वारा बढ़ाये हुए	इष्टान्	=प्रिय
		भोगान्	=भोगोंको
देवाः	=देवतालोग	दास्यन्ते	=देंगे
वः	=तुम्हारे लिये	तैः	=उनके द्वारा
	(बिना मांगे ही)	दत्तान्	=दिये हुए भोगोंको

यः	=जो पुरुष	भुङ्क्ते	=भोगता है
एभ्यः	=इनके लिये	सः	=वह
अप्रदाय	=बिना दिये	एव	=निश्चय
हि	=ही	स्तेनः	=चोर है

यज्ञसे बचा हुआ अन्न खानेवालों-की प्रशंसा और इसके विपरीत करनेवालों की निन्दा ।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः,
भुञ्जते, ते, तु, अघम्, पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात् ॥१३॥

कारण कि—

यज्ञशिष्टाशिनः	=यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खानेवाले	पापाः	=पापीलोग
सन्तः	=श्रेष्ठ पुरुष	आत्मकारणात्	=अपने (शरीर-पोषणके) लिये ही
सर्वकिल्बिषैः	=सब पापोंसे	पचन्ति	=पकाते हैं
मुच्यन्ते	=छूटते हैं (और)	ते	=वे
		तु	=तो
		अघम्	=पापको ही
ये	=जो	भुञ्जते	=खाते हैं

सृष्टिचक्रका वर्णन ।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः,
यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

क्योंकि—

भूतानि	= संपूर्ण प्राणी	पर्जन्यः	= वृष्टि
अन्नात्	= अन्नसे	यज्ञात्	= यज्ञसे
भवन्ति	= उत्पन्न होते हैं (और)	भवति	= होती है (और वह)
अन्नसम्भवः	= अन्नकी उत्पत्ति	यज्ञः	= यज्ञ
पर्जन्यात्	= वृष्टिसे होती है (और)	कर्मसमुद्भवः	= कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है

["] कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५॥

कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्,
तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

तथा उस—

कर्म	= कर्मको (तू)	तस्मात्	= इससे
ब्रह्मोद्भवम्	= वेदसे उत्पन्न हुआ	सर्वगतम्	= सर्वव्यापी
विद्धि	= जान (और)	ब्रह्म	= परम अक्षर परमात्मा
ब्रह्म	= वेद		
अक्षर-समुद्भवम्	= अविनाशी (परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है	नित्यम्	= सदा ही
		यज्ञे	= यज्ञमें
		प्रतिष्ठितम्	= प्रतिष्ठित है

[सृष्टिचक्रके अनुसार न वर्तनेवालेकी निन्दा।]

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६॥

एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः,
अघायुः, इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति ॥ १६ ॥

पार्थ	= हे पार्थ		कर्मोंको नहीं करता है)
यः	= जो पुरुष	सः	= वह
इह	= इस लोकमें	इन्द्रियारामः	= इन्द्रियोंके सुखको भोगनेवाला
एवम्	= इस प्रकार	अघायुः	= पाप आयु (पुरुष)
प्रवर्तितम्	= चलाये हुए	मोघम्	= व्यर्थ ही
चक्रम्	= सृष्टिचक्रके	जीवति	= जीता है
न अनुवर्तयति	= अनुसार नहीं बर्तता है (अर्थात् शास्त्र-अनुसार		

आत्मज्ञानीके लिये कर्तव्यका अभाव ।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

यः, तु, आत्मरतिः, एव, स्यात्, आत्मतृप्तः, च, मानवः,
आत्मनि, एव, च, संतुष्टः, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते ॥ १७ ॥

तु	= परन्तु	आत्मनि	= आत्मामें
यः	= जो	एव	= ही
मानवः	= मनुष्य	संतुष्टः	= संतुष्ट
आत्मरतिः एव	= आत्माहीमें प्रीतिवाला	स्यात्	= होवे
		तस्य	= उसके लिये
च	= और	कार्यम्	= कोई कर्तव्य
आत्मतृप्तः	= आत्माहीमें तृप्त	न	= नहीं
च	= तथा	विद्यते	= है

कर्म करने और न करनेमें ज्ञानी की निःस्वार्थता-का कथन।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

न, एव, तस्य, कृतेन, अर्थः, न, अकृतेन, इह, कश्चन,
न, च, अस्य, सर्वभूतेषु, कश्चित्, अर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

क्योंकि—

इह	= इस संसारमें		(प्रयोजन)
तस्य	= उस (पुरुष) का	न	= नहीं है
कृतेन	= किये जानेसे	च	= तथा
एव	= भी (कोई)	अस्य	= इसका
अर्थः	= प्रयोजन	सर्वभूतेषु	= संपूर्ण भूतोंमें
न	= नहीं है (और)	कश्चित्	= कुछ भी
अकृतेन	= न किये जानेसे (भी)	अर्थव्यपाश्रयः	= स्वार्थका संबन्ध
कश्चन	= कोई	न	= नहीं है

तो भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं।

अनासक्त भावसे कर्तव्यकर्म करनेके लिये आज्ञा और उससे भगवत्-प्राप्ति।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर,
असक्तः, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः ॥ १९ ॥

तस्मात्	= इससे (तूं)	कर्म	= कर्मका
असक्तः	= अनासक्त हुआ	समाचर	= अच्छी प्रकार आचरण कर
सततम्	= निरन्तर		
कार्यम्	= कर्तव्य	हि	= क्योंकि

असक्तः	= अनासक्त	आचरन्	= करता हुआ
पूरुषः	= पुरुष	परम्	= परमात्माको
कर्म	= कर्म	आप्नोति	= प्राप्त होता है .

जनकादिके दृष्टान्तसे कर्म करनेके लिये प्रेरणा।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

कर्मणा, एव, हि, संसिद्धिम्, आस्थिताः, जनकादयः,
लोकसंग्रहम्, एव, अपि, संपश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि ॥ २० ॥

इस प्रकार—

जनकादयः	= जनकादि ज्ञानीजन भी (आसक्तिरहित)	हि	= इसलिये (तथा)
		लोकसंग्रहम्	= लोकसंग्रहको
		संपश्यन्	= देखता हुआ
कर्मणा	= कर्मद्वारा	अपि	= भी (तू)
एव	= ही	कर्तुम्	= कर्म करनेको
संसिद्धिम्	= परमसिद्धिको	एव	= ही
आस्थिताः	= प्राप्त हुए हैं	अर्हसि	= योग्य है

श्रेष्ठ पुरुषके आचरण प्रमाण-स्वरूप माने जानेका कथन।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

यत्, यत्, आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः,
सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते ॥ २१ ॥

क्योंकि—

श्रेष्ठः	= श्रेष्ठ पुरुष	आचरति	= आचरण करता है
यत्	= जो	इतरः	= अन्य
यत्	= जो	जनः	= पुरुष भी

तत् = उस
तत् = उसके
एव = ही
(अनुसार बर्तते हैं)
सः = वह पुरुष
यत् = जो कुछ
प्रमाणम् = प्रमाण
कुरुते = कर देता है
लोकः = लोग (भी)
तत् = उसके
अनुवर्तते = { अनुसार बर्तते हैं*

भगवान्के लिये कोई कर्तव्य न होनेपर भी लोक-संग्रहार्थ कर्म करनेकी आवश्यकता का निरूपण।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, किंचन,
न, अनवाप्तम्, अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि ॥ २२ ॥

इसलिये—

पार्थ = हे अर्जुन (यद्यपि)
मे = मुझे
त्रिषु = तीनों
लोकेषु = लोकोंमें
किंचन = कुछ भी
कर्तव्यम् = कर्तव्य
न = नहीं
अस्ति = है
च = तथा
(किंचित् भी)
अवाप्तव्यम् = { प्राप्त होने योग्य वस्तु
अनवाप्तम् = अप्राप्त
न = नहीं है
(तो भी मैं)
कर्मणि = कर्ममें
एव = ही
वर्ते = बर्तता हूं

* यहां क्रियामें एकवचन है, परन्तु लोक शब्द समुदायवाचक होनेसे भाषामें बहुवचनकी क्रिया लिखी गयी है।

["] यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः,
मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥२३॥

हि	=क्योंकि	पार्थ	=हे अर्जुन
यदि	=यदि	सर्वशः	=सब प्रकारसे
अहम्	=मैं	मनुष्याः	=मनुष्य
अतन्द्रितः	=सावधान हुआ	मम	=मेरे
जातु	=कदाचित्	वर्त्म	=बर्तावके
कर्मणि	=कर्ममें	अनुवर्तन्ते	=अनुसार बर्तते हैं अर्थात् बर्तने लग जायं
न	=न		
वर्तेयम्	=बर्तूं (तो)		

["] उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

उत्सीदेयुः, इमे, लोकाः, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्,
संकरस्य, च, कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमाः, प्रजाः ॥२४॥

तथा—

चेत्	=यदि	इमे	=यह सब
अहम्	=मैं	लोकाः	=लोक
कर्म	=कर्म	उत्सीदेयुः	=भ्रष्ट हो जायं
न	=न	च	=और (मैं)
कुर्याम्	=करूं (तो)	संकरस्य	=वर्णसंकरका

कर्ता	=करनेवाला	प्रजाः	=प्रजाको
स्याम्	=होऊं (तथा)	उपहन्याम्	=हनन करूं अर्थात् मारनेवाला बनूं
इमाः	=इस सारी		

लोकसंग्रहार्थं अनासक्तभावसे कर्म करनेके लिये प्रेरणा।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

सक्ताः, कर्मणि, अविद्वांसः, यथा, कुर्वन्ति, भारत, कुर्यात्, विद्वान्, तथा, असक्तः, चिकीर्षुः, लोकसंग्रहम् ॥२५॥

इसलिये—

भारत	=हे भारत	असक्तः	=अनासक्त हुआ
कर्मणि	=कर्ममें	विद्वान्	=विद्वान् (भी)
सक्ताः	=आसक्त हुए	लोकसंग्रहम्	=लोकशिक्षाको
अविद्वांसः	=अज्ञानी जन		
यथा	=जैसे	चिकीर्षुः	=चाहता हुआ
कुर्वन्ति	=कर्म करते हैं		
तथा	=वैसे ही	कुर्यात्	=कर्म करे

सकामी पुरुषोंकी बुद्धिमें भ्रम उत्पन्न करनेका निषेध।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसङ्गिनाम्, जोषयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन् ॥२६॥

तथा—

विद्वान्	=ज्ञानी पुरुष (को चाहिये कि)	अज्ञानाम्	=अज्ञानियोंकी
कर्मसङ्गिनाम्	=कर्मोंमें आसक्तिवाले	बुद्धिभेदम्	=बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा

न जनयेत्	= उत्पन्न न करे (किन्तु स्वयम्)	समाचरन्	= { अच्छी प्रकार करता हुआ (उनसे भी वैसे ही)
युक्तः	= { परमात्माके स्वरूपमें स्थित हुआ (और)		
सर्वकर्माणि	= सब कर्मोंको	जोषयेत्	= करावे

मूढ़ पुरुषका लक्षण।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

प्रकृतेः, क्रियमाणानि, गुणैः, कर्माणि, सर्वशः, अहंकारविमूढात्मा, कर्ता, अहम्, इति, मन्यते ॥२७॥

और हे अर्जुन ! वास्तवमें—

सर्वशः	= संपूर्ण	अहंकार-विमूढात्मा	= { अहंकारसे मोहित हुए अन्तःकरण-वाला पुरुष
कर्माणि	= कर्म		
प्रकृतेः	= प्रकृतिके		
गुणैः	= गुणोंद्वारा	अहम्	= मैं
क्रियमाणानि	= किये हुए हैं (तो भी)	कर्ता	= कर्ता हूं
		इति	= ऐसे
		मन्यते	= मान लेता है

तत्त्ववेत्ता पुरुषका लक्षण।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः, गुणाः, गुणेषु, वर्तन्ते, इति, मत्वा, न, सज्जते ॥२८॥

तु	= परन्तु	महाबाहो	= हे महाबाहो

गुणकर्मविभागयोः	= गुणविभाग और कर्मविभागके*	गुणेषु	= गुणोंमें
		वर्तन्ते	= वर्तते हैं
		इति	= ऐसे
तत्त्ववित्	= तत्त्वको† जाननेवाला (ज्ञानी पुरुष)	मत्वा	= मानकर
		न	= नहीं
गुणाः	= संपूर्ण गुण	सज्जते	= आसक्त होता है

अज्ञानियोंको कर्मोंसे चलायमान करनेका निषेध।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥ २९ ॥

प्रकृतेः, गुणसंमूढाः, सज्जन्ते, गुणकर्मसु, तान्, अकृत्स्नविदः, मन्दान्, कृत्स्नवित्, न, विचालयेत् ॥२९॥

और—

प्रकृतेः	= प्रकृतिके	मन्दान्	= मूर्खोंको
गुणसंमूढाः	= गुणोंसे मोहित हुए पुरुष	कृत्स्नवित्	= अच्छी प्रकार जाननेवाला (ज्ञानी पुरुष)
गुणकर्मसु	= गुण और कर्मोंमें		
सज्जन्ते	= आसक्त होते हैं		
तान्	= उन		
अकृत्स्नविदः	= अच्छी प्रकार न समझनेवाले	न विचालयेत्	= चलायमान न करे

* त्रिगुणात्मक मायाके कार्यरूप पांच महाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और शब्दादि पांच विषय इन सबके समुदायका नाम 'गुणविभाग' है और इनकी परस्परकी चेष्टाओंका नाम 'कर्मविभाग' है ।

† उपरोक्त 'गुणविभाग' और 'कर्मविभाग' से आत्माको पृथक् अर्थात् निर्लेप जानना ही इनका तत्त्व जानना है ।

संपूर्ण कर्म भगवान्में अर्पण करके युद्ध करने-की आज्ञा।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

मयि, सर्वाणि, कर्माणि, संन्यस्य, अध्यात्मचेतसा,
निराशीः, निर्ममः, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः ॥३०॥

इसलिये हे अर्जुन ! तूं-

अध्यात्म-चेतसा	= ध्याननिष्ठ चित्तसे		(और)
सर्वाणि	= संपूर्ण	निर्ममः	= ममतारहित
कर्माणि	= कर्मोंको	भूत्वा	= होकर
मयि	= मुझमें	विगतज्वरः	= सन्तापरहित (हुआ)
संन्यस्य	= समर्पण करके		
निराशीः	= आशारहित	युध्यस्व	= युद्ध कर

भगवत्सिद्धान्त-के अनुकूल बर्तनेसे मुक्ति।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥ २१ ॥

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः,
श्रद्धावन्तः, अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः ॥३१॥

और हे अर्जुन-

ये	= जो कोई	नित्यम्	= सदा (ही)
अपि	= भी	मे	= मेरे
मानवाः	= मनुष्य	इदम्	= इस
अनसूयन्तः	= दोषबुद्धिसे रहित	मतम्	= मतके
	(और)	अनुतिष्ठन्ति	= अनुसार बर्तते हैं
श्रद्धावन्तः	= श्रद्धासे युक्त हुए	ते	= वे पुरुष

कर्मभिः = संपूर्ण कर्मोंसे | मुच्यन्ते = छूट जाते हैं

भगवत्सिद्धान्त-के अनुकूल न वर्तनेसे अधोगति।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्तः, न, अनुतिष्ठन्ति, मे, मतम्,
सर्वज्ञानविमूढान्, तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतसः ॥३२॥

तु	= और	तान्	= उन
ये	= जो	सर्वज्ञान-विमूढान्	= संपूर्ण ज्ञानोंमें मोहित चित्तवालोंको
अभ्यसूयन्तः	= दोषदृष्टिवाले		
अचेतसः	= मूर्खलोग		
एतत्	= इस		(तूं)
मे	= मेरे		
मतम्	= मतके	नष्टान्	= कल्याणसे भ्रष्ट हुए (ही)
न अनुतिष्ठन्ति	= अनुसार नहीं बर्तते हैं	विद्धि	= जान

स्वाभाविक कर्मोंकी चेष्टामें प्रकृति की प्रबलता।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

सदृशम्, चेष्टते, स्वस्याः, प्रकृतेः, ज्ञानवान्, अपि,
प्रकृतिम्, यान्ति, भूतानि, निग्रहः, किम्, करिष्यति ॥३३॥

क्योंकि—

भूतानि	= सभी प्राणी	अर्थात् अपने स्वभावसे
प्रकृतिम्	= प्रकृतिको	परवश हुए कर्म करते हैं
यान्ति	= प्राप्त होते हैं	ज्ञानवान् = ज्ञानवान्

अपि	= भी		(फिर इसमें किसीका)
स्वस्याः	= अपनी	निग्रहः	= हठ
प्रकृतेः	= प्रकृतिके	किम्	= क्या
सदृशम्	= अनुसार		
चेष्टते	= चेष्टा करता है	करिष्यति	= करेगा

राग-द्वेषके वशमें होनेका निषेध।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ, तयोः, न, वशम्, आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ ॥३४॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

इन्द्रियस्य	= इन्द्रिय	वशम्	= वशमें
इन्द्रियस्य	= इन्द्रियके	न	= नहीं
अर्थे	= अर्थमें अर्थात् सभी इन्द्रियोंके भोगोंमें	आगच्छेत्	= होवे
		हि	= क्योंकि
		अस्य	= इसके
		तौ	= वे दोनों (ही)
व्यवस्थितौ	= स्थित (जो)	परिपन्थिनौ	= कल्याण-मार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं
रागद्वेषौ	= राग और द्वेष हैं		
तयोः	= उन दोनोंके		

स्वधर्म पालनसे कल्याण और परधर्मसे हानि।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः ॥३५॥

इसलिये उन दोनोंको जीतकर सावधान हुआ स्वधर्मका आचरण करे, क्योंकि—

स्वनुष्ठितात्	= अच्छी प्रकार आचरण किये हुए	श्रेयान्	= अति उत्तम है
परधर्मात्	= दूसरेके धर्मसे	स्वधर्मे	= अपने धर्ममें
विगुणः	= गुणरहित	निधनम्	= मरना (भी)
(अपि)	= भी	श्रेयः	= कल्याणकारक है (और)
स्वधर्मः	= अपना धर्म	परधर्मः	= दूसरेका धर्म
		भयावहः	= भयको देनेवाला है

अर्जुन उवाच

बलात्कारसे पाप करानेमें कौन हेतु है इस विषयमें अर्जुन-का प्रश्न।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

अथ, केन, प्रयुक्तः, अयम्, पापम्, चरति, पूरुषः,
अनिच्छन्, अपि, वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजितः ॥३६॥

इसपर अर्जुनने पूछा कि—

वार्ष्णेय	= हे कृष्ण	अनिच्छन्	= न चाहता हुआ
अथ	= फिर	अपि	= भी
अयम्	= यह	केन	= किससे
पूरुषः	= पुरुष	प्रयुक्तः	= प्रेरा हुआ
बलात्	= बलात्कारसे	पापम्	= पापका
नियोजितः	= लगाये हुएके	चरति	= आचरण करता है
इव	= सदृश		

श्रीभगवानुवाच

बलात्कारसे पाप करानेमें कामरूप हेतुका कथन।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

कामः, एषः, क्रोधः, एषः, रजोगुणसमुद्भवः, महाशनः, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम् ॥३७॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन—

रजोगुणसमुद्भवः	= रजोगुणसे उत्पन्न हुआ		(और)
		महापाप्मा	= बड़ा पापी है
एषः	= यह		
कामः	= काम (ही)	इह	= इस विषयमें
क्रोधः	= क्रोध है		
एषः	= यह (ही)	एनम्	= इसको ही
			(तू)
महाशनः	= महा अशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला	वैरिणम्	= वैरी
		विद्धि	= जान

कामरूप वैरीसे ज्ञान ढका हुआ है इस विषयका दृष्टान्तों सहित कथन।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

धूमेन, आव्रियते, वह्निः, यथा, आदर्शः, मलेन, च, यथा, उल्बेन, आवृतः, गर्भः, तथा, तेन, इदम्, आवृतम् ॥३८॥

यथा	= जैसे	मलेन	= मलसे
धूमेन	= धूएंसे	आदर्शः	= दर्पण
वह्निः	= अग्नि	आव्रियते	= ढका जाता है
च	= और		(तथा)

यथा	=जैसे	तथा	=वैसे ही
उल्बेन	=जेरसे	तेन	=उस कामके द्वारा
गर्भः	=गर्भ	इदम्	=यह (ज्ञान)
आवृतः	=ढका हुआ है	आवृतम्	=ढका हुआ है

["] आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।

कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

आवृतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिनः, नित्यवैरिणा,

कामरूपेण, कौन्तेय, दुष्पूरेण, अनलेन, च ॥३९॥

च	=और	कामरूपेण	=कामरूप
कौन्तेय	=हे अर्जुन	ज्ञानिनः	=ज्ञानियोंके
एतेन	=इस	नित्यवैरिणा	=नित्य वैरीसे
अनलेन	=अग्नि (सदृश)	ज्ञानम्	=ज्ञान
दुष्पूरेण	=न पूर्ण होनेवाले	आवृतम्	=ढका हुआ है

कामके वासस्थानोंका कथन। इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते,

एतैः, विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवृत्य, देहिनम् ॥४०॥

तथा—

इन्द्रियाणि	=इन्द्रियां	अधिष्ठानम्	=वासस्थान
मनः	=मन (और)	उच्यते	=कहे जाते हैं (और)
बुद्धिः	=बुद्धि		
अस्य	=इसके	एषः	=यह (काम)

एतैः	= इन (मन, बुद्धि और इन्द्रियों) द्वारा ही	आवृत्य	= आच्छादित करके (इस)
		देहिनम्	= जीवात्माको
ज्ञानम्	= ज्ञानको	विमोहयति	= मोहित करता है

इन्द्रियोंको वशमें करके कामको मारनेकी आज्ञा।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ, पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

तस्मात्	= इसलिये	ज्ञानविज्ञान-नाशनम्	= ज्ञान और विज्ञानके नाश करने-वाले
भरतर्षभ	= हे अर्जुन		
त्वम्	= तूं		
आदौ	= पहिले	एनम्	= इस (काम)
इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको	पाप्मानम्	= पापीको
		हि	= निश्चयपूर्वक
नियम्य	= वशमें करके	प्रजहि	= मार

इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे भी आत्माकी अति श्रेष्ठताका कथन

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः, मनसः, तु, परा, बुद्धिः, यः, बुद्धेः, परतः, तु, सः ॥४२॥

और यदि तूं समझे कि इन्द्रियोंको रोककर कामरूप वैरीको मारनेकी मेरी शक्ति नहीं है तो तेरी यह भूल है; क्योंकि इस शरीरसे तो—

इन्द्रियाणि	= इन्द्रियोंको	पराणि	= परे (श्रेष्ठ बलवान् और सूक्ष्म)

आहुः	=कहते हैं (और)	परा	=परे
		बुद्धिः	=बुद्धि है
इन्द्रियेभ्यः	=इन्द्रियोंसे	तु	=और
परम्	=परे	यः	=जो
मनः	=मन है	बुद्धेः	=बुद्धिसे (भी)
तु	=और	परतः	=अत्यन्त परे है
मनसः	=मनसे	सः	=वह (आत्मा) है

बुद्धिसे परे आत्माको जानकर और मनको वशमें करके कामको मारनेकी आज्ञा।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना,
जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम् ॥ ४३ ॥

एवम्	=इस प्रकार	आत्मानम्	=मनको
बुद्धेः	=बुद्धिसे	संस्तभ्य	=वशमें करके
परम्	=परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्माको	महाबाहो	=हे महाबाहो (अपनी शक्तिको समझकर इस)
		दुरासदम्	=दुर्जय
बुद्ध्वा	=जानकर (और)	कामरूपम्	=कामरूप
		शत्रुम्	=शत्रुको
आत्मना	=बुद्धिके द्वारा	जहि	=मार

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से १८ तक सगुण भगवान्‌का प्रभाव और निष्काम कर्मयोगका विषय, (१९—२३) योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमा, (२४—३२) फलसहित पृथक्-पृथक् यज्ञोंका कथन, (३३—४२) ज्ञानकी महिमा।

श्रीभगवानुवाच

योगकी परम्परा और बहुत काल से उसके लोप हो जानेका कथन।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्,
विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन—

अहम्	= मैंने		(अपने पुत्र)
इमम्	= इस	मनवे	= मनुके प्रति
अव्ययम्	= अविनाशी	प्राह	= कहा (और)
योगम्	= योगको (कल्पके आदिमें)	मनुः	= मनुने
विवस्वते	= सूर्यके प्रति	इक्ष्वाकवे	= (अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकुके प्रति
प्रोक्तवान्	= कहा था (और)		
विवस्वान्	= सूर्यने	अब्रवीत्	= कहा

[”] **एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।**
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षयः, विदुः,
सः, कालेन, इह, महता, योगः, नष्टः, परंतप ॥ २ ॥

एवम्	= इस प्रकार	सः	= वह
परम्पराप्राप्तम्	= परम्परासे प्राप्त हुए	योगः	= योग
इमम्	= इस (योग) को	महता	= बहुत
राजर्षयः	= राजर्षियोंने	कालेन	= कालसे
विदुः	= जाना (परंतु)	इह	= इस (पृथिवी) लोकमें
परंतप	= हे अर्जुन	नष्टः	= लोप (प्रायः) हो गया था

पुरातन योगकी प्रशंसा।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः, भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम् ॥ ३ ॥

सः	= वह	भक्तः	= भक्त
एव	= ही	च	= और
अयम्	= यह	सखा	= प्रिय सखा
पुरातनः	= पुरातन	असि	= है
योगः	= योग	इति	= इसलिये (तथा)
अद्य	= अब	एतत्	= यह (योग)
मया	= मैंने	उत्तमम्	= बहुत उत्तम (और)
ते	= तेरे लिये		
प्रोक्तः	= वर्णन किया है		
हि	= क्योंकि (तू)	रहस्यम्	= रहस्य अर्थात् अतिमर्मका विषय है
मे	= मेरा		

अर्जुन उवाच

श्रीकृष्ण भगवान्‌का जन्म आधुनिक मानकर अर्जुनका प्रश्न करना ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः,
कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान्, इति ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके वचन सुनकर अर्जुनने पूछा, हे भगवन्—

भवतः	= आपका	एतत्	= इस योगको (कल्पके)
जन्म	= जन्म (तो)	आदौ	= आदिमें
अपरम्	= आधुनिक अर्थात् अब हुआ है (और)	त्वम्	= आपने
		प्रोक्तवान्	= कहा था
विवस्वतः	= सूर्यका	इति	= यह (मैं)
जन्म	= जन्म	कथम्	= कैसे
परम्	= बहुत पुराना है (इसलिये)	विजानीयाम्	= जानूं

श्रीभगवानुवाच

श्रीभगवान्‌द्वारा अपने और अर्जुनके बहुत जन्म व्यतीत होनेका कथन ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,
तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परंतप ॥ ५ ॥

इसपर श्रीकृष्ण महाराज बोले—

अर्जुन	= हे अर्जुन	च	= और
मे	= मेरे	तव	= तेरे

बहूनि	=बहुतसे	सर्वाणि	=सबको
जन्मानि	=जन्म	त्वम्	=तूं
व्यतीतानि	=हो चुके हैं (परन्तु)	न	=नहीं
		वेत्थ	=जानता है (और)
परंतप	=हे परंतप	अहम्	=मैं
तानि	=उन	वेद	=जानता हूं

श्रीभगवान्‌के जन्मकी अलौकिकता।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्,
प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, संभवामि, आत्ममायया ॥ ६ ॥

तथा मेरा जन्म प्राकृत मनुष्योंके सदृश नहीं है—

(मैं)		ईश्वरः	=ईश्वर
अव्ययात्मा	=अविनाशी-स्वरूप	सन्	=होनेपर
		अपि	=भी
अजः	=अजन्मा	स्वाम्	=अपनी
सन्	=होनेपर	प्रकृतिम्	=प्रकृतिको
अपि	=भी (तथा)	अधिष्ठाय	=आधीन करके
भूतानाम्	=सब भूत-प्राणियोंका	आत्ममायया	=योगमायासे
		संभवामि	=प्रकट होता हूं

श्रीभगवान्‌के अवतार लेनेके समयका कथन।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत,
अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम् ॥ ७ ॥

भारत	=हे भारत	भवति	=होती है
यदा	=जब	तदा	=तब-तब
यदा	=जब	हि	=ही
धर्मस्य	=धर्मकी	अहम्	=मैं
ग्लानिः	=हानि (और)	आत्मानम्	=अपने रूपको
अधर्मस्य	=अधर्मकी	सृजामि	=रचता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं
अभ्युत्थानम्	=वृद्धि		

श्रीभगवान्के अवतार लेनेके कारणका कथन।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि, युगे, युगे ॥८॥

क्योंकि–

साधूनाम्	=साधु पुरुषोंका	विनाशाय	=नाश करनेके लिये (तथा)
परित्राणाय	=उद्धार करनेके लिये	धर्मसंस्थापनार्थाय	=धर्म स्थापन करनेके लिये
च	=और	युगे	=युग
दुष्कृताम्	=दूषित कर्म करनेवालोंका	युगे	=युगमें
		संभवामि	=प्रकट होता हूं

श्रीभगवान्के जन्म कर्मोंको दिव्य जाननेका फल।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः, त्यक्त्वा, देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन॥९॥

इसलिये—

अर्जुन	=हे अर्जुन	सः	=वह
मे	=मेरा (वह)	देहम्	=शरीरको
जन्म	=जन्म	त्यक्त्वा	=त्यागकर
च	=और	पुनः	=फिर
कर्म	=कर्म	जन्म	=जन्मको
दिव्यम्	=दिव्य अर्थात् अलौकिक है	न	=नहीं
एवम्	=इस प्रकार	एति	=प्राप्त होता है (किन्तु)
यः	=जो पुरुष	माम्	=मुझे (ही)
तत्त्वतः	=तत्त्वसे*		
वेत्ति	=जानता है	एति	=प्राप्त होता है

श्रीभगवान्को प्राप्त हुए पुरुषोंके लक्षण।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

वीतरागभयक्रोधाः, मन्मयाः, माम्, उपाश्रिताः, बहवः, ज्ञानतपसा, पूताः, मद्भावम्, आगताः ॥१०॥

---

* सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज, अविनाशी और सब-भूतोंके परम गति तथा परम आश्रय हैं, वे केवल धर्मको स्थापन करने और संसारका उद्धार करनेके लिये ही अपनी योगमायासे सगुणरूप होकर प्रकट होते हैं। इसलिये परमेश्वरके समान सुहृद् प्रेमी और पतितपावन दूसरा कोई नहीं है ऐसा समझकर जो पुरुष परमेश्वरका अनन्य प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ आसक्तिरहित संसारमें बरतता है वही उनको तत्त्वसे जानता है।

और हे अर्जुन ! पहिले भी–

वीतराग-भयक्रोधाः	= राग भय और क्रोधसे रहित	उपाश्रिताः	= शरण हुए
		बहवः	= बहुतसे पुरुष
मन्मयाः	= अनन्यभावसे मेरेमें स्थिति-वाले	ज्ञानतपसा	= ज्ञानरूप तपसे
		पूताः	= पवित्र हुए
		मद्भावम्	= मेरे स्वरूपको
माम्	= मेरे	आगताः	= प्राप्त हो चुके हैं

श्रीभगवान्‌को भजने वाले पुरुषोंके अनुकूल भगवान्‌के वर्तावका कथन ।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

ये, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्, मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः ॥ ११ ॥

क्योंकि–

पार्थ	= हे अर्जुन	भजामि	= भजता हूं (इस रहस्यको जानकर ही)
ये	= जो		
माम्	= मेरेको		
यथा	= जैसे	मनुष्याः	= बुद्धिमान् मनुष्यगण
प्रपद्यन्ते	= भजते हैं		
अहम्	= मैं (भी)	सर्वशः	= सब प्रकारसे
तान्	= उनको	मम	= मेरे
तथा	= वैसे	वर्त्म	= मार्गके
एव	= ही	अनुवर्तन्ते	= अनुसार बर्तते हैं

सकामी पुरुषोंको देवताओंके पूजनसे शीघ्र फल प्राप्तिका कथन ।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

काङ्क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः, क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा ॥ १२ ॥

और जो मेरेको तत्त्वसे नहीं जानते हैं वे पुरुष—

इह	=इस		(और उनके)
मानुषे	=मनुष्य	कर्मजा	=कर्मोंसे उत्पन्न हुई
लोके	=लोकमें		
कर्मणाम्	=कर्मोंके	सिद्धिः	=सिद्धि (भी)
सिद्धिम्	=फलको	क्षिप्रम्	=शीघ्र
काङ्क्षन्तः	=चाहते हुए	हि	=ही
देवताः	=देवताओंको	भवति	=होती है
यजन्ते	=पूजते हैं		

परन्तु उनको मेरी प्राप्ति नहीं होती इसलिये तूं मेरेको ही सब प्रकारसे भज।

चारों वर्णोंकी रचना करनेमें भगवान् के अकर्तापन का कथन।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः,
तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम् ॥१३॥

तथा हे अर्जुन—

गुणकर्मविभागशः	=गुण और कर्मोंके विभागसे	कर्तारम्	=कर्ताको
		अपि	=भी
चातुर्वर्ण्यम्	=ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र	माम्	=मुझ
		अव्ययम्	=अविनाशी परमेश्वर को (तूं)
मया	=मेरे द्वारा		
सृष्टम्	=रचे गये हैं	अकर्तारम्	=अकर्ता (ही)
तस्य	=उनके	विद्धि	=जान

श्रीभगवान्‌के कर्मोंकी दिव्यता और उनके जाननेका फल।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा, इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते ॥१४॥

क्योंकि—

कर्मफले	=कर्मोंके फलमें	इति	=इस प्रकार
मे	=मेरी	यः	=जो
स्पृहा	=स्पृहा	माम्	=मेरेको
न	=नहीं है (इसलिये)	अभिजानाति	=तत्त्वसे जानता है
माम्	=मेरेको	सः	=वह भी
कर्माणि	=कर्म	कर्मभिः	=कर्मोंसे
न लिम्पन्ति	=लिपायमान नहीं करते	न	=नहीं
		बध्यते	=बंधता है

पूर्वज मुमुक्षु पुरुषोंकी भाँति निष्काम कर्म करनेके लिये आज्ञा।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः, कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कृतम् ॥१५॥

तथा—

पूर्वैः	=पहिले होनेवाले	ज्ञात्वा	=जानकर
मुमुक्षुभिः	=मुमुक्षु पुरुषों-द्वारा	कर्म	=कर्म
		कृतम्	=किया गया है
अपि	=भी	तस्मात्	=इससे
एवम्	=इस प्रकार	त्वम्	=तूं (भी)

पूर्वैः	=पूर्वजोंद्वारा	कर्म	=कर्मको
पूर्वतरम् कृतम्	=सदासे किये हुए	एव	=ही
		कुरु	=कर

कर्म और अकर्म को तत्त्वसे जाननेका फल।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६॥

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः,
तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात् ॥ १६॥

परन्तु—

कर्म	=कर्म	तत्	=वह
किम्	=क्या है (और)	कर्म	=कर्म अर्थात् कर्मोंका तत्त्व
अकर्म	=अकर्म		
किम्	=क्या है	ते	=तेरे लिये
इति	=ऐसे	प्रवक्ष्यामि	=अच्छी प्रकार कहूंगा (कि)
अत्र	=इस विषयमें		
कवयः	=बुद्धिमान् पुरुष	यत्	=जिसको
अपि	=भी	ज्ञात्वा	=जानकर (तूं)
मोहिताः	=मोहित हैं	अशुभात्	=अशुभ अर्थात् संसारबन्धनसे
	(इसलिये मैं)	मोक्ष्यसे	=छूट जायगा

कर्म, विकर्म और अकर्मके स्वरूप-को जानने के लिये प्रेरणा।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७॥

कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः,
अकर्मणः, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः ॥ १७॥

कर्मणः	=कर्मका स्वरूप	अपि	=भी

बोद्धव्यम् = जानना चाहिये
च = और
अकर्मणः = { अकर्मका स्वरूप (भी)
बोद्धव्यम् = जानना चाहिये
च = तथा

विकर्मणः = { निषिद्ध कर्मका स्वरूप (भी)
बोद्धव्यम् = जानना चाहिये
हि = क्योंकि
कर्मणः = कर्मकी
गतिः = गति
गहना = गहन है

कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मको तत्त्वसे जाननेका फल।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः, सः, बुद्धिमान्, मनुष्येषु, सः, युक्तः, कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

यः = जो पुरुष
कर्मणि = { कर्ममें अर्थात् अहंकाररहित की हुई संपूर्ण चेष्टाओंमें
अकर्म = { अकर्म अर्थात् वास्तवमें उनका न होनापना
पश्येत् = देखे
च = और
यः = जो पुरुष
अकर्मणि = { अकर्ममें अर्थात् अज्ञानी पुरुषद्वारा किये हुए संपूर्ण क्रियाओंके त्यागमें

(भी)
कर्म = { कर्मको अर्थात् त्यागरूप क्रियाको (देखे)
सः = वह पुरुष
मनुष्येषु = मनुष्योंमें
बुद्धिमान् = बुद्धिमान् है
(और)
सः = वह
युक्तः = योगी
कृत्स्नकर्मकृत् = { संपूर्ण कर्मोंका करनेवाला है

कामना और संकल्प रहित आचरण वाले ज्ञानीकी प्रशंसा।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९॥

यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसंकल्पवर्जिताः, ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहुः, पण्डितम्, बुधाः ॥१९॥

और हे अर्जुन—

यस्य = जिसके
सर्वे = संपूर्ण
समारम्भाः = कार्य
कामसंकल्पवर्जिताः = कामना और संकल्पसे रहित हैं (ऐसे)
तम् = उस
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् = ज्ञानरूप अग्नि-द्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुषको
बुधाः = ज्ञानीजन (भी)
पण्डितम् = पण्डित
आहुः = कहते हैं

फलासक्तिको त्यागकर कर्म करनेवाले की प्रशंसा।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥ २०॥

त्यक्त्वा, कर्मफलासङ्गम्, नित्यतृप्तः, निराश्रयः, कर्मणि, अभिप्रवृत्तः, अपि, न, एव, किंचित्, करोति, सः ॥२०॥

और जो पुरुष—

निराश्रयः = सांसारिक आश्रयसे रहित
नित्यतृप्तः = सदा परमानन्द परमात्मामें तृप्त है
सः = वह
कर्मफलासङ्गम् = कर्मोंके फल और सङ्ग अर्थात् कर्तृत्व-अभिमानको
त्यक्त्वा = त्यागकर
कर्मणि = कर्ममें

अभिप्रवृत्तः	= अच्छी प्रकार बर्तता हुआ	एव	= भी
अपि	= भी	न	= नहीं
किंचित्	= कुछ	करोति	= करता है

केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करते हुए संन्यासीको पाप न लगनेका कथन।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः,
शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥२१॥

और–

यत-चित्तात्मा	= जीत लिया है अन्तःकरण और शरीर जिसने (तथा)	केवलम्	= केवल
		शारीरम्	= शरीरसम्बन्धी
		कर्म	= कर्मको
त्यक्तसर्व-परिग्रहः	= त्याग दी है संपूर्ण भोगोंकी सामग्री जिसने (ऐसा)	कुर्वन्	= करता हुआ (भी)
		किल्बिषम्	= पापको
निराशीः	= आशारहित पुरुष	न	= नहीं
		आप्नोति	= प्राप्त होता है

निष्कामकर्मयोग के साधक का लक्षण और कर्मोंसे न बंधनेका कथन।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ २२ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः,
समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते ॥२२॥

और—

यदृच्छा-लाभ-संतुष्टः = अपने आप जो कुछ आ प्राप्त हो उसमें ही संतुष्ट रहनेवाला (और)

द्वन्द्वातीतः = हर्षशोकादि द्वन्द्वोंसे अतीत हुआ (तथा)

विमत्सरः = मत्सरता अर्थात् ईर्षासे रहित

सिद्धौ = सिद्धि
च = और
असिद्धौ = असिद्धिमें
समः = समत्वभाववाला पुरुष
(कर्मोंको)
कृत्वा = करके
अपि = भी
न = नहीं
निबध्यते = बंधता है

यज्ञार्थ कर्म करनेवाले ज्ञानी के संपूर्ण कर्म नष्ट होनेका कथन।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

गतसङ्गस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः, यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते ॥२३॥

क्योंकि—

गतसङ्गस्य = आसक्तिसे रहित

ज्ञानावस्थित-चेतसः = ज्ञानमें स्थित हुए चित्तवाले

यज्ञाय = यज्ञके लिये

आचरतः = आचरण करते हुए
मुक्तस्य = मुक्त पुरुषके
समग्रम् = संपूर्ण
कर्म = कर्म
प्रविलीयते = नष्ट हो जाते हैं

ब्रह्मयज्ञका कथन।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,
ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

उन यज्ञके लिये आचरण करनेवाले पुरुषोंमेंसे कोई तो इस भावसे यज्ञ करते हैं कि—

अर्पणम्	= अर्पण अर्थात् स्रुवादिक (भी)	हुतम्	= हवन किया गया है (वह भी ब्रह्म ही है इसलिये)
ब्रह्म	= ब्रह्म है (और)	ब्रह्मकर्म-समाधिना	= ब्रह्मरूप कर्ममें समाधिस्थ हुए
हविः	= हवि अर्थात् हवन करने योग्य द्रव्य (भी)	तेन	= उस पुरुषद्वारा (जो)
ब्रह्म	= ब्रह्म है (और)	गन्तव्यम्	= प्राप्त होने योग्य है (वह भी)
ब्रह्माग्नौ	= ब्रह्मरूप अग्निमें	ब्रह्म	= ब्रह्म
ब्रह्मणा	= ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा (जो)	एव	= ही है

देवयज्ञ और ज्ञानयज्ञ का कथन।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते,
ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुह्वति ॥२५॥

और–

अपरे	= दूसरे	यज्ञम्	= यज्ञको
योगिनः	= योगीजन	एव	= ही
दैवम्	= देवताओंके पूजनरूप	पर्युपासते	= अच्छी प्रकार उपासते हैं अर्थात् करते हैं

(और)	यज्ञेन = यज्ञके द्वारा
अपरे = दूसरे (ज्ञानीजन)	एव = ही
ब्रह्माग्नौ = परब्रह्म परमात्मा-रूप अग्निमें	यज्ञम् = यज्ञको
	उपजुह्वति = हवन* करते हैं

इन्द्रियसंयम-रूप यज्ञ और विषयहवनरूप यज्ञका कथन।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥ २६॥

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुह्वति,
शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुह्वति ॥२६॥

और—

अन्ये = अन्य योगीजन	अन्ये = और दूसरे योगीलोग
श्रोत्रादीनि = श्रोत्रादिक	शब्दादीन् = शब्दादिक
इन्द्रियाणि = सब इन्द्रियोंको	विषयान् = विषयोंको
संयमाग्निषु = संयम अर्थात् स्वाधीनतारूप अग्निमें	इन्द्रियाग्निषु = इन्द्रियरूप अग्निमें
जुह्वति = हवन करते हैं अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर अपने वशमें कर लेते हैं	जुह्वति = हवन करते हैं अर्थात् रागद्वेषरहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण करते हुए भी भस्मरूप करते हैं

* परब्रह्म परमात्मामें ज्ञानद्वारा एकीभावसे स्थित होना ही ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञके द्वारा यज्ञको हवन करना है।

अन्तःकरण-संयमरूप यज्ञ।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे,
आत्मसंयमयोगाग्नौ, जुह्वति, ज्ञानदीपिते ॥२७॥

और–

अपरे	= दूसरे योगीजन	ज्ञान-दीपिते	= ज्ञानसे प्रकाशित हुई
सर्वाणि	= संपूर्ण	आत्मसंयम-योगाग्नौ	= परमात्मामें स्थितिरूप योगाग्निमें
इन्द्रिय-कर्माणि	= इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको		
च	= तथा		
प्राण-कर्माणि	= प्राणोंके व्यापारको	जुह्वति	= हवन करते हैं*

द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञका कथन

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे,
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः, च, यतयः, संशितव्रताः ॥२८॥

और–

अपरे	= दूसरे (कई पुरुष)	तथा	= वैसे ही (कई पुरुष)
द्रव्य-यज्ञाः	= ईश्वर अर्पण बुद्धिसे लोकसेवामें द्रव्य लगानेवाले हैं	तपो-यज्ञाः	= स्वधर्मपालनरूप तप-यज्ञको करनेवाले हैं (और कई)

* सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवाय अन्य किसीका भी न चिन्तन करना ही उन सबका हवन करना है।

योग-यज्ञाः = अष्टाङ्ग योगरूप यज्ञको करनेवाले हैं
च = और (दूसरे)
संशित-व्रताः = अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त
यतयः = यत्नशील पुरुष
स्वाध्याय-ज्ञानयज्ञाः = भगवान्‌के नाम-का जप तथा भगवत्प्राप्ति-विषयक शास्त्रों-का अध्ययनरूप ज्ञानयज्ञके करनेवाले हैं

यज्ञरूपसे त्रिविध प्राणायामका कथन ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

अपाने, जुह्वति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे,
प्राणापानगती, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

और दूसरे योगीजन—

अपाने = अपानवायुमें
प्राणम् = प्राणवायुको
जुह्वति = हवन करते हैं
तथा = वैसे ही (अन्य योगीजन)
प्राणे = प्राणवायुमें
अपानम् = अपानवायुको
(जुह्वति) = हवन करते हैं (तथा)
अपरे = अन्य योगीजन
प्राणापान-गती = प्राण और अपानकी गतिको
रुद्ध्वा = रोककर
प्राणायाम-परायणाः = प्राणायामके परायण (होते हैं)

यज्ञरूपसे चतुर्थ प्राणायाम का कथन और सब प्रकारके यज्ञ करनेवालों की प्रशंसा ।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुह्वति,
सर्वे, अपि, एते, यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

और—

अपरे	= दूसरे	यज्ञक्षपित-कल्मषाः	= यज्ञोंद्वारा नाश हो गया है पाप जिनका (ऐसे)
नियताहाराः	= नियमित आहार*करनेवाले योगीजन	एते	= यह
प्राणान्	= प्राणोंको	सर्वे	= सब
प्राणेषु	= प्राणोंमें ही	अपि	= ही (पुरुष)
जुह्वति	= हवन करते हैं (इस प्रकार)	यज्ञविदः	= यज्ञोंको जाननेवाले हैं

यज्ञ करनेवालोंको भगवत्प्राप्ति और न करनेवालोंकी निन्दा।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्,
न, अयम्, लोकः, अस्ति, अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

और—

कुरुसत्तम	= हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन		(और)
		अयज्ञस्य	= यज्ञरहित पुरुषको
यज्ञ-शिष्टामृत-भुजः	= यज्ञोंके परिणाम-रूपज्ञानामृतको भोगनेवाले योगीजन	अयम्	= यह
		लोकः	= मनुष्यलोक (भी सुखदायक)
		न	= नहीं
सनातनम्	= सनातन	अस्ति	= है (फिर)
ब्रह्म	= परब्रह्म परमात्माको	अन्यः	= परलोक
		कुतः	= कैसे
यान्ति	= प्राप्त होते हैं		(सुखदायक होगा)

* गीता अध्याय ६ श्लोक १७ में देखना चाहिये ।

यज्ञोंको तत्त्वसे जाननेका फल।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, वितताः, ब्रह्मणः, मुखे, कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे ॥३२॥

एवम्	= ऐसे	कर्मजान्	= शरीर, मन और इन्द्रियोंकी क्रियाद्वारा ही उत्पन्न होनेवाले
बहुविधाः	= बहुत प्रकारके	विद्धि	= जान
यज्ञाः	= यज्ञ	एवम्	= इस प्रकार (तत्त्वसे)
ब्रह्मणः	= वेदकी	ज्ञात्वा	= जानकर (निष्काम कर्मयोगद्वारा
मुखे	= वाणीमें	विमोक्ष्यसे	= संसारबन्धनसे मुक्त हो जायगा
वितताः	= विस्तार किये गये हैं		
तान्	= उन		
सर्वान्	= सबको		

ज्ञानयज्ञकी प्रशंसा।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परंतप, सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते ॥३३॥

और—

परंतप	= हे अर्जुन	यज्ञात्	= यज्ञसे
द्रव्यमयात्	= सांसारिक वस्तुओंसे सिद्ध होनेवाले	ज्ञानयज्ञः	= ज्ञानरूप यज्ञ (सब प्रकार)
		श्रेयान्	= श्रेष्ठ है

(क्योंकि)
पार्थ =हे पार्थ
सर्वम् =संपूर्ण
अखिलम् =यावन्मात्र
कर्म =कर्म
ज्ञाने =ज्ञानमें
परिसमाप्यते = शेष होते हैं अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है

ज्ञानके लिये ज्ञानवानों की शरण जानेका कथन ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया, उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

इसलिये तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंसे—

प्रणिपातेन = भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम (तथा)
सेवया =सेवा (और)
परिप्रश्नेन = निष्कपटभावसे किये हुए प्रश्नद्वारा
तत् =उस ज्ञानको
विद्धि =जान
ते =वे
तत्त्वदर्शिनः = मर्मको जाननेवाले
ज्ञानिनः =ज्ञानीजन (तुझे उस)
ज्ञानम् =ज्ञानका
उपदेक्ष्यन्ति = उपदेश करेंगे

ज्ञानका फल

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव, येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि ॥३५॥

कि—

यत् =जिसको
ज्ञात्वा =जानकर (तू)

पुनः =फिर
एवम् =इस प्रकार
मोहम् =मोहको
न =नहीं
यास्यसि =प्राप्त होगा (और)
पाण्डव =हे अर्जुन
येन ={जिस ज्ञानके द्वारा (सर्वव्यापी अनन्त चेतनरूप हुआ)
आत्मनि={अपने अन्तर्गत समष्टि बुद्धिके आधार
अशेषेण =संपूर्ण
भूतानि =भूतोंको
द्रक्ष्यसि =देखेगा* (और)
अथो =उसके उपरान्त
मयि ={मेरेमें अर्थात् सच्चिदानन्द-स्वरूपमें एकीभाव हुआ सच्चिदानन्द-मय ही देखेगा†

ज्ञानरूप नौका-द्वारा अतिशय पापीका भी उद्धार।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकृत्तमः, सर्वम्, ज्ञानप्लवेन, एव, वृजिनम्, संतरिष्यसि ॥३६॥

और—

चेत् =यदि (तूं)
सर्वेभ्यः =सब
पापेभ्यः =पापियोंसे
अपि =भी
पापकृत्तमः ={अधिक पाप करनेवाला

* गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये।

† गीता अध्याय ६ श्लोक ३० में देखना चाहिये।

असि	= है (तो भी)	सर्वम्	= संपूर्ण
ज्ञानप्लवेन	= ज्ञानरूप नौकाद्वारा	वृजिनम्	= पापोंको
एव	= निःसन्देह	संतरिष्यसि	= अच्छी प्रकार तर जायगा

अग्निके दृष्टान्तसे ज्ञान की महिमा ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन,
ज्ञानाग्निः, सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा ॥३७॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन	कुरुते	= कर देता है
यथा	= जैसे	तथा	= वैसे ही
समिद्धः	= प्रज्वलित	ज्ञानाग्निः	= ज्ञानरूप अग्नि
अग्निः	= अग्नि	सर्वकर्माणि	= संपूर्ण कर्मोंको
एधांसि	= इन्धनको	भस्मसात्	= भस्ममय
भस्मसात्	= भस्ममय	कुरुते	= कर देता है

ज्ञानकी अतिशय पवित्रता और पुरुषार्थसे ज्ञान प्राप्तिका कथन ।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥३८॥

न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते,
तत्, स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति ॥३८॥

इसलिये—

इह	= इस संसारमें	न	= नहीं
ज्ञानेन	= ज्ञानके	विद्यते	= है
सदृशम्	= समान	तत्	= उस ज्ञानको
पवित्रम्	= पवित्र करनेवाला	कालेन	= कितनेक कालसे
हि	= निःसन्देह (कुछ भी)	स्वयम्	= अपने आप

योग-संसिद्धः	= समत्वबुद्धिरूप योगके द्वारा अच्छी प्रकार शुद्धान्तःकरण हुआ पुरुष	आत्मनि = आत्मामें
		विन्दति = अनुभव करता है

ज्ञानके पात्र-का और ज्ञानसे परम शान्तिकी प्राप्तिका कथन।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९॥

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः, ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति ॥३९॥

और हे अर्जुन—

संयतेन्द्रियः	= जितेन्द्रिय	अचिरेण	= तत्क्षण (भगवत्प्राप्तिरूप)
तत्परः	= तत्पर हुआ		
श्रद्धावान्	= श्रद्धावान् पुरुष	पराम्	= परम
ज्ञानम्	= ज्ञानको	शान्तिम्	= शान्तिको
लभते	= प्राप्त होता है	अधिगच्छति	= प्राप्त हो जाता है
ज्ञानम्	= ज्ञानको		
लब्ध्वा	= प्राप्त होकर		

श्रद्धारहित संशय युक्त अज्ञानीकी दुर्गति का कथन।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

अज्ञः, च, अश्रद्दधानः, च, संशयात्मा, विनश्यति, न, अयम्, लोकः, अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः॥४०॥

और हे अर्जुन—

अज्ञः	= भगवत्-विषयको न जाननेवाला	अश्रद्दधानः	= श्रद्धारहित
		च	= और
च	= तथा	संशयात्मा	= संशययुक्त पुरुष

विनश्यति = परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है
(उनमें भी)
संशयात्मनः = संशययुक्त पुरुषके लिये तो
न = न
सुखम् = सुख है (और)
न = न
अयम् = यह
लोकः = लोक है
न = न
परः = परलोक
अस्ति = है अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों ही उसके लिये भ्रष्ट हो जाते हैं

संशय रहित निष्काम कर्म-योगीके लिये कर्मबन्धन का निषेध।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥ ४१ ॥

योगसंन्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसंछिन्नसंशयम्,
आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनंजय ॥४१॥

और—

धनंजय = हे धनंजय
योग-संन्यस्त-कर्माणम् = समत्वबुद्धिरूप-योगद्वारा भगवत्-अर्पण कर दिये हैं संपूर्ण कर्म जिसने
(और)
ज्ञान-संछिन्न-संशयम् = ज्ञानद्वारा नष्ट हो गये हैं सब संशय जिसके ऐसे
आत्मवन्तम् = परमात्म-परायण पुरुषको
कर्माणि = कर्म
न = नहीं
निबध्नन्ति = बांधते हैं

निष्कामयोगमें स्थित होकर युद्ध करनेके लिये आज्ञा।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

तस्मात्, अज्ञानसंभूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः, छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत ॥४२॥

तस्मात् = इससे
भारत = { हे भरतवंशी अर्जुन (तू)
योगम् = { समत्वबुद्धिरूप योगमें
आतिष्ठ = स्थित हो (और)
अज्ञानसंभूतम् = { अज्ञानसे उत्पन्न हुए
हृत्स्थम् = हृदयमें स्थित
एनम् = इस
आत्मनः = अपने
संशयम् = संशयको
ज्ञानासिना = { ज्ञानरूप तलवारद्वारा
छित्त्वा = छेदन करके (युद्धके लिये)
उत्तिष्ठ = खड़ा हो

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ६ तक सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोगका निर्णय, (७—१२) सांख्ययोगी और निष्काम कर्मयोगीके लक्षण और उनकी महिमा, (१३—२६) ज्ञानयोगका विषय, (२७—२९) भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन ।

अर्जुन उवाच

संन्यास और निष्काम कर्म-योगमें कौन श्रेष्ठ है यह जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

संन्यासम्, कर्मणाम्, कृष्ण, पुनः, योगम्, च, शंससि, यत्, श्रेयः, एतयोः, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि, सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

उसके उपरान्त अर्जुनने पूछा-

कृष्ण	= हे कृष्ण (आप)	एतयोः	= इन दोनोंमें
कर्मणाम्	= कर्मोंके	एकम्	= एक
संन्यासम्	= संन्यासकी	यत्	= जो
च	= और	सुनिश्चितम्	= निश्चय किया हुआ
पुनः	= फिर	श्रेयः	= कल्याणकारक (होवे)
योगम्	= निष्काम कर्मयोगकी	तत्	= उसको
शंससि	= प्रशंसा करते हो (इसलिये)	मे	= मेरे लिये
		ब्रूहि	= कहिये

श्रीभगवानुवाच

संन्यासकी अपेक्षा निष्काम कर्मयोगकी श्रेष्ठताका कथन ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

संन्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ,
तयोः, तु, कर्मसंन्यासात्, कर्मयोगः, विशिष्यते ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन-

संन्यासः	= कर्मोंका संन्यास*	कर्मयोगः	= निष्काम कर्मयोग†
च	= और	उभौ	= यह दोनों ही

* अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग ।

† अर्थात् समत्वबुद्धिसे भगवत्-अर्थ कर्मोंका करना ।

निःश्रेयसकरौ	= परम कल्याणके करनेवाले हैं	कर्मसंन्यासात्	= कर्मोंके संन्याससे
तु	= परन्तु	कर्मयोगः	= निष्काम कर्मयोग (साधनमें सुगम होनेसे)
तयोः	= उन दोनोंमें	विशिष्यते	= श्रेष्ठ है

निष्काम कर्मयोगीकी प्रशंसा।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

ज्ञेयः, सः, नित्यसंन्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति,
निर्द्वन्द्वः, हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

इसलिये—

महाबाहो	= हे अर्जुन	ज्ञेयः	= समझने योग्य है
यः	= जो पुरुष	हि	= क्योंकि
न	= न (किसीसे)	निर्द्वन्द्वः	= रागद्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित हुआ पुरुष
द्वेष्टि	= द्वेष करता है (और)		
न	= न (किसीकी)		
काङ्क्षति	= आकाङ्क्षा करता है	सुखम्	= सुखपूर्वक
सः	= वह (निष्कामकर्मयोगी)	बन्धात्	= संसाररूप बन्धनसे
नित्यसंन्यासी	= सदा संन्यासी ही	प्रमुच्यते	= मुक्त हो जाता है

फलमें सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोगकी एकता।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

सांख्ययोगौ, पृथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः,
एकम्, अपि, आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम् ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन—

(ऊपर कहे हुए)	पण्डिताः = पण्डित जन
सांख्ययोगौ = { संन्यास और निष्काम कर्मयोगको	(क्योंकि दोनोंमेंसे)
	एकम् = एकमें
	अपि = भी
बालाः = मूर्खलोग	सम्यक् = अच्छी प्रकार
पृथक् = अलग-अलग	आस्थितः = स्थित हुआ (पुरुष)
(फलवाले)	उभयोः = दोनोंके
प्रवदन्ति = कहते हैं	फलम् = { फलरूप परमात्माको
न = न कि	विन्दते = प्राप्त होता है

["] यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ ५ ॥

यत्, सांख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते, एकम्, सांख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति ॥ ५ ॥

तथा—

सांख्यैः = ज्ञानयोगियोंद्वारा	गम्यते = { प्राप्त किया जाता है
यत् = जो	(इसलिये)
स्थानम् = परमधाम	यः = जो पुरुष
प्राप्यते = { प्राप्त किया जाता है	सांख्यम् = ज्ञानयोग
योगैः = { निष्काम कर्मयोगियोंद्वारा	च = और
अपि = भी	योगम् = { निष्काम कर्मयोगको
तत् = वही	(फलरूपसे)

एकम् = एक
पश्यति = देखता है
सः = वह
च = ही (यथार्थ)
पश्यति = देखता है

निष्काम कर्म-योगकी अपेक्षा सांख्य योगके साधनमें कठिनताका कथन ।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

संन्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः,
योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति ॥ ६ ॥

तु = परन्तु
महाबाहो = हे अर्जुन
अयोगतः = निष्काम कर्म-योगके बिना
संन्यासः = संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रियों और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग
आप्तुम् = प्राप्त होना
दुःखम् = कठिन है (और)
मुनिः = भगवत्-स्वरूपको मनन करनेवाला
योगयुक्तः = निष्काम कर्मयोगी
ब्रह्म = परब्रह्म परमात्माको
नचिरेण = शीघ्र ही
अधिगच्छति = प्राप्त हो जाता है

निष्काम कर्म-योगी कर्म करता हुआ भी लिपायमान नहीं होता है इस विषयका कथन ।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः,
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते ॥ ७ ॥

तथा—

विजितात्मा = वशमें किया हुआ है शरीर जिसके ऐसा
जितेन्द्रियः = जितेन्द्रिय
(और)
विशुद्धात्मा = विशुद्ध अन्तः-करणवाला
(एवं)
सर्वभूतात्मभूतात्मा = संपूर्ण प्राणियोंके आत्मरूप परमात्मामें एकीभाव हुआ
योगयुक्तः = निष्काम कर्मयोगी
कुर्वन् = कर्म करता हुआ
अपि = भी
न लिप्यते = लिपायमान नहीं होता

सांख्ययोगीका लक्षण ।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥९॥

न, एव, किंचित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्, पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि, इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन् ॥ ८-९ ॥

और हे अर्जुन—

तत्त्ववित् = तत्त्वको जाननेवाला
युक्तः = सांख्ययोगी तो
पश्यन् = देखता हुआ
शृण्वन् = सुनता हुआ
स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ
जिघ्रन् = सूंघता हुआ

अश्नन्	= भोजन करता हुआ	अपि	= भी
गच्छन्	= गमन करता हुआ	इन्द्रियाणि	= सब इन्द्रियां
स्वपन्	= सोता हुआ	इन्द्रियार्थेषु	= अपने-अपने अर्थोंमें
श्वसन्	= श्वास लेता हुआ	वर्तन्ते	= बर्त रही हैं
प्रलपन्	= बोलता हुआ	इति	= इस प्रकार
विसृजन्	= त्यागता हुआ	धारयन्	= समझता हुआ
गृह्णन्	= ग्रहण करता हुआ (तथा)	एव	= निःसन्देह
उन्मिषन्	= आंखोंको खोलता (और)	इति	= ऐसे
निमिषन्	= मीचता हुआ	मन्येत	= माने कि (मैं)
		किंचित्	= कुछ भी
		न	= नहीं
		करोमि	= करता हूं

भगवदर्थ कर्म करनेवाले की निर्लेपतामें पद्मपत्रका दृष्टान्त ।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, करोति, यः, लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा ॥१०॥

परन्तु हे अर्जुन ! देहाभिमानियोंद्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग सुगम है, क्योंकि—

यः	= जो पुरुष	त्यक्त्वा	= त्यागकर
कर्माणि	= सब कर्मोंको	करोति	= कर्म करता है
ब्रह्मणि	= परमात्मामें	सः	= वह पुरुष
आधाय	= अर्पण करके (और)	अम्भसा	= जलसे
सङ्गम्	= आसक्तिको	पद्मपत्रम्	= कमलके पत्तेकी

इव	= सदृश	न लिप्यते	= लिपायमान नहीं होता
पापेन	= पापसे		

आत्मशुद्धिके लिये योगियोंके कर्माचरण का कथन।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि, योगिनः, कर्म, कुर्वन्ति, सङ्गम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये ॥११॥

इसलिये—

योगिनः	= निष्काम कर्मयोगी (ममत्वबुद्धिरहित)	अपि	= भी
		सङ्गम्	= आसक्तिको
केवलैः	= केवल	त्यक्त्वा	= त्यागकर
इन्द्रियैः	= इन्द्रिय	आत्मशुद्धये	= अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
मनसा	= मन		
बुद्ध्या	= बुद्धि (और)	कर्म	= कर्म
कायेन	= शरीरद्वारा	कुर्वन्ति	= करते हैं

कर्मफलके त्यागसे शान्ति और कामनासे बन्धन

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्, अयुक्तः, कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते ॥१२॥

इसीसे—

युक्तः	= निष्काम कर्मयोगी	नैष्ठिकीम्	= भगवत्-प्राप्तिरूप
कर्मफलम्	= कर्मोंके फलको	शान्तिम्	= शान्तिको
त्यक्त्वा	= परमेश्वरके अर्पण करके	आप्नोति	= प्राप्त होता है (और)

अयुक्तः	=सकामी पुरुष	कामकारेण	=कामनाके द्वारा
फले	=फलमें		
सक्तः	=आसक्त हुआ	निबध्यते	=बंधता है

इसलिये निष्कामकर्मयोग उत्तम है–

सांख्ययोगीकी स्थितिका कथन

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

सर्वकर्माणि, मनसा, संन्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी,
नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन् ॥१३॥

और हे अर्जुन—

वशी	=वशमें है अन्तः-करण जिसके ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला	पुरे	=शरीररूप घरमें
देही	=पुरुष (तो)	सर्वकर्माणि	=सब कर्मोंको
एव	=निःसन्देह	मनसा	=मनसे
न	=न	संन्यस्य	=त्यागकर अर्थात् इन्द्रियां इन्द्रियोंके अर्थोंमें बर्तती हैं ऐसे मानता हुआ
कुर्वन्	=करता हुआ (और)	सुखम्	=आनन्दपूर्वक (सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें)
न	=न		
कारयन्	=करवाता हुआ		
नवद्वारे	=नवद्वारोंवाले	आस्ते	=स्थित रहता है

परमात्मामें कर्तापनके अभावका कथन।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः,
न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते ॥१४॥

और—

प्रभुः	=परमेश्वर (भी)		(वास्तवमें)
लोकस्य	=भूतप्राणियोंके	सृजति	=रचता है
न	=न	तु	=किन्तु
कर्तृत्वम्	=कर्तापनको (और)		(परमात्माके सकाशसे)
न	=न	स्वभावः	=प्रकृति (ही)
कर्माणि	=कर्मोंको (तथा)	प्रवर्तते	=बर्तती है अर्थात् गुण ही गुणोंमें बर्त रहे हैं
न	=न		
कर्मफल-संयोगम्	=कर्मोंके फलके संयोगको		

परमात्मा किसी-के पाप-पुण्यको ग्रहण नहीं करता इस विषयमें कथन।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकृतम्, विभुः,
अज्ञानेन, आवृतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः ॥१५॥

और—

विभुः	=सर्वव्यापी परमात्मा	सुकृतम्	=शुभकर्मको
		एव	=भी
न	=न	आदत्ते	=ग्रहण करता है
कस्यचित्	=किसीके		(किन्तु)
पापम्	=पापकर्मको	अज्ञानेन	=मायाके द्वारा
च	=और	ज्ञानम्	=ज्ञान
न	=न	आवृतम्	=ढका हुआ है
	(किसीके)	तेन	=इससे

जन्तवः =सब जीव | मुह्यन्ति =मोहित हो रहे हैं

सूर्यके दृष्टान्तसे ज्ञानकी महिमा

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः, तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम् ॥१६॥

तु	=परन्तु		(वह)
येषाम्	=जिनका	ज्ञानम्	=ज्ञान
तत्	=वह	आदित्यवत्	=सूर्यके सदृश
आत्मनः	=अन्तःकरणका	तत्परम्	=उस सच्चिदानन्द-घन परमात्माको
अज्ञानम्	=अज्ञान		
ज्ञानेन	=आत्मज्ञानद्वारा		
नाशितम्	=नाश हो गया है		
तेषाम्	=उनका	प्रकाशयति	=प्रकाशता है*

परमात्मामें तद्रूप हुए महात्माओंको परमगतिकी प्राप्ति।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

तद्बुद्धयः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः, गच्छन्ति, अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

और हे अर्जुन—

तद्बुद्धयः	=तद्रूप है बुद्धि जिनकी (तथा)	तन्निष्ठाः	=उस सच्चिदानन्द-घन परमात्मामें ही है निरन्तर एकीभावसे स्थिति जिनकी ऐसे
तदात्मानः	=तद्रूप है मन जिनका (और)		

* अर्थात् परमात्माके स्वरूपको साक्षात् कराता है।

तत्परायणाः	= तत्परायण पुरुष	अपुनरावृत्तिम्	= अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको
ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः	= ज्ञानके द्वारा पापरहित हुए	गच्छन्ति	= प्राप्त होते हैं

ज्ञानियोंके समत्व भावका कथन और उनकी महिमा।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८॥

विद्याविनयसंपन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि,
शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिताः, समदर्शिनः ॥१८॥

ऐसे वे-

पण्डिताः	= ज्ञानीजन	शुनि	= कुत्ते (और)
विद्याविनयसंपन्ने	= विद्या और विनययुक्त	श्वपाके	= चाण्डालमें
ब्राह्मणे	= ब्राह्मणमें	च	= भी
च	= तथा	समदर्शिनः	= समभावसे* देखनेवाले
गवि	= गौ		
हस्तिनि	= हाथी	एव	= ही (होते हैं)

["] **इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।**
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ १९॥

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः,
निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः ॥१९॥

इसलिये-

येषाम्	= जिनका	साम्ये	= समत्वभावमें
मनः	= मन	स्थितम्	= स्थित है

* इसका विस्तार गीता अ० ६ श्लोक ३२ की टिप्पणीमें देखना चाहिये।

तैः = उनके द्वारा
इह = इस जीवित अवस्थामें
एव = ही
सर्गः = संपूर्ण संसार
जितः = जीत लिया गया*
हि = क्योंकि
ब्रह्म = सच्चिदानन्दघन परमात्मा
निर्दोषम् = निर्दोष (और)
समम् = सम है
तस्मात् = इससे
ते = वे
ब्रह्मणि = सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही
स्थिताः = स्थित हैं

ब्रह्मज्ञानीके लक्षण और उसको अक्षय सुखकी प्राप्ति ।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः॥२०॥

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्, स्थिरबुद्धिः, असंमूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः ॥२०॥

और जो पुरुष—

प्रियम् = प्रियको अर्थात् जिसको लोग प्रिय समझते हैं उसको
प्राप्य = प्राप्त होकर
न प्रहृष्येत् = हर्षित नहीं हो
च = और
अप्रियम् = अप्रियको अर्थात् जिसको लोग अप्रिय समझते हैं उसको
प्राप्य = प्राप्त होकर
न उद्विजेत् = उद्वेगवान् न हो (ऐसा)
स्थिरबुद्धिः = स्थिरबुद्धि
असंमूढः = संशयरहित
ब्रह्मवित् = ब्रह्मवेत्ता पुरुष
ब्रह्मणि = सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें
स्थितः = एकीभावसे नित्य स्थित है

* अर्थात् वे जीते हुए ही संसारसे मुक्त हैं ।

[„] बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्, सः, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते ॥२१॥

और–

बाह्यस्पर्शेषु = बाहरके विषयोंमें अर्थात् सांसारिक भोगोंमें
असक्तात्मा = आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला पुरुष
आत्मनि = अन्तःकरणमें
यत् = जो
सुखम् = भगवत्-ध्यानजनित आनन्द है
(तत्) = उसको
विन्दति = प्राप्त होता है (और)
सः = वह पुरुष
ब्रह्मयोगयुक्तात्मा = सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मारूप योगमें एकीभावसे स्थित हुआ
अक्षयम् = अक्षय
सुखम् = आनन्दको
अश्नुते = अनुभव करता है

विषयभोगोंकी निन्दा । ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते, आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः ॥२२॥

और–

ये = जो
(यह)
संस्पर्शजाः = इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले

भोगाः	= सब भोग हैं	आद्यन्तवन्तः	= आदि अन्त-वाले अर्थात् अनित्य हैं (इसलिये)
ते	= वे (यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुख-रूप भासते हैं तो भी)	कौन्तेय	= हे अर्जुन
हि	= निःसन्देह	बुधः	= बुद्धिमान् विवेकी पुरुष
दुःखयोनयः एव	= दुःखके ही हेतु हैं (और)	तेषु	= उनमें
		न	= नहीं
		रमते	= रमता

काम-क्रोधके वेगको जीतनेवाले योगीकी प्रशंसा।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३॥

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्, कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः ॥२३॥

यः	= जो मनुष्य	शक्नोति	= समर्थ है अर्थात् काम क्रोधको जिसने सदाके लिये जीत लिया है
शरीर-विमोक्षणात्	= शरीरके नाश होनेसे		
प्राक्	= पहिले		
एव	= ही	सः	= वह
काम-क्रोधोद्भवम्	= काम और क्रोधसे उत्पन्न हुए	नरः	= मनुष्य
		इह	= इस लोकमें
		युक्तः	= योगी है (और)
वेगम्	= वेगको	सः	= वही
सोढुम्	= सहन करनेमें	सुखी	= सुखी है

ज्ञानी महात्माओंके लक्षण और उनको निर्वाण-ब्रह्मकी प्राप्ति ।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः, एव, यः,
सः, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति ॥२४॥

यः = जो पुरुष
एव = निश्चय करके
अन्तःसुखः = अन्तर आत्मामें ही सुखवाला है
(और)
अन्तरारामः = आत्मामें ही आरामवाला है
तथा = तथा
यः = जो
अन्तर्ज्योतिः = आत्मामें ही ज्ञानवाला है
(ऐसा)
सः = वह
ब्रह्मभूतः = सच्चिदानन्द-घन परब्रह्म परमात्माके साथ एकी भाव हुआ
योगी = सांख्ययोगी
ब्रह्मनिर्वाणम् = शान्त ब्रह्मको
अधिगच्छति = प्राप्त होता है

[„]

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः,
छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः ॥२५॥

और—

क्षीणकल्मषाः = नाश हो गये हैं सब पाप जिनके
(तथा)
छिन्नद्वैधाः = ज्ञान करके निवृत्त हो गया है संशय जिनका

(और)		(ऐसे)	
सर्वभूत-हिते रताः	= संपूर्ण भूत-प्राणियोंके हितमें है रति जिनकी	ऋषयः	= ब्रह्मवेत्ता पुरुष
यतात्मानः	= एकाग्र हुआ है भगवान्‌के ध्यानमें चित्त जिनका	ब्रह्म-निर्वाणम्	= शान्त परब्रह्मको
		लभन्ते	= प्राप्त होते हैं

[,,] कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्, अभितः, ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम् ॥२६॥

और—

कामक्रोध-वियुक्तानाम्	= काम क्रोधसे रहित	यतीनाम्	= ज्ञानी पुरुषोंके लिये
यतचेतसाम्	= जीते हुए चित्तवाले	अभितः	= सब ओरसे
विदिता-त्मनाम्	= परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए	ब्रह्म-निर्वाणम्	= शान्त परब्रह्म परमात्मा ही
		वर्तते	= प्राप्त है

संक्षेपसे फल-सहित ध्यान-योगका कथन । स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः,
प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

और हे अर्जुन-

बाह्यान्	=बाहरके	अन्तरे	=बीचमें (स्थित करके) (तथा)
स्पर्शान्	=विषयभोगोंको (न चिन्तन करता हुआ)	नासा-भ्यन्तर-चारिणौ	=नासिकामें विचरनेवाले
बहिः	=बाहर		
एव	=ही		
कृत्वा	=त्यागकर	प्राणापानौ	=प्राण और अपान वायुको
च	=और		
चक्षुः	=नेत्रोंकी दृष्टिको	समौ	=सम
भ्रुवोः	=भृकुटीके	कृत्वा	=करके

["] यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः, मुनिः, मोक्षपरायणः,
विगतेच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः, एव, सः ॥२८॥

यतेन्द्रिय-मनोबुद्धिः	=जीती हुई हैं इन्द्रियां मन और बुद्धि जिसकी ऐसा	यः	=जो
		मोक्ष-परायणः	=मोक्षपरायण
		मुनिः	=मुनि*

* परमेश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला ।

विगतेच्छा-भयक्रोधः	= इच्छा भय और क्रोधसे रहित है	सदा	= सदा
		मुक्तः	= मुक्त
सः	= वह	एव	= ही है

प्रभावसहित परमेश्वर को जाननेसे शान्ति-की प्राप्ति।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्,
सुहृदम्, सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति ॥२९॥

और हे अर्जुन ! मेरा भक्त—

माम्	= मेरेको	सर्व-भूतानाम्	= संपूर्ण भूत-प्राणियोंका
यज्ञतपसाम्	= यज्ञ और तपोंका	सुहृदम्	= सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित प्रेमी (ऐसा)
भोक्तारम्	= भोगनेवाला (और)		
सर्वलोक-महेश्वरम्	= संपूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर (तथा)	ज्ञात्वा	= तत्त्वसे जानकर
		शान्तिम्	= शान्तिको
		ऋच्छति	= प्राप्त होता है

और सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण शान्त ब्रह्मके सिवाय उसकी दृष्टिमें और कुछ भी नहीं रहता, केवल वासुदेव ही वासुदेव रह जाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ४ तक निष्काम कर्मयोगका विषय और योगारूढ पुरुषके लक्षण, (५—१०) आत्म-उद्धारके लिये प्रेरणा और भगवत्-प्राप्तिवाले पुरुषके लक्षण, (११—३२) विस्तारसे ध्यानयोगका विषय, (३३—३६) मनके निग्रहका विषय, (३७—४७) योगभ्रष्ट पुरुषकी गतिका विषय और ध्यानयोगीकी महिमा ।

श्रीभगवानुवाच

निष्काम कर्मयोगीकी प्रशंसा

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

अनाश्रितः, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, यः,
सः, संन्यासी, च, योगी, च, न, निरग्निः, न, च, अक्रियः ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले, हे अर्जुन—

यः = जो पुरुष
कर्मफलम् = कर्मके फलको
अनाश्रितः = न चाहता हुआ
कार्यम् = करनेयोग्य
कर्म = कर्म
करोति = करता है
सः = वह
संन्यासी = संन्यासी
च = और
योगी = योगी है

च = और (केवल)
निरग्निः = अग्निको त्यागनेवाला (संन्यासी योगी)
न = नहीं है
च = तथा (केवल)
अक्रियः = क्रियाओंको त्यागनेवाला (भी संन्यासी योगी)
न = नहीं है

संन्यास और निष्काम कर्मयोग की एकता ।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

यम्, संन्यासम्, इति, प्राहुः, योगम्, तम्, विद्धि, पाण्डव,
न, हि, असंन्यस्तसंकल्पः, योगी, भवति, कश्चन ॥ २ ॥

इसलिये—

पाण्डव	=हे अर्जुन	हि	=क्योंकि
यम्	=जिसको	असंन्यस्त-संकल्पः	=संकल्पोंको न त्यागनेवाला
संन्यासम्	=संन्यास*	कश्चन	=कोई भी पुरुष
इति	=ऐसा	योगी	=योगी
प्राहुः	=कहते हैं	न	=नहीं
तम्	=उसीको (तू)	भवति	=होता
योगम्	=योग†		
विद्धि	=जान		

मुमुक्षुके लिये कल्याणके उपाय का कथन ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते,
योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते ॥ ३ ॥

और—

योगम्	=समत्वबुद्धि-रूप योगमें	मुनेः	=मननशील पुरुषके लिये
आरुरुक्षोः	=आरूढ होनेकी इच्छावाले		(योगकी प्राप्तिमें)

*-† गीता अ० ३ श्लोक ३ की टिप्पणीमें इसका खुलासा अर्थ लिखा है।

कर्म = निष्कामभावसे कर्म करना ही
कारणम् = हेतु
उच्यते = कहा है
(और योगारूढ हो जानेपर)
तस्य = उस
योगारूढस्य = योगारूढ पुरुषके लिये
शमः = सर्वसंकल्पोंका अभाव
एव = ही (कल्याणमें)
कारणम् = हेतु
उच्यते = कहा है

योगारूढ पुरुषके लक्षण।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते,
सर्वसंकल्पसंन्यासी, योगारूढः, तदा, उच्यते ॥ ४ ॥

और—

यदा = जिस कालमें
न = न (तो)
इन्द्रियार्थेषु = इन्द्रियोंके भोगोंमें
(अनुषज्जते) = आसक्त होता है
(तथा)
न = न
कर्मसु = कर्मोंमें
हि = ही
अनुषज्जते = आसक्त होता है
तदा = उस कालमें
सर्वसंकल्पसंन्यासी = सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष
योगारूढः = योगारूढ
उच्यते = कहा जाता है

अपना उद्धार करनेके लिये प्रेरणा।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्,
आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः ॥५॥

और यह योगारूढता कल्याणमें हेतु कही है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

आत्मना = अपने द्वारा	हि = क्योंकि (यह)
आत्मानम् = आपका (संसारसमुद्रसे)	आत्मा = जीवात्मा आप
	एव = ही (तो)
उद्धरेत् = उद्धार करे (और)	आत्मनः = अपना
	बन्धुः = मित्र है (और)
आत्मानम् = अपने आत्माको	आत्मा = आप
	एव = ही
न अवसादयेत् = अधोगतिमें न पहुंचावे	आत्मनः = अपना
	रिपुः = शत्रु है

अर्थात् और कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है

["] बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः, अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत् ॥ ६ ॥

तस्य = उस	जितः = जीता हुआ है
आत्मनः = जीवात्माका तो (वह)	तु = और
आत्मा = आप	अनात्मनः = जिसके द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है उसका (वह)
एव = ही	
बन्धुः = मित्र है (कि)	
येन = जिस	
आत्मना = जीवात्माद्वारा	
आत्मा = मन और इन्द्रियों-सहित शरीर	आत्मा = आप

एव	=ही	शत्रुत्वे	=शत्रुतामें
शत्रुवत्	=शत्रुके सदृश	वर्तेत	=बर्तता है

परमात्माको प्राप्त हुए योगीके लक्षण ।

जितात्मनःप्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः, शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयोः ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन--

शीतोष्ण-सुखदुःखेषु	=सर्दी गर्मी और सुख दुःखादिकोंमें	जितात्मनः	=स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके (ज्ञानमें)
तथा	=तथा		
मानाप-मानयोः	=मान और अपमानमें	परमात्मा	=सच्चिदानन्द-घन परमात्मा
प्रशान्तस्य	=जिसके अन्तः-करणकी वृत्तियां अच्छी प्रकार शान्त हैं अर्थात् विकार-रहित हैं (ऐसे)	समाहितः	=सम्यक्प्रकारसे स्थित है अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं

["]

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः, युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥

और—

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा	= ज्ञान विज्ञानसे तृप्त है अन्तःकरण जिसका		(तथा)
(तथा)		समलोष्टाश्मकाञ्चनः	= समान हैं मिट्टी पत्थर और सुवर्ण जिसके (वह)
कूटस्थः	= विकाररहित है स्थिति जिसकी	योगी	= योगी
(तथा)		युक्तः	= युक्त अर्थात् भगवत्‌की प्राप्तिवाला है
विजितेन्द्रियः	= अच्छी प्रकार जीती हुई हैं इन्द्रियां जिसकी	इति	= ऐसे
		उच्यते	= कहा जाता है

सबमें समबुद्धि वाले योगीकी प्रशंसा।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु,
साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते ॥ ९ ॥

और जो पुरुष—

सुहृद्	= सुहृद्*		(तथा)
मित्र	= मित्र	साधुषु	= धर्मात्माओंमें
अरि	= वैरी	च	= और
उदासीन	= उदासीन†	पापेषु	= पापियोंमें
मध्यस्थ	= मध्यस्थ‡	अपि	= भी
द्वेष्य	= द्वेषी (और)	समबुद्धिः	= समान भाववाला है
बन्धुषु	= बन्धुगणोंमें		

* स्वार्थरहित सबका हित करनेवाला। † पक्षपातरहित।
‡ दोनों ओरकी भलाई चाहनेवाला।

(वह)	विशिष्यते = अति श्रेष्ठ है

ध्यानयोगका साधन करनेके लिये प्रेरणा।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥१०॥

योगी, युञ्जीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः,
एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः ॥१०॥

इसलिये उचित है कि–

यतचित्तात्मा	= जिसका मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है ऐसा	एकाकी	= अकेला ही
		रहसि	= एकान्त स्थानमें
		स्थितः	= स्थित हुआ
		सततम्	= निरन्तर
निराशीः	= वासनारहित (और)	आत्मानम्	= आत्माको
अपरिग्रहः	= संग्रहरहित	युञ्जीत	= (परमेश्वरके ध्यानमें) लगावे
योगी	= योगी		

ध्यानयोगके लिये आसन-स्थापनकी विधि।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥११॥

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः,
न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

कैसे कि–

शुचौ	= शुद्ध	आत्मनः	= अपने
देशे	= भूमिमें	आसनम्	= आसनको
चैलाजिनकुशोत्तरम्	= कुशा मृगछाला और वस्त्र हैं उपरोपरि जिसके ऐसे	न	= न
		अत्युच्छ्रितम्	= अति ऊंचा (और)
		न	= न

अतिनीचम् = अति नीचा		प्रतिष्ठाप्य = स्थापन करके
स्थिरम् = स्थिर		

आसनपर बैठकर योग का साधन करनेके लिये कथन।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः, उपविश्य, आसने, युञ्ज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्धये ॥१२॥

और–

तत्र = उस	यत-चित्तेन्द्रिय-क्रियः = चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंकोवश-में किया हुआ
आसने = आसनपर	
उपविश्य = बैठकर (तथा)	
मनः = मनको	आत्म-विशुद्धये = अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये
एकाग्रम् = एकाग्र	योगम् = योगका
कृत्वा = करके	युञ्ज्यात् = अभ्यास करे

ध्यानयोगकी विधि।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः, संप्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन् ॥१३॥

उसकी विधि इस प्रकार है कि–

कायशिरो-ग्रीवम् = काया शिर और ग्रीवाको	अचलम् = अचल
	धारयन् = धारण किये हुए
समम् = समान	स्थिरः = दृढ़ (होकर)
च = और	

स्वम्	= अपने	दिशः	= अन्य दिशाओंको
नासिकाग्रम्	= नासिकाके अग्रभागको	अनवलोकयन्	= न देखता हुआ
संप्रेक्ष्य	= देखकर		

["] प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः,

मनः, संयम्य, मच्चित्तः, युक्तः, आसीत, मत्परः ॥१४॥

और—

ब्रह्मचारिव्रते	= ब्रह्मचर्यके व्रतमें	युक्तः	= सावधान (होकर)
स्थितः	= स्थित रहता हुआ	मनः	= मनको
		संयम्य	= वशमें करके
विगतभीः	= भयरहित (तथा)	मच्चित्तः	= मेरेमें लगे हुए चित्तवाला (और)
प्रशान्तात्मा	= अच्छी प्रकार शान्त अन्तः-करणवाला (और)	मत्परः	= मेरे परायण हुआ
		आसीत	= स्थित होवे

ध्यानयोगका फल । युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः,

शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति ॥१५॥

एवम्	= इस प्रकार	आत्मानम्	= आत्माको

सदा	= निरन्तर	मत्संस्थाम्	= मेरेमें स्थितिरूप
युञ्जन्	= (परमेश्वरके स्वरूपमें) लगाता हुआ	निर्वाणपरमाम्	= परमानन्द पराकाष्ठावाली
नियतमानसः	= स्वाधीन मनवाला	शान्तिम्	= शान्तिको
योगी	= योगी	अधिगच्छति	= प्राप्त होता है

अनियमित भोजनादि करनेवालेको योगकी अप्राप्ति ।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

न, अति, अश्नतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्नतः, न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन ॥१६॥

परन्तु—

अर्जुन	= हे अर्जुन	च	= तथा
योगः	= यह योग	न	= न
न	= न	अति	= अति
तु	= तो	स्वप्नशीलस्य	= शयन करनेके स्वभाववालेका
अति	= बहुत	च	= और
अश्नतः	= खानेवालेका	न	= न
अस्ति	= सिद्ध होता है	जाग्रतः	= अत्यन्त जागनेवालेका
च	= और	एव	= ही
न	= न		(सिद्ध होता है)
एकान्तम्	= बिल्कुल		
अनश्नतः	= न खानेवालेका		

नियमित आहार-विहार आदि करने वालेको योगकी प्राप्ति।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा ॥१७॥

यह—

दुःखहा = दुःखोंका नाश करनेवाला
योगः = योग (तो)
युक्ताहार-विहारस्य = यथायोग्य आहार और विहार करने वालेका (तथा)
कर्मसु = कर्मोंमें
युक्त-चेष्टस्य = यथायोग्य चेष्टा करने-वालेका (और)
युक्तस्वप्नाव-बोधस्य = यथायोग्य शयन करने तथा जागने-वालेका (ही) (सिद्ध)
भवति = होता है

योगयुक्त पुरुष-का लक्षण

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

यदा, विनियतम्, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते
निःस्पृहः, सर्वकामेभ्यः, युक्तः, इति, उच्यते तदा ॥१८॥

इस प्रकार योगके अभ्याससे—

विनियतम् = अत्यन्त वशमें किया हुआ
चित्तम् = चित्त
यदा = जिस कालमें
आत्मनि = परमात्मामें
एव = ही
अवतिष्ठते = भली प्रकार स्थित हो जाता है
तदा = उस कालमें

सर्व-कामेभ्यः	= संपूर्ण कामनाओंसे	युक्तः	= योगयुक्त
		इति	= ऐसा
निःस्पृहः	= स्पृहारहित हुआ पुरुष	उच्यते	= कहा जाता है

दीपकके दृष्टान्त-से योगीके चित्त-की उपमा ।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

यथा, दीपः, निवातस्थः, न इङ्गते, सा, उपमा, स्मृता,
योगिनः, यतचित्तस्य, युञ्जतः, योगम्, आत्मनः ॥१९॥

और—

यथा	= जिस प्रकार	उपमा	= उपमा
निवातस्थः	= वायुरहित स्थानमें स्थित	आत्मनः	= परमात्माके
दीपः	= दीपक	योगम् युञ्जतः	= ध्यानमें लगे हुए
न	= नहीं	योगिनः	= योगीके
इङ्गते	= चलायमान होता है	यतचित्तस्य	= जीते हुए चित्तकी
सा	= वैसी ही	स्मृता	= कही गयी है

ध्यानयोगकी परिपक्व अवस्था-के लक्षण और ध्यानयोगी के आनन्द की महिमा ।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

यत्र, उपरमते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया,
यत्र, च, एव, आत्मना, आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि तुष्यति ॥२०॥

और हे अर्जुन—

यत्र	= जिस अवस्थामें	निरुद्धम्	= निरुद्ध हुआ
योगसेवया	= योगके अभ्याससे	चित्तम्	= चित्त
		उपरमते	= उपराम हो जाता है

च = और
यत्र = जिस अवस्थामें (परमेश्वरके ध्यानसे)
आत्मना = शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा
आत्मानम् = परमात्माको
पश्यन् = साक्षात् करता हुआ
आत्मनि = सच्चिदानन्दघन परमात्मामें
एव = ही
तुष्यति = संतुष्ट होता है

["] सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

सुखम्, आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्, अतीन्द्रियम्, वेत्ति, यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थितः, चलति, तत्त्वतः॥२१॥

तथा—

अतीन्द्रियम् = इन्द्रियोंसे अतीत
बुद्धिग्राह्यम् = केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करने योग्य
यत् = जो
आत्यन्तिकम् = अनन्त
सुखम् = आनन्द है
तत् = उसको
यत्र = जिस अवस्थामें
वेत्ति = अनुभव करता है
च = और
(यत्र) = जिस अवस्थामें
स्थितः = स्थित हुआ
अयम् = यह योगी
तत्त्वतः = भगवत्स्वरूपसे
न एव = नहीं
चलति = चलायमान होता है

["] यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

यम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, ततः, यस्मिन्, स्थितः, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते ॥२२॥

और—

यम्	=(परमेश्वरकी प्राप्तिरूप) जिस लाभको	च	=और
लब्ध्वा	=प्राप्त होकर	यस्मिन्	=(भगवत्-प्राप्ति-रूप) जिस अवस्थामें
ततः	=उससे	स्थितः	=स्थित हुआ योगी
अधिकम्	=अधिक	गुरुणा	=बड़े भारी
अपरम्	=दूसरा (कुछ भी)	दुःखेन	=दुःखसे
लाभम्	=लाभ	अपि	=भी
न	=नहीं	न विचाल्यते	=चलायमान नहीं होता है
मन्यते	=मानता है		

तत्पर होकर ध्यानयोग करने-के किये कथन।

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २ ३॥

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसंज्ञितम्,
सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

और जो—

दुःख-संयोग-वियोगम्	=(दुःखरूप संसार-के संयोगसे रहित है (तथा)	सः	=वह
योग-संज्ञितम्	=(जिसका नाम योग है	योगः	=योग
तम्	=उसको	अनिर्विण्ण-चेतसा	=(न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे
विद्यात्	=जानना चाहिये	निश्चयेन	=निश्चयपूर्वक
		योक्तव्यः	=करना कर्तव्य है

अचिन्त्यस्वरूप परमात्मा के ध्यानकी विधि।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४॥

संकल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषतः, मनसा, एव, इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्ततः ॥२४॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि—

संकल्प-प्रभवान् = संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली
सर्वान् = संपूर्ण
कामान् = कामनाओंको
अशेषतः = निःशेषतासे अर्थात् वासना और आसक्ति-सहित
त्यक्त्वा = त्याग कर
(और)
मनसा = मनके द्वारा
इन्द्रियग्रामम् = इन्द्रियोंके समुदायको
समन्ततः = सब ओरसे
एव = ही
विनियम्य = अच्छी प्रकार वशमें करके

[„]

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

शनैः, शनैः, उपरमेत्, बुद्ध्या, धृतिगृहीतया, आत्मसंस्थम्, मनः, कृत्वा, न, किंचित्, अपि, चिन्तयेत्॥२५॥

शनैः शनैः = क्रम-क्रमसे (अभ्यास करता हुआ)
उपरमेत् = उपरामताको प्राप्त होवे (तथा)
धृति-गृहीतया = धैर्ययुक्त
बुद्ध्या = बुद्धिद्वारा
मनः = मनको
आत्म-संस्थम् = परमात्मामें स्थित

कृत्वा	= करके (परमात्माके सिवाय और)	किंचित्	= कुछ
		अपि	भी
		न चिन्तयेत्	= चिन्तन न करे

मनको परमात्मा में लगानेका उपाय ।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

यतः, यतः, निश्चरति, मनः, चञ्चलम्, अस्थिरम्, ततः, ततः, नियम्य, एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत् ॥२६॥

परन्तु जिसका मन वशमें नहीं हुआ हो उसको चाहिये कि—

एतत्	= यह	ततः	= उस
अस्थिरम्	= स्थिर न रहनेवाला (और)	ततः	= उससे
चञ्चलम्	= चञ्चल	नियम्य	= रोककर (बारम्बार)
मनः	= मन	आत्मनि	= परमात्मामें
यतः यतः	= जिस जिस कारणसे	एव	= ही
निश्चरति	= सांसारिक पदार्थोंमें विचरता है	वशम्	= निरोध
		नयेत्	= करे

ध्यानयोगसे उत्तम और अत्यन्त सुखकी प्राप्ति ।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्, उपैति, शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम् ॥२७॥

हि	= क्योंकि		
प्रशान्तमनसम्	= जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है (और)	अकल्मषम्	= जो पापसे रहित है (और)

शान्त-रजसम्	= { जिसका रजोगुण शान्त हो गया है ऐसे	योगिनम्	= योगीको
		उत्तमम्	= अति उत्तम
एनम्	= इस	सुखम्	= आनन्द
ब्रह्म-भूतम्	= { सच्चिदानन्दघनब्रह्मके साथ एकीभाव हुए	उपैति	= प्राप्त होता है

[,,] युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः,
सुखेन, ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते ॥२८॥

और वह—

विगतकल्मषः	= पापरहित	सुखेन	= सुखपूर्वक
योगी	= योगी	ब्रह्म-संस्पर्शम्	= { परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप
एवम्	= इस प्रकार		
सदा	= निरन्तर		
आत्मानम्	= आत्माको	अत्यन्तम्	= अनन्त
युञ्जन्	= { (परमात्मामें) लगाता हुआ	सुखम्	= आनन्दको
		अश्नुते	= अनुभव करता है

सर्वत्र आत्मदर्शनका कथन । सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि,
ईक्षते, योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शनः ॥२९॥

और हे अर्जुन—

योगयुक्तात्मा = सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त हुए आत्मावाला (तथा)
सर्वत्र = सबमें
समदर्शनः = समभावसे देखनेवाला योगी
आत्मानम् = आत्माको
सर्वभूतस्थम् = संपूर्ण भूतोंमें बर्फमें जलके सदृश व्यापक (देखता है)
च = और
सर्वभूतानि = संपूर्ण भूतोंको
आत्मनि = आत्मामें
ईक्षते = देखता है

अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नके संसारको अपने अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है वैसे ही वह पुरुष संपूर्ण भूतोंको अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माके अन्तर्गत संकल्पके आधार देखता है।

सर्वत्र परमात्म-दर्शनका फल।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३०॥

यः, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति, तस्य, अहम, न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति ॥३०॥

और—

यः = जो पुरुष
सर्वत्र = संपूर्ण भूतोंमें
माम् = सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही (व्यापक)
पश्यति = देखता है
च = और
सर्वम् = संपूर्ण भूतोंको
मयि = मुझ वासुदेवके अन्तर्गत*

* गीता अध्याय ९ श्लोक ६ देखना चाहिये।

पश्यति	= देखता है	च	= और
तस्य	= उसके (लिये)	सः	= वह
अहम्	= मैं	मे	= मेरे (लिये)
न प्रणश्यामि	= अदृश्य नहीं होता हूं	न प्रणश्यति	= अदृश्य नहीं होता है

क्योंकि वह मेरेमें एकीभावसे स्थित है ।

सर्वव्यापी परमात्मा का एकीभावसे ध्यान करनेवाले योगीकी महिमा ।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः,
सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते ॥३१॥

इस प्रकार—

यः	= जो पुरुष	भजति	= भजता है
एकत्वम्	= एकीभावमें	सः	= वह
आस्थितः	= स्थित हुआ	योगी	= योगी
सर्वभूतस्थितम्	= संपूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित	सर्वथा	= सब प्रकारसे
		वर्तमानः	= बर्तता हुआ
		अपि	= भी
माम्	= मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको	मयि	= मेरेमें
		वर्तते	= वर्तता है

क्योंकि उसके अनुभवमें मेरे सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं ।

परम योगीके लक्षण ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन,
सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः॥३२॥

और—

अर्जुन	= हे अर्जुन	सुखम्	= सुख
यः	= जो योगी	यदि वा	= अथवा
आत्मौपम्येन	= { अपनी सादृश्यतासे*	दुःखम्	= दुःखको (भी) (सबमें सम देखता है)
सर्वत्र	= संपूर्ण भूतोंमें	सः	= वह
समम्	= सम	योगी	= योगी
पश्यति	= देखता है	परमः	= परम श्रेष्ठ
वा	= और	मतः	= माना गया है

अर्जुन उवाच

मनकी चञ्चलता के कारण अर्जुन का ध्यानयोगको और मनके निग्रहको कठिन मानना।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥ ३ ३॥

अयम्, योगः, त्वया, प्रोक्तः, साम्येन, मधुसूदन,
एतस्य, अहम्, न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्, स्थिराम्॥३३॥

इस प्रकार भगवान्‌के वाक्योंको सुनकर अर्जुन बोला—

मधुसूदन	= हे मधुसूदन	अयम्	= यह
यः	= जो	योगः	= ध्यानयोग

* जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और गुदादिके साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और म्लेच्छादिकोंका-सा बर्ताव करता हुआ भी उनमें आत्मभाव अर्थात् अपनापन समान होनेसे, सुख और दुःखको समान ही देखता है वैसे ही सब भूतोंमें देखना 'अपनी सादृश्यतासे सम देखना' है ।

त्वया	=आपने	स्थिराम्	=बहुत काल-तक ठहरने-वाली
साम्येन	=समत्वभावसे	स्थितिम्	=स्थितिको
प्रोक्तः	=कहा है	न	=नहीं
एतस्य	=इसकी	पश्यामि	=देखता हूं
अहम्	=मैं (मनके)		
चञ्चलत्वात्	=चञ्चल होनेसे		

[„] चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

चञ्चलम्, हि, मनः, कृष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दृढम्, तस्य, अहम्, निग्रहम्, मन्ये, वायोः, इव, सुदुष्करम् ॥३४॥

हि	=क्योंकि	(अतः)	=इसलिये
कृष्ण	=हे कृष्ण (यह)	तस्य	=उसका
मनः	=मन	निग्रहम्	=वशमें करना
चञ्चलम्	=बड़ा चञ्चल (और)	अहम्	=मैं
प्रमाथि	=प्रमथनस्वभाव-वाला है (तथा)	वायोः	=वायुकी
दृढम्	=बड़ा दृढ (और)	इव	=भांति
बलवत्	=बलवान् है	सुदुष्करम्	=अति दुष्कर
		मन्ये	=मानता हूं

श्रीभगवानुवाच

अभ्यास और वैराग्यसे मन वशमें होनेका कथन ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्, अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते ॥३५॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

महाबाहो = हे महाबाहो
असंशयम् = निःसन्देह
मनः = मन
चलम् = चञ्चल
(और)
दुर्निग्रहम् = कठिनतासे वशमें होनेवाला है
तु = परन्तु
कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र अर्जुन
अभ्यासेन = अभ्यास* अर्थात् स्थितिके लिये बारम्बार यत्न करनेसे
च = और
वैराग्येण = वैराग्यसे
गृह्यते = वशमें होता है

इसलिये इसको अवश्य वशमें करना चाहिये।

मनके निग्रहसे ध्यानयोग की प्राप्ति।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥३६॥

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्रापः, इति, मे, मतिः, वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः॥३६॥

क्योंकि—

असंयतात्मना = मनको वशमें न करनेवाले पुरुषद्वारा
योगः = योग
दुष्प्रापः = दुष्प्राप्य है अर्थात् प्राप्त होना कठिन है
तु = और
वश्यात्मना = स्वाधीन मनवाले

* गीता अ० १२ श्लोक ९ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये।

यतता	= प्रयत्नशील पुरुषद्वारा	शक्यः	= सहज है
		इति	= यह
उपायतः	= साधन करनेसे	मे	= मेरा
अवाप्तुम्	= प्राप्त होना	मतिः	= मत है

अर्जुन उवाच

योगभ्रष्ट पुरुषकी गतिके सम्बन्धमें अर्जुनका प्रश्न और उभयभ्रष्ट होनेकी शङ्का करना ।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥

अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः,
अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति ॥३७॥

इसपर अर्जुन बोला—

कृष्ण	= हे कृष्ण	योग-संसिद्धिम्	= योगकी सिद्धिको अर्थात् भगवत्-साक्षात्कारताको
योगात्	= योगसे		
चलित-मानसः	= चलायमान हो गया है मन जिसका ऐसा	अप्राप्य	= न प्राप्त होकर
अयतिः	= शिथिल यत्नवाला	काम्	= किस
श्रद्धया उपेतः	= श्रद्धायुक्त पुरुष	गतिम्	= गतिको
		गच्छति	= प्राप्त होता है

["]

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति,
अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि ॥३८॥

और—

महाबाहो	= हे महाबाहो	कच्चित्	= क्या (वह)

ब्रह्मणः	= भगवत्प्राप्तिके	इव	= भांति
पथि	= मार्गमें	उभय-विभ्रष्टः	= दोनों ओरसे अर्थात् भगवत्-प्राप्ति और सांसारिक भोगोंसे भ्रष्ट हुआ
विमूढः	= मोहित हुआ		
अप्रतिष्ठः	= आश्रयरहित पुरुष		
छिन्नाभ्रम्	= छिन्न-भिन्न बादलकी	न नश्यति	= नष्ट तो नहीं हो जाता है

संशय निवारण करनेके लिये अर्जुन की भगवान् से प्रार्थना ।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः, त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते ॥३९॥

कृष्ण	= हे कृष्ण	हि	= क्योंकि
मे	= मेरे	त्वदन्यः	= आपके सिवाय दूसरा
एतत्	= इस		
संशयम्	= संशयको	अस्य	= इस
अशेषतः	= संपूर्णतासे	संशयस्य	= संशयका
छेत्तुम्	= छेदन करनेके लिये (आप ही)	छेत्ता	= छेदन करनेवाला
अर्हसि	= योग्य हैं	न उपपद्यते	= मिलना संभव नही है

श्रीभगवानुवाच

अर्जुनकी शङ्का-के उत्तरमें निष्काम कर्म करने-वालेकी दुर्गतिका निषेध ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते, न, हि, कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति ॥४०॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पार्थ	= हे पार्थ	तात	= हे प्यारे
तस्य	= उस पुरुषका	कश्चित्	= कोई भी
न	= न तो	कल्याणकृत्	= शुभ कर्म करनेवाला अर्थात् भगवत्-अर्थ कर्म करनेवाला
इह	= इस लोकमें (और)		
न	= न		
अमुत्र	= परलोकमें		
एव	= ही		
विनाशः	= नाश	दुर्गतिम्	= दुर्गतिको
विद्यते	= होता है	न	= नहीं
हि	= क्योंकि	गच्छति	= प्राप्त होता है

योगभ्रष्ट पुरुषको स्वर्गलोक और पवित्र धनवानोंके घरमें जन्म प्राप्त होनेका कथन ।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

प्राप्य, पुण्यकृताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः, शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते ॥४१॥

किन्तु वह—

योगभ्रष्टः	= योगभ्रष्ट पुरुष	शाश्वतीः	= बहुत
पुण्यकृताम्	= पुण्यवानोंके	समाः	= वर्षोंतक
लोकान्	= लोकोंको अर्थात् स्वर्गादिक उत्तम लोकोंको	उषित्वा	= वास करके
		शुचीनाम्	= शुद्ध आचरणवाले
		श्रीमताम्	= श्रीमान् पुरुषोंके
प्राप्य	= प्राप्त होकर (उनमें)	गेहे	= घरमें
		अभिजायते	= जन्म लेता है

वैराग्यवान् योगभ्रष्टकी ज्ञानियोंके कुलमें उत्पत्ति और साधनमें स्वाभाविक प्रवृत्ति होनेका कथन ।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४ २॥

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्,
एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदृशम् ॥४२॥

अथवा	= अथवा (वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर)		(परन्तु)
धीमताम्	= ज्ञानवान्	ईदृशम्	= इस प्रकारका
योगिनाम्	= योगियोंके	यत्	= जो
एव	= ही	एतत्	= यह
कुले	= कुलमें	जन्म	= जन्म है (सो)
भवति	= जन्म लेता है	लोके	= संसारमें
		हि	= निःसन्देह
		दुर्लभतरम्	= अति दुर्लभ है

["] तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४ ३॥

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्,
यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन ॥४३॥

और वह पुरुष—

तत्र	= वहां	बुद्धि-संयोगम्	= बुद्धिके संयोगको अर्थात् समत्व-बुद्धियोगके संस्कारोंको
तम्	= उस		
पौर्व-देहिकम्	= पहिले शरीरमें साधन किये हुए		

	(अनायास ही)	भूयः	= फिर
लभते	= प्राप्त हो जाता है		(अच्छी प्रकार)
च	= और	संसिद्धौ	= भगवत्प्राप्तिके निमित्त
कुरुनन्दन	= हे कुरुनन्दन		
ततः	= उसके प्रभावसे	यतते	= यत्न करता है

पूर्वाभ्यासके बलसे पुनः योग-साधनमें लगनेका कथन।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४॥

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, ह्रियते, हि, अवशः, अपि, सः, जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते ॥४४॥

और—

सः	= वह*		(तथा)
अवशः	= विषयोंके वशमें हुआ	योगस्य	= समत्वबुद्धि-रूप योगका
अपि	= भी		
तेन	= उस	जिज्ञासुः	= जिज्ञासु
पूर्वाभ्यासेन	= पहिलेके अभ्याससे	अपि	= भी
एव	= ही	शब्दब्रह्म	= वेदमें कहे हुए सकाम कर्मोंके फलको
हि	= निःसन्देह		
ह्रियते	= भगवत्‌की ओर आकर्षित किया जाता है	अतिवर्तते	= उल्लंघन कर जाता है

* यहां "वह" शब्दसे श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पुरुष समझना चाहिये।

परमगतिकी प्राप्तिके लिये अति प्रयत्नसे अभ्यास करनेकी आवश्यकता

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः, अनेकजन्मसंसिद्धः, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥४५॥

जब कि इस प्रकार मन्द प्रयत्न करनेवाला योगी भी परम गतिको प्राप्त हो जाता है तब क्या कहना है कि—

अनेकजन्मसंसिद्धः = अनेक जन्मोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त हुआ

तु = और

प्रयत्नात् = अति प्रयत्नसे

यतमानः = अभ्यास करनेवाला

योगी = योगी

संशुद्धकिल्बिषः = संपूर्ण पापोंसे अच्छी प्रकार शुद्ध होकर

ततः = उस साधनके प्रभावसे

पराम् = परम

गतिम् = गतिको

याति = प्राप्त होता है अर्थात् परमात्माको प्राप्त होता है

योगीकी महिमा और योगी बननेके लिये आज्ञा ।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः, कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव अर्जुन ॥४६॥

क्योंकि—

योगी = योगी

तपस्विभ्यः = तपस्वियोंसे

अधिकः = श्रेष्ठ है

च = और

ज्ञानिभ्यः = शास्त्रके ज्ञानवालोंसे

अपि	=भी	योगी	=योगी
अधिकः	=श्रेष्ठ	अधिकः	=श्रेष्ठ है
मतः	=माना गया है (तथा)	तस्मात्	=इससे
		अर्जुन	=हे अर्जुन (तूं)
कर्मिभ्यः	=सकाम कर्म करनेवालोंसे (भी)	योगी	=योगी
		भव	=हो

सब योगियोंमें ध्यानयोगी की श्रेष्ठता ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना,
श्रद्धावान्, भजते, यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः ॥४७॥

और हे प्यारे—

सर्वेषाम्	=संपूर्ण	माम्	=मेरेको
योगिनाम्	=योगियोंमें	भजते	=निरन्तर भजता है
अपि	=भी		
यः	=जो	सः	=वह योगी
श्रद्धावान्	=श्रद्धावान् योगी	मे	=मुझे
मद्गतेन	=मेरेमें लगे हुए	युक्ततमः	=परमश्रेष्ठ
अन्तरात्मना	=अन्तरात्मासे	मतः	=मान्य है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ७ तक विज्ञानसहित ज्ञानका विषय, (८—१२) संपूर्ण पदार्थोंमें कारणरूपसे भगवान्‌की व्यापकताका कथन, (१३—१९) आसुरी स्वभाववालोंकी निन्दा और भगवद्भक्तोंकी प्रशंसा, (२०—२३) अन्य देवताओंकी उपासनाका विषय, (२४—३०) भगवान्‌के प्रभाव और स्वरूपको न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमा।

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानसहित भक्तियोग सुननेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्‌की आज्ञा।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥ १॥

मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, युञ्जन्, मदाश्रयः, असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु॥ १॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्णभगवान् बोले—

पार्थ = हे पार्थ (तूं)
मयि = मेरेमें
आसक्तमनाः = अनन्य प्रेमसे आसक्त हुए मनवाला (और अनन्यभावसे)
मदाश्रयः = मेरे परायण
योगम् = योगमें
युञ्जन् = लगा हुआ
माम् = मुझको
समग्रम् = संपूर्ण विभूति बल ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त सबका आत्मरूप
यथा = जिस प्रकार
असंशयम् = संशयरहित
ज्ञास्यसि = जानेगा
तत् = उसको
शृणु = सुन

विज्ञानसहित ज्ञानका वर्णन करनेके लिये भगवान् की प्रतिज्ञा और उसकी महिमा।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषतः,
यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूयः, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते ॥२॥

अहम्	= मैं	ज्ञात्वा	= जानकर
ते	= तेरे लिये	इह	= संसारमें
इदम्	= इस	भूयः	= फिर
सविज्ञानम्	= रहस्यसहित	अन्यत्	= और कुछ भी
ज्ञानम्	= तत्त्वज्ञानको	ज्ञातव्यम्	= जाननेयोग्य
अशेषतः	= संपूर्णतासे	न अवशिष्यते	= शेष नहीं रहता है
वक्ष्यामि	= कहूंगा (कि)		
यत्	= जिसको		

हजारों मनुष्योंमें भगवान्को तत्त्वसे जाननेवालेकी दुर्लभताका निरूपण।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये,
यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः ॥ ३ ॥

परन्तु—

सहस्रेषु	= हजारों	यतताम्	= उन यत्न करनेवाले
मनुष्याणाम्	= मनुष्योंमें	सिद्धानाम्	= योगियोंमें
कश्चित्	= कोई ही मनुष्य	अपि	= भी
सिद्धये	= मेरी प्राप्तिके लिये	कश्चित्	= कोई ही पुरुष (मेरे परायण हुआ)
यतति	= यत्न करता है (और)		

माम्	= मेरेको	वेत्ति	= जानता है अर्थात् यथार्थ मर्मसे जानता है
तत्त्वतः	= तत्त्वसे		

अपरा प्रकृति-का वर्णन ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च, अहंकारः, इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृतिः, अष्टधा ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन—

भूमिः	= पृथिवी	अहंकारः	= अहंकार
आपः	= जल	एव	= भी
अनलः	= अग्नि	इति	= ऐसे
वायुः	= वायु (और)	इयम्	= यह
खम्	= आकाश (तथा)	अष्टधा	= आठ प्रकारसे
मनः	= मन	भिन्ना	= विभक्त हुई
बुद्धिः	= बुद्धि	मे	= मेरी
च	= और	प्रकृतिः	= प्रकृति है

परा प्रकृति-का वर्णन

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्, जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत् ॥ ५ ॥

सो—

इयम्	= यह (आठ प्रकारके भेदोंवाली)	अपरा	= अपरा है अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है (और)
तु	= तो		

महाबाहो	= हे महाबाहो	प्रकृतिम्	= प्रकृति
इतः	= इससे	विद्धि	= जान (कि)
अन्याम्	= दूसरीको	यया	= जिससे
मे	= मेरी	इदम्	= यह (संपूर्ण)
जीवभूताम्	= जीवरूप	जगत्	= जगत्
पराम्	= { परा अर्थात् चेतन	धार्यते	= { धारण किया जाता है

संसारके कारण-का कथन ।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय, अहम्, कृत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा ॥ ६ ॥

और हे अर्जुन ! तूं—

इति	= ऐसा		(और)
उपधारय	= समझ (कि)	अहम्	= मैं
सर्वाणि	= संपूर्ण	कृत्स्नस्य	= संपूर्ण
भूतानि	= भूत	जगतः	= जगत्का
एतद्योनीनि	= { इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पत्तिवाले हैं	प्रभवः	= उत्पत्ति
		तथा	= तथा
		प्रलयः	= प्रलयरूप हूं

अर्थात् संपूर्ण जगत्का मूलकारण हूं

परमेश्वर के सर्वव्यापी स्वरूपका कथन ।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किंचित्, अस्ति, धनंजय, मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव ॥ ७ ॥

इसलिये—

धनंजय	= हे धनंजय	इदम्	= यह
मत्तः	= मेरेसे	सर्वम्	= संपूर्ण (जगत्)
परतरम्	= सिवाय	सूत्रे	= सूत्रमें
किंचित्	= किंचित् मात्र भी	मणिगणाः	= (सूत्रके) मणियोंके
अन्यत्	= दूसरी वस्तु	इव	= सदृश
न	= नहीं	मयि	= मेरेमें
अस्ति	= है	प्रोतम्	= गुंथा हुआ है

रसादिरूपसे जल आदि में भगवान् की व्यापकता का कथन ।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः,
प्रणवः, सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नृषु ॥ ८ ॥

कैसे कि—

कौन्तेय	= हे अर्जुन	सर्ववेदेषु	= संपूर्ण वेदोंमें
अप्सु	= जलमें	प्रणवः	= ओंकार हूं (तथा)
अहम्	= मैं		
रसः	= रस हूं (तथा)	खे	= आकाशमें
शशि सूर्ययोः	= चन्द्रमा और सूर्यमें	शब्दः	= शब्द (और)
प्रभा	= प्रकाश	नृषु	= पुरुषोंमें
अस्मि	= हूं (और)	पौरुषम्	= पुरुषत्व हूं

गन्धादिरूपसे पृथिवी आदिमें भगवान् की व्यापकता का कथन ।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ,
जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु ॥ ९ ॥

तथा—

पृथिव्याम्	= पृथिवीमें	जीवनम्	= (उनका) जीवन हूं अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह मैं हूं
पुण्यः	= पवित्र	च	= और
गन्धः	= गन्ध*	तपस्विषु	= तपस्वियोंमें
च	= और	तपः	= तप
विभावसौ	= अग्निमें	अस्मि	= हूं
तेजः	= तेज		
अस्मि	= हूं		
च	= और		
सर्वभूतेषु	= संपूर्ण भूतोंमें		

बीजादिरूपसे संपूर्ण भूतोंमें भगवान् की व्यापकता का कथन ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि, पार्थ, सनातनम्,
बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम् ॥ १० ॥

तथा—

पार्थ	= हे अर्जुन (तूं)	सनातनम्	= सनातन
सर्वभूतानाम्	= संपूर्ण भूतोंका	बीजम्	= कारण
		माम्	= मेरेको ही

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे इस प्रसङ्गमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका ग्रहण है । इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उनके साथ पवित्र शब्द जोड़ा गया है ।

विद्धि	= जान		(और)
अहम्	= मैं	तेजस्विनाम्	= तेजस्वियोंका
बुद्धिमताम्	= बुद्धिमानोंकी	तेजः	= तेज
बुद्धिः	= बुद्धि	अस्मि	= हूं

बलादिरूपसे भगवान् की व्यापकता का कथन।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्,
धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः, अस्मि, भरतर्षभ ॥११॥

और–

भरतर्षभ	= हे भरतश्रेष्ठ	च	= और
अहम्	= मैं	भूतेषु	= सब भूतोंमें
बलवताम्	= बलवानोंका	धर्माविरुद्धः	= धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल
कामराग-विवर्जितम्	= आसक्ति और कामनाओंसे रहित	कामः	= काम
बलम्	= बल अर्थात् सामर्थ्य हूं	अस्मि	= हूं

परमात्मसत्तासे त्रिगुणमय संपूर्ण पदार्थोंके होनेका कथन।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,
मत्तः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि ॥१२॥

तथा–

च	= और	एव	= भी

ये = जो
सात्त्विकाः = सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले
भावाः = भाव हैं
च = और
ये = जो
राजसाः = रजोगुणसे (तथा)
तामसाः = तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं
तान् = उन सबको (तू)
मत्तः = मेरेसे
एव = ही (होनेवाले हैं)
इति = ऐसा
विद्धि = जान
तु = परन्तु (वास्तवमें)*
तेषु = उनमें
अहम् = मैं (और)
ते = वे
मयि = मेरेमें
न = नहीं हैं

भगवान्को तत्त्वसे न जाननेके कारणका कथन।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

त्रिभिः गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्, मोहितम्, न, अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम् ॥१३॥

किन्तु—

गुणमयैः = गुणोंके कार्यरूप (सात्त्विक, राजस और तामस)
एभिः = इन
त्रिभिः = तीनों प्रकारके
भावैः = भावोंसे†
इदम् = यह
सर्वम् = सब
जगत् = संसार
मोहितम् = मोहित हो रहा है (इसलिये)
एभ्यः = इन तीनों गुणोंसे

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४-५ में देखना चाहिये।
† अर्थात् राग-द्वेषादि विकारोंसे और सम्पूर्ण विषयोंसे।

परम् =परे
माम् =मुझ
अव्ययम् =अविनाशीको
न अभिजानाति ={ तत्त्वसे नहीं जानता

भगवान्‌की दुस्तर मायासे तरनेके लिये सहज उपायका कथन।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया,
माम्, एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते ॥१४॥

हि =क्योंकि
एषा =यह
दैवी ={ अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत
गुणमयी =त्रिगुणमयी
मम =मेरी
माया =योगमाया
दुरत्यया =बड़ी दुस्तर है
(परन्तु)
ये =जो पुरुष
माम् =मेरेको
एव =ही
प्रपद्यन्ते= निरन्तर भजते हैं
ते =वे
एताम् =इस
मायाम् =मायाको
तरन्ति ={ उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं

पापकर्म करनेवाले मूढ़ोंकी भगवद्भजनमें प्रवृत्ति न होनेका कथन।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

न, माम्, दुष्कृतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः,
मायया, अपहृतज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः ॥१५॥

ऐसा सुगम उपाय होनेपर भी—

मायया =मायाद्वारा
अपहृतज्ञानाः ={ हरे हुए ज्ञानवाले (और)

आसुरम्	= आसुरी	दुष्कृतिनः	= दूषित कर्म करनेवाले
भावम्	= स्वभावको	मूढाः	= मूढ़लोग तो
आश्रिताः	= धारण किये हुए (तथा)	माम्	= मेरेको
नराधमाः	= मनुष्योंमें नीच (और)	न	= नहीं
		प्रपद्यन्ते	= भजते हैं

चार प्रकारके भक्तोंका कथन।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६॥

चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकृतिनः, अर्जुन, आर्त्तः, जिज्ञासुः, अर्थार्थी ज्ञानी, च, भरतर्षभ ॥१६॥

और—

भरतर्षभ	= हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ	च	= और
अर्जुन	= अर्जुन	ज्ञानी	= ज्ञानी अर्थात् निष्कामी (ऐसे)
सुकृतिनः	= उत्तम कर्मवाले	चतुर्विधाः	= चार प्रकारके
अर्थार्थी	= अर्थार्थी*	जनाः	= भक्तजन
आर्त्तः	= आर्त्त†	माम्	= मेरेको
जिज्ञासुः	= जिज्ञासु‡	भजन्ते	= भजते हैं

ज्ञानी भक्तके प्रेमकी प्रशंसा।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७॥

तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते, प्रियः, हि, ज्ञानिनः, अत्यर्थम्, अहम्, सः, च, मम, प्रियः ॥१७॥

---

* सांसारिक पदार्थोंके लिये भजनेवाला।

† सङ्कटनिवारणके लिये भजनेवाला।

‡ मेरेको यथार्थरूपसे जाननेकी इच्छासे भजनेवाला।

तेषाम् = उनमें (भी)
नित्ययुक्तः = नित्य मेरेमें एकीभावसे स्थित हुआ
एकभक्तिः = अनन्य प्रेम-भक्तिवाला
ज्ञानी = ज्ञानी भक्त
विशिष्यते = अति उत्तम है
हि = क्योंकि
ज्ञानिनः = (मेरेको तत्त्वसे जाननेवाले) ज्ञानीको
अहम् = मैं
अत्यर्थम् = अत्यन्त
प्रियः = प्रिय हूं
च = और
सः = वह ज्ञानी
मम = मेरेको (अत्यन्त)
प्रियः = प्रिय है

ज्ञानी भक्तकी विशेष प्रशंसा।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ १८॥

उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्,
आस्थितः, सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम्॥ १८॥

यद्यपि—

एते = यह
सर्वे = सब
एव = ही
उदाराः = उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजनके लिये समय लगानेवाले होनेसे उत्तम हैं
तु = परन्तु
ज्ञानी = ज्ञानी (तो) (साक्षात्)
आत्मा = मेरा स्वरूप
एव = ही है (ऐसा)
मे = मेरा
मतम् = मत है
हि = क्योंकि
सः = वह

युक्तात्मा	= स्थिरबुद्धि (ज्ञानी भक्त)	माम्	= मेरेमें
अनुत्तमाम्	= अति उत्तम	एव	= ही
गतिम्	= गतिस्वरूप	आस्थितः	= अच्छी प्रकार स्थित है

ज्ञानी महात्माकी दुर्लभताका कथन ।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते, वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः ॥१९॥

और जो–

बहूनाम्	= बहुत	इति	= इस प्रकार
जन्मनाम्	= जन्मोंके	माम्	= मेरेको
अन्ते	= अन्तके जन्ममें	प्रपद्यते	= भजता है
ज्ञानवान्	= तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी	सः	= वह
सर्वम्	= सब कुछ	महात्मा	= महात्मा
वासुदेवः	= वासुदेव ही है*	सुदुर्लभः	= अति दुर्लभ है

अन्य देवताओंको भजनेमें हेतुका कथन ।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः, तम्, तम्, नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया ॥२०॥

और हे अर्जुन ! जो विषयासक्त पुरुष हैं वे तो–

स्वया	= अपने	नियताः	= प्रेरे हुए (तथा)
प्रकृत्या	= स्वभावसे	तैः	= उन

* अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं ।

तैः	= उन	आस्थाय	= धारण करके*
कामैः	= भोगोंकी कामनाद्वारा	अन्यदेवताः	= अन्य देवताओंको
हृतज्ञानाः	= ज्ञानसे भ्रष्ट हुए		
तम्	= उस		
तम्	= उस	प्रपद्यन्ते	= भजते हैं अर्थात् पूजते हैं
नियमम्	= नियमको		

अन्य देवताओंमें श्रद्धा स्थिर करनेका कथन।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥२१॥

यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति, तस्य, तस्य, अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम्॥२१॥

यः	= जो	इच्छति	= चाहता है
यः	= जो	तस्य	= उस
भक्तः	= सकामी भक्त	तस्य	= उस भक्तकी
याम्	= जिस	अहम्	= मैं
याम्	= जिस	ताम् एव	= उस ही देवताके प्रति
तनुम्	= देवताके स्वरूपको	श्रद्धाम्	= श्रद्धाको
श्रद्धया	= श्रद्धासे	अचलाम्	= स्थिर
अर्चितुम्	= पूजना	विदधामि	= करता हूं

अन्य देवताओंकी उपासनाका फल।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥२२॥

* अर्थात् जिस देवताकी पूजाके लिये जो-जो नियम लोकमें प्रसिद्ध है उस-उस नियमको धारण करके।

सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते, लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान् ॥२२॥

तथा—

सः	=वह पुरुष	ततः	=उस देवतासे
तया	=उस	मया	=मेरेद्वारा
श्रद्धया	=श्रद्धासे	एव	=ही
युक्तः	=युक्त हुआ	विहितान्	=विधान किये हुए
तस्य	=उस देवताके	तान्	=उन
आराधनम्	=पूजनकी	कामान्	=इच्छित भोगोंको
ईहते	=चेष्टा करता है	हि	=निःसन्देह
च	=और	लभते	=प्राप्त होता है

अन्य देवताओंकी उपासनाके फलकी निन्दा और भगवद्भक्तिकी महिमा।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३॥

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्, देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि ॥२३॥

तु	=परन्तु	देवान्	=देवताओंको
तेषाम्	=उन	यान्ति	=प्राप्त होते हैं (और)
अल्पमेधसाम्	=अल्पबुद्धिवालोंका	मद्भक्ताः	=मेरे भक्त (चाहे जैसे ही भजें अन्तमें वे)
तत्	=वह		
फलम्	=फल		
अन्तवत्	=नाशवान्		
भवति	=है (तथा वे)	माम्	=मेरेको
		अपि	=ही
देवयजः	=देवताओंको पूजनेवाले	यान्ति	=प्राप्त होते हैं

भगवान्‌को न जाननेमें हेतुका कथन ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४॥

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः, परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम् ॥२४॥

ऐसा होनेपर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते, इसका कारण यह है कि—

अबुद्धयः = बुद्धिहीन पुरुष
मम = मेरे
अनुत्तमम् = अनुत्तम अर्थात् जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं ऐसे
अव्ययम् = अविनाशी
परम् = परम
भावम् = भावको अर्थात् अजन्मा अविनाशी हुआ भी अपनी मायासे प्रकट होता हूं ऐसे प्रभावको
अजानन्तः = तत्त्वसे न जानते हुए
अव्यक्तम् = मन इन्द्रियोंसे परे
माम् = मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको (मनुष्यकी भांति जन्मकर)
व्यक्तिम् = व्यक्तिभावको
आपन्नम् = प्राप्त हुआ
मन्यन्ते = मानते हैं

[„]

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥ २५॥

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः, मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम् ॥२५॥

तथा—

योगमाया-समावृतः	= अपनी योगमायासे छिपा हुआ	मूढः	= अज्ञानी
		लोकः	= मनुष्य
		माम्	= मुझ
अहम्	= मैं	अजम्	= जन्मरहित
सर्वस्य	= सबके	अव्ययम्	= अविनाशी परमात्माको (तत्त्वसे)
प्रकाशः	= प्रत्यक्ष		
न	= नहीं होता हूं (इसलिये)	न	= नहीं
अयम्	= यह	अभिजानाति	= जानता है

अर्थात् मेरेको जन्मने-मरनेवाला समझता है ।

भगवान्की सर्वज्ञता का कथन ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन, भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कश्चन ॥२६॥

और—

अर्जुन	= हे अर्जुन	अहम्	= मैं
समतीतानि	= पूर्वमें व्यतीत हुए	वेद	= जानता हूं
च	= और	तु	= परन्तु
वर्तमानानि	= वर्तमानमें स्थित	माम्	= मेरेको
च	= तथा	कश्चन	= कोई भी (श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष)
भविष्याणि	= आगे होनेवाले	न	= नहीं
भूतानि	= सब भूतोंको	वेद	= जानता है

इच्छा-द्वेषसे मोहकी प्राप्ति।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत,
सर्वभूतानि, संमोहम्, सर्गे, यान्ति, परंतप ॥२७॥

क्योंकि-

भारत	=हे भरतवंशी	द्वन्द्वमोहेन	=सुख दुःखादि द्वन्द्वरूपमोहसे
परंतप	=अर्जुन	सर्वभूतानि	=संपूर्ण प्राणी
सर्गे	=संसारमें	संमोहम्	=अति अज्ञानताको
इच्छाद्वेष-समुत्थेन	=इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए	यान्ति	=प्राप्त हो रहे हैं

भगवान्को भजनेवालोंके लक्षण।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्,
ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दृढव्रताः ॥२८॥

तु	=परन्तु	ते	=वे
पुण्य-कर्मणाम्	=(निष्काम-भावसे) श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले	द्वन्द्वमोह-निर्मुक्ताः	=रागद्वेषादि द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त हुए(और)
येषाम्	=जिन	दृढव्रताः	=दृढ़ निश्चय-वाले पुरुष
जनानाम्	=पुरुषोंका	माम्	=मेरेको (सब प्रकारसे)
पापम्	=पाप		
अन्तगतम्	=नष्ट हो गया है	भजन्ते	=भजते हैं

ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म को जाननेमें भगवत्शरण की प्रधानता ।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥

जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये, ते, ब्रह्म, तत्, विदुः, कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम् २९

और-

ये	=जो	ब्रह्म	=ब्रह्मको
माम्	=मेरे	च	=तथा
आश्रित्य	=शरण होकर	कृत्स्नम्	=संपूर्ण
जरामरण-मोक्षाय	=जरा और मरणसे छूटनेके लिये	अध्यात्मम्	=अध्यात्मको (और)
यतन्ति	=यत्न करते हैं	अखिलम्	=संपूर्ण
ते	=वे (पुरुष)	कर्म	=कर्मको
तत्	=उस	विदुः	=जानते हैं

अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ सहित भगवान् को जाननेवालों की महिमा ।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः, प्रयाणकाले, अपि, च, माम्, ते, विदुः, युक्तचेतसः ॥३०॥

और-

ये	=जो पुरुष	च	=तथा
साधिभूताधिदैवम्	=अधिभूत और अधिदैवके सहित	साधियज्ञम्	=अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप)

माम्	= मेरेको	अपि	= भी
विदुः	= जानते हैं*	माम्	= मुझको
ते	= वे	च	= ही
युक्तचेतसः	= युक्तचित्त-वाले पुरुष	विदुः	= जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं
प्रयाणकाले	= अन्तकालमें		

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ७ तक ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर, (८—२२) भक्तियोगका विषय, (२३—२८) शुक्ल और कृष्णमार्गका विषय ।

अर्जुन उवाच

ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुन-के सात प्रश्न।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

किम्, तत्, ब्रह्म, किम्, अध्यात्मम्, किम्, कर्म, पुरुषोत्तम, अधिभूतम्, च, किम्, प्रोक्तम्, अधिदैवम्, किम्, उच्यते ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको न समझकर अर्जुन बोला—

पुरुषोत्तम	= हे पुरुषोत्तम	(जिसका आपने वर्णन किया)	
		तत्	= वह

* अर्थात् जैसे भाफ, बादल, धूम, पानी और बर्फ यह सभी जलस्वरूप हैं वैसे ही अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ आदि सब कुछ वासुदेवस्वरूप हैं ऐसे जो जानते हैं ।

ब्रह्म	= ब्रह्म	अधिभूतम्	= अधिभूत (नामसे)
किम्	= क्या है (और)	किम्	= क्या
अध्यात्मम्	= अध्यात्म	प्रोक्तम्	= कहा गया है (तथा)
किम्	= क्या है (तथा)	अधिदैवम्	= अधिदैव (नामसे)
कर्म	= कर्म	किम्	= क्या
किम्	= क्या है	उच्यते	= कहा जाता है
च	= और		

[,,] अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

अधियज्ञः, कथम्, कः, अत्र, देहे, अस्मिन्, मधुसूदन,
प्रयाणकाले च, कथम्, ज्ञेयः, असि, नियतात्मभिः ॥ २ ॥

और—

मधुसूदन	= हे मधुसूदन	नियतात्मभिः	= युक्त चित्तवाले पुरुषोंद्वारा
अत्र	= यहां	प्रयाणकाले	= अन्त समयमें (आप)
अधियज्ञः	= अधियज्ञ	कथम्	= किस प्रकार
कः	= कौन है (और वह)	ज्ञेयः असि	= जाननेमें आते हो
अस्मिन्	= इस		
देहे	= शरीरमें		
कथम्	= कैसे है		
च	= और		

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म के विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्नोंका उत्तर ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

अक्षरम्, ब्रह्म परमम्, स्वभावः, अध्यात्मम्, उच्यते,
भूतभावोद्भवकरः, विसर्गः, कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन—

परमम्	= परम	उच्यते	= कहा जाता है (तथा)
अक्षरम्	= अक्षर अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं हो ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो	भूतभावोद्भवकरः	= भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला
ब्रह्म	= ब्रह्म है (और)	विसर्गः	= शास्त्रविहित यज्ञ दान और होम आदिके निमित्त जो द्रव्यादिकोंका त्याग है वह
स्वभावः	= अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा		
अध्यात्मम्	= अध्यात्म (नामसे)	कर्मसंज्ञितः	= कर्म नामसे कहा गया है

अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्नोंका उत्तर

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

अधिभूतम्, क्षरः, भावः, पुरुषः, च, अधिदैवतम्, अधियज्ञः, अहम्, एव, अत्र, देहे, देहभृताम्, वर ॥ ४ ॥

तथा—

क्षरः भावः	= उत्पत्ति विनाश धर्मवाले सब पदार्थ	पुरुषः	= हिरण्यमय पुरुष*
अधिभूतम्	= अधिभूत हैं	अधिदैवतम्	= अधिदैव है (और)
च	= और		

* जिसको शास्त्रोंमें "सूत्रात्मा," "हिरण्यगर्भ," "प्रजापति," "ब्रह्मा" इत्यादि नामोंसे कहा है ।

देहभृताम् वर	= हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन	अहम्	= मैं
अत्र	= इस	एव	= ही (विष्णुरूपसे)
देहे	= शरीरमें	अधियज्ञः	= अधियज्ञ हूं

अन्तकालमें भगवत्-स्मरण-का फल (अर्जुन-के सातवें प्रश्न-का उत्तर)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

अन्तकाले, च, माम्, एव, स्मरन्, मुक्त्वा, कलेवरम्,
यः, प्रयाति, सः, मद्भावम्, याति, न, अस्ति, अत्र, संशयः ॥ ५ ॥

च	= और	प्रयाति	= जाता है
यः	= जो पुरुष	सः	= वह
अन्तकाले	= अन्तकालमें	मद्भावम्	= मेरे (साक्षात्) स्वरूपको
माम्	= मेरेको		
एव	= ही	याति	= प्राप्त होता है
स्मरन्	= स्मरण करता हुआ	अत्र	= इसमें (कुछ भी)
		संशयः	= संशय
कलेवरम्	= शरीरको	न	= नहीं
मुक्त्वा	= त्यागकर	अस्ति	= है

अन्तकालमें भावनानुसार गति होनेका कथन ।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

यम्, यम्, वा, स्मरन्, भावम्, त्यजति, अन्ते, कलेवरम्,
तम्, तम्, एव, एति, कौन्तेय, सदा, तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

कारण कि—

कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र अर्जुन (यह मनुष्य)	अन्ते	= अन्तकालमें
		यम्	= जिस

यम्	=जिस	तम्	=उसको
वा अपि	=भी	एव	=ही
भावम्	=भावको	एति	=प्राप्त होता है (परन्तु)
स्मरन्	=स्मरण करता हुआ	सदा	=सदा
कलेवरम्	=शरीरको	तद्भाव-भावितः	=उस ही भावको चिन्तन करता हुआ
त्यजति	=त्यागता है		
तम्	=उस		

क्योंकि सदा जिस भावका चिन्तन करता है अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण होता है ।

निरन्तर भगवत्-चिन्तन करते हुए युद्ध करनेके लिये आज्ञा और उसका फल ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, माम्, अनुस्मर, युध्य, च, मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम् ॥ ७ ॥

तस्मात्	=इसलिये (हे अर्जुन ! तू)	मयि	=मेरेमें
सर्वेषु	=सब	अर्पित-मनोबुद्धिः	=अर्पण किये हुए मन बुद्धिसे युक्त हुआ
कालेषु	=समयमें (निरन्तर)		
माम्	=मेरा	असंशयम्	=निःसन्देह
अनुस्मर	=स्मरण कर	माम्	=मेरेको
च	=और		
युध्य	=युद्ध भी कर (इस प्रकार)	एव	=ही
		एष्यसि	=प्राप्त होगा

निरन्तर चिन्तन-से परम दिव्य पुरुषकी प्राप्ति ।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा, नान्यगामिना,
परमम्, पुरुषम्, दिव्यम्, याति, पार्थ, अनुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

और—

पार्थ = हे पार्थ (यह नियम है कि)
अभ्यासयोगयुक्तेन = परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त
नान्यगामिना = अन्य तरफ न जानेवाले
चेतसा = चित्तसे
अनुचिन्तयन् = निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष
परमम् = परम (प्रकाशस्वरूप)
दिव्यम् = दिव्य
पुरुषम् = पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको ही
याति = प्राप्त होता है

परम दिव्य पुरुषके स्वरूपका वर्णन और उसके चिन्तनकी विधि।

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः, सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥ ९ ॥

इससे—

यः = जो पुरुष
कविम् = सर्वज्ञ
पुराणम् = अनादि
अनुशासितारम् = सबके नियन्ता*

* अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंके शुभ और अशुभ कर्मके अनुसार शासन करनेवाला।

अणोः अणीयांसम्	= { सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म	आदित्य-वर्णम्	= { सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप
सर्वस्य	= सबके	तमसः	= अविद्यासे
धातारम्	= { धारण-पोषण करनेवाले	परस्तात्	= { अतिपरे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माको
अचिन्त्य-रूपम्	= { अचिन्त्य-स्वरूप	अनुसरेत्	= स्मरण करता है

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव, भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, सः, तम्, परम्, पुरुषम्, उपैति, दिव्यम् ॥ १० ॥

सः	= वह	च	= फिर
भक्त्या युक्तः	= { भक्तियुक्त पुरुष	अचलेन	= निश्चल
		मनसा	= मनसे
प्रयाणकाले	= अन्तकालमें (भी)	(स्मरन्)	= स्मरण करता हुआ
योगबलेन	= योगबलसे	तम्	= उस
भ्रुवोः	= भृकुटीके	दिव्यम्	= दिव्यस्वरूप
मध्ये	= मध्यमें	परम् पुरुषम्	= { परम पुरुष परमात्माको
प्राणम्	= प्राणको		
सम्यक्	= अच्छी प्रकार	एव	= ही
आवेश्य	= स्थापन करके	उपैति	= प्राप्त होता है

अक्षरस्वरूप परमपद की प्रशंसा ।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

यत्, अक्षरम्, वेदविदः, वदन्ति, विशन्ति, यत्, यतयः, वीतरागाः, यत्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, संग्रहेण, प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

और हे अर्जुन-

वेदविदः	= वेदके जाननेवाले (विद्वान)	विशन्ति	= प्रवेश करते हैं (तथा)
यत्	= जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको	यत्	= जिस परमपदको
		इच्छन्तः	= चाहनेवाले
		ब्रह्मचर्यम्	= ब्रह्मचर्यका
अक्षरम्	= ओंकार (नामसे)	चरन्ति	= आचरण करते हैं
वदन्ति	= कहते हैं (और)	तत्	= उस
वीतरागाः	= आसक्तिरहित	पदम्	= परमपदको
यतयः	= यत्नशील महात्माजन	ते	= तेरे लिये
		संग्रहेण	= संक्षेपसे
यत्	= जिसमें	प्रवक्ष्ये	= कहूंगा

ध्यानयोगकी विधिसे ओंकारका उच्चारण और भगवत् स्वरूपका चिन्तन करते हुए मरनेवालेकी परमगति होनेका कथन ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

सर्वद्वाराणि, संयम्य, मनः, हृदि, निरुध्य, च, मूर्ध्नि, आधाय, आत्मनः, प्राणम्, आस्थितः, योगधारणाम् ॥ १२॥

हे अर्जुन—

सर्व-द्वाराणि = सब इन्द्रियोंके द्वारोंको	च = और
संयम्य = रोककर अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर	आत्मनः = अपने
(तथा)	प्राणम् = प्राणको
मनः = मनको	मूर्ध्नि = मस्तकमें
हृदि = हृद्देशमें	आधाय = स्थापन करके
निरुध्य = स्थिर करके	योग-धारणाम् = योगधारणामें
	आस्थितः = स्थित हुआ

[,,] ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

ॐ, इति, एकाक्षरम्, ब्रह्म, व्याहरन्, माम्, अनुस्मरन्, यः, प्रयाति, त्यजन्, देहम्, सः, याति, परमाम्, गतिम् ॥१३॥

यः = जो पुरुष	माम् = मेरेको
ॐ = ॐ	अनुस्मरन् = चिन्तन करता हुआ
इति = ऐसे (इस)	देहम् = शरीरको
एकाक्षरम् = एक अक्षररूप	त्यजन् = त्यागकर
ब्रह्म = ब्रह्मको	प्रयाति = जाता है
व्याहरन् = उच्चारण करता हुआ (और उसके अर्थस्वरूप)	सः = वह पुरुष
	परमाम् = परम
	गतिम् = गतिको
	याति = प्राप्त होता है

नित्य निरन्तर भगवत्-चिन्तनसे भगवत्-प्राप्ति-की सुलभता ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

अनन्यचेताः, सततम्, यः, माम्, स्मरति, नित्यशः,
तस्य, अहम्, सुलभः, पार्थ, नित्ययुक्तस्य, योगिनः ॥१४॥

और—

पार्थ = हे अर्जुन	स्मरति = स्मरण करता है
यः = जो पुरुष	तस्य = उस
अनन्यचेताः = मेरेमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ	नित्ययुक्तस्य = निरन्तर मेरेमें युक्त हुए
नित्यशः = सदा ही	योगिनः = योगीके (लिये)
सततम् = निरन्तर	अहम् = मैं
माम् = मेरेको	सुलभः = सुलभ हूं

अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूं

भगवत्-प्राप्ति-का महत्त्व ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

माम्, उपेत्य, पुनर्जन्म, दुःखालयम्, अशाश्वतम्,
न, आप्नुवन्ति, महात्मानः, संसिद्धिम्, परमाम्, गताः ॥१५॥

और वे—

परमाम् = परम	दुःखालयम् = दुःखके स्थानरूप
संसिद्धिम् = सिद्धिको	
गताः = प्राप्त हुए	अशाश्वतम् = क्षणभङ्गुर
महात्मानः = महात्माजन	पुनर्जन्म = पुनर्जन्मको
माम् = मेरेको	न = नहीं
उपेत्य = प्राप्त होकर	आप्नुवन्ति = प्राप्त होते हैं

["] आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

आब्रह्मभुवनात्, लोकाः, पुनरावर्तिनः, अर्जुन, माम्, उपेत्य, तु, कौन्तेय, पुनर्जन्म, न, विद्यते ॥१६॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन	कौन्तेय	= हे कुन्तीपुत्र
आब्रह्म-भुवनात्	= ब्रह्मलोकसे लेकर	माम्	= मेरेको
		उपेत्य	= प्राप्त होकर (उसका)
लोकाः	= सब लोक		
पुनरावर्तिनः	= पुनरावर्ती* स्वभाववाले हैं	पुनर्जन्म	= पुनर्जन्म
		न	= नहीं
तु	= परन्तु	विद्यते	= होता है

क्योंकि मैं कालातीत हूं और यह सब ब्रह्मादिकोंके लोक काल करके अवधिवाले होनेसे अनित्य हैं ।

ब्रह्माके दिन-रात्रिकी अवधि-का कथन ।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

सहस्रयुगपर्यन्तम्, अहः, यत्, ब्रह्मणः, विदुः, रात्रिम्, युगसहस्रान्ताम्, ते, अहोरात्रविदः, जनाः ॥१७॥

हे अर्जुन—

ब्रह्मणः	= ब्रह्माका	सहस्रयुग-पर्यन्तम्	= हजार चौकड़ी युगतक अवधिवाला (और)
यत्	= जो		
अहः	= एक दिन है (उसको)		

* अर्थात् जिनको प्राप्त होकर पीछा संसारमें आना पड़े ऐसे ।

रात्रिम्	= रात्रिको (भी)	विदुः	= तत्त्वसे जानते हैं*
युग-सहस्रान्ताम्	= हजार चौकड़ी युगतक अवधिवाली	ते	= वे
		जनाः	= योगीजन
(ये)	= जो पुरुष	अहो-रात्रविदः	= कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं

ब्रह्मासे सम्पूर्ण भूतोंकी बारंबार उत्पत्ति और प्रलयका कथन।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

अव्यक्तात्, व्यक्तयः, सर्वाः, प्रभवन्ति, अहरागमे, रात्र्यागमे, प्रलीयन्ते, तत्र, एव, अव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

इसलिये वे यह भी जानते हैं कि—

सर्वाः	= संपूर्ण		(और)
व्यक्तयः	= दृश्यमात्र भूतगण	रात्र्यागमे	= ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें
अहरागमे	= ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें	तत्र	= उस
अव्यक्तात्	= अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे	अव्यक्त-संज्ञके	= अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें
		एव	= ही
प्रभवन्ति	= उत्पन्न होते हैं	प्रलीयन्ते	= लय होते हैं

["] भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

भूतग्रामः, सः, एव, अयम्, भूत्वा, भूत्वा, प्रलीयते, रात्र्यागमे, अवशः, पार्थ, प्रभवति, अहरागमे ॥१९॥

* अर्थात् काल करके अवधिवाला होनेसे ब्रह्मलोकको भी अनित्य जानते हैं।

और—

सः	= वह	रात्र्यागमे	= रात्रिके प्रवेशकालमें
एव	= ही	प्रलीयते	= लय होता है (और)
अयम्	= यह		
भूतग्रामः	= भूतसमुदाय		
भूत्वा भूत्वा	= उत्पन्न हो होकर	अहरागमे	= दिनके प्रवेश-कालमें (फिर)
अवशः	= प्रकृतिके वशमें हुआ	प्रभवति	= उत्पन्न होता है
		पार्थ	= हे अर्जुन

इस प्रकार ब्रह्माके एक सौ वर्ष पूर्ण होनेसे अपने लोक-सहित ब्रह्मा भी शान्त हो जाता है।

सनातन अव्यक्त परमेश्वर-के स्वरूपका कथन।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः, अव्यक्तात्, सनातनः, यः, सः, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति ॥ २० ॥

तु	= परन्तु	भावः	= भाव है
तस्मात्	= उस		
अव्यक्तात्	= अव्यक्तसे भी	सः	= वह सच्चिदा-नन्दघन पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा
परः	= अति परे		
अन्यः	= दूसरा अर्थात् विलक्षण	सर्वेषु	= सब
		भूतेषु	= भूतोंके
यः	= जो	नश्यत्सु	= नष्ट होनेपर भी
सनातनः	= सनातन	न	= नहीं
अव्यक्तः	= अव्यक्त	विनश्यति	= नष्ट होता है

अव्यक्त, अक्षर और परमगति तथा परमधाम-की एकता ।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्, यम् प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥२१॥

और जो वह—

अव्यक्तः	= अव्यक्त	यम्	= जिस सनातन अव्यक्तभावको
अक्षरः	= अक्षर	प्राप्य	= प्राप्त होकर (मनुष्य)
इति	= ऐसे	न निवर्तन्ते	= पीछे नहीं आते हैं
उक्तः	= कहा गया है	तत्	= वह
तम्	= उस ही अक्षर नामक अव्यक्त भावको	मम	= मेरा
परमाम्	= परम	परमम्	= परम
गतिम्	= गति	धाम	= धाम है
आहुः	= कहते हैं (तथा)		

अनन्यभक्तिसे परम पुरुष परमेश्वर की प्राप्ति ।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥

पुरुषः, सः, परः, पार्थ, भक्त्या, लभ्यः, तु, अनन्यया, यस्य, अन्तःस्थानि, भूतानि, येन, सर्वम्, इदम्, ततम् ॥२२॥

तु	= और	भूतानि	= सर्व भूत हैं (और)
पार्थ	= हे पार्थ		
यस्य	= जिस परमात्माके	येन	= जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मासे
अन्तःस्थानि	= अन्तर्गत		

इदम्	= यह	पुरुषः	= पुरुष
सर्वम्	= सब जगत्	अनन्यया	= अनन्य†
ततम्	= परिपूर्ण है *	भक्त्या	= भक्तिसे
सः	= वह सनातन अव्यक्त	लभ्यः	= प्राप्त होने योग्य है
परः	= परम		

शुक्ल-कृष्ण मार्गका विषय कहनेके लिये भगवान् की प्रतिज्ञा ।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

यत्र, काले, तु, अनावृत्तिम्, आवृत्तिम्, च, एव, योगिनः, प्रयाताः, यान्ति, तम्, कालम्, वक्ष्यामि, भरतर्षभ ॥२३॥

तु	= और	च	= और
भरतर्षभ	= हे अर्जुन	आवृत्तिम्	= पीछा आनेवाली गतिको
यत्र	= जिस	एव	= भी
काले	= कालमें ‡	यान्ति	= प्राप्त होते हैं
प्रयाताः	= शरीर त्याग-कर गये हुए	तम्	= उस
योगिनः	= योगीजन	कालम्	= कालको अर्थात् मार्गको
अनावृत्तिम्	= पीछा न आने-वाली गतिको	वक्ष्यामि	= कहूंगा

फलसहित शुक्ल मार्गका कथन ।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

* गीता अध्याय ९ श्लोक ४ में देखना चाहिये ।

† गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ में इसका विस्तार देखना चाहिये ।

‡ यहां काल शब्दसे मार्ग समझना चाहिये; क्योंकि आगेके श्लोकोंमें भगवान्ने इसका नाम "सृति" "गति" ऐसा कहा है ।

अग्निः, ज्योतिः, अहः, शुक्लः, षण्मासाः, उत्तरायणम्,
तत्र, प्रयाताः, गच्छन्ति, ब्रह्म, ब्रह्मविदः, जनाः ॥२४॥

उन दो प्रकारके मार्गोंमेंसे जिस मार्गमें–

ज्योतिः = ज्योतिर्मय
अग्निः = अग्नि अभिमानी देवता है
(और)
अहः = दिनका अभिमानी देवता है
(तथा)
शुक्लः = शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है
(और)
षण्मासाः उत्तरायणम् = उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है
तत्र = उस मार्गमें
प्रयाताः = मरकर गये हुए
ब्रह्मविदः = ब्रह्मवेत्ता*
जनाः = योगीजन (उपरोक्त देवताओं-द्वारा क्रमसे ले गये हुए)
ब्रह्म = ब्रह्मको
गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं

फलसहित कृष्णमार्गका कथन ।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

धूमः, रात्रिः, तथा, कृष्णः, षण्मासाः, दक्षिणायनम्,
तत्र, चान्द्रमसम्, ज्योतिः, योगी, प्राप्य, निवर्तते ॥२५॥

तथा जिस मार्गमें

धूमः = धूमाभिमानी देवता है
(और)
रात्रिः = रात्रि अभिमानी देवता है
तथा = तथा

* अर्थात् परमेश्वरकी उपासनासे परमेश्वरको परोक्षभावसे जाननेवाले ।

कृष्णः = { कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है (और)

षण्मासाः दक्षिणायनम् = { दक्षिणायनके छ महीनोंका अभिमानी देवता है

तत्र = उस मार्गमें (मरकर गया हुआ)

योगी = सकाम कर्मयोगी

(उपरोक्त देवताओं-द्वारा क्रमसे ले गया हुआ)

चान्द्रमसम् = चन्द्रमाकी

ज्योतिः = ज्योतिको

प्राप्य = प्राप्त होकर (स्वर्गमें अपने शुभकर्मोंका फल भोगकर)

निवर्तते = पीछा आता है

शुक्ल-कृष्ण गति-की अनादिताका कथन।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥

शुक्लकृष्णे, गती, हि, एते, जगतः, शाश्वते, मते,
एकया, याति, अनावृत्तिम्, अन्यया, आवर्तते, पुनः ॥२६॥

हि = क्योंकि

जगतः = जगत्के

एते = यह दो प्रकारके

शुक्लकृष्णे = { शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान

गती = मार्ग

शाश्वते = सनातन

मते = माने गये हैं (इनमें)

एकया = एकके द्वारा (गया हुआ*)

अनावृत्तिम् = { पीछा न आनेवाली परमगतिको

याति = प्राप्त होता है (और)

*अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २४ के अनुसार अर्चिमार्गसे गया हुआ योगी।

अन्यथा	= दूसरेद्वारा (गया हुआ*)	आवर्तते	= आता है अर्थात् जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है
पुनः	= पीछा		

दोनों मार्गोंको जानने वाले योगीकी प्रशंसा।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

न, एते, सृती, पार्थ, जानन्, योगी, मुह्यति, कश्चन,
तस्मात्, सर्वेषु, कालेषु, योगयुक्तः, भव, अर्जुन ॥२७॥

और-

पार्थ	= हे पार्थ (इस प्रकार)	तस्मात्	= इस कारण
एते	= इन दोनों	अर्जुन	= हे अर्जुन (तूं)
सृती	= मार्गोंको	सर्वेषु	= सब
जानन्	= तत्त्वसे जानता हुआ	कालेषु	= कालमें
कश्चन	= कोई भी	योगयुक्तः	= समत्वबुद्धिरूप योगसे युक्त
योगी	= योगी		
न मुह्यति	= मोहित नहीं होता है†	भव	= हो

अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो।

---

* अर्थात् इसी अध्यायके श्लोक २५ के अनुसार धूममार्गसे गया हुआ सकाम कर्मयोगी।

† अर्थात् फिर वह निष्कामभावसे ही साधन करता है, कामनाओंमें नहीं फंसता।

तत्त्वसे दोनों मार्गोंको जानने का फल ।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

वेदेषु, यज्ञेषु, तपःसु, च, एव, दानेषु, यत्, पुण्यफलम्, प्रदिष्टम्, अत्येति, तत्, सर्वम्, इदम्, विदित्वा, योगी, परम्, स्थानम्, उपैति, च, आद्यम् ॥२८॥

क्योंकि—

योगी	= योगी पुरुष	प्रदिष्टम्	= कहा है
इदम्	= इस रहस्यको	तत्	= उस
विदित्वा	= तत्त्वसे जानकर	सर्वम्	= सबको
वेदेषु	= वेदोंके पढ़नेमें	एव	= निःसन्देह
च	= तथा	अत्येति	= उल्लङ्घन कर जाता है
यज्ञेषु	= यज्ञ	च	= और
तपःसु	= तप (और)	आद्यम्	= सनातन
दानेषु	= दानादिकोंके करनेमें	परम्	= परम
यत्	= जो	स्थानम्	= पदको
पुण्यफलम्	= पुण्यफल	उपैति	= प्राप्त होता है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ नवमोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ६ तक प्रभावसहित ज्ञानका विषय। (७—१०) जगत्‌की उत्पत्तिका विषय। (११—१५) भगवान्‌का तिरस्कार करनेवाले आसुरी प्रकृतिवालोंकी निन्दा और दैवी प्रकृतिवालोंके भगवद्भजनका प्रकार। (१६—१९) सर्वात्मरूपसे प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन। (२०—२५) सकाम और निष्काम उपासनाका फल। (२६—३४) निष्काम भगवद्भक्तिकी महिमा।

श्रीभगवानुवाच

विज्ञानसहित ज्ञानका कथन करनेकी प्रतिज्ञा।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥१॥

इदम्, तु, ते, गुह्यतमम्, प्रवक्ष्यामि, अनसूयवे,
ज्ञानम्, विज्ञानसहितम्, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात्॥ १॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन—

ते	= तुझ	प्रवक्ष्यामि	= कहूंगा
अनसूयवे	= दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये	तु	= कि
इदम्	= इस	यत्	= जिसको
गुह्यतमम्	= परम गोपनीय	ज्ञात्वा	= जानकर (तूं)
ज्ञानम्	= ज्ञानको	अशुभात्	= दुःखरूप संसारसे
विज्ञानसहितम्	= रहस्यके सहित	मोक्ष्यसे	= मुक्त हो जायगा

विज्ञानसहित ज्ञानकी महिमा ।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

राजविद्या, राजगुह्यम्, पवित्रम्, इदम्, उत्तमम्,
प्रत्यक्षावगमम्, धर्म्यम्, सुसुखम्, कर्तुम्, अव्ययम् ॥ २ ॥

इदम् = यह (ज्ञान)	प्रत्यक्षावगमम् = प्रत्यक्ष फलवाला (और)
राजविद्या = सब विद्याओंका राजा (तथा)	धर्म्यम् = धर्मयुक्त है
राजगुह्यम् = सब गोपनीयोंका भी राजा (एवं)	कर्तुम् = साधन करनेको
पवित्रम् = अति पवित्र	सुसुखम् = बड़ा सुगम (और)
उत्तमम् = उत्तम	अव्ययम् = अविनाशी है

विज्ञानसहित ज्ञानमें श्रद्धारहित मनुष्योंको जन्म-मृत्युकी प्राप्ति ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

अश्रद्दधानाः, पुरुषाः, धर्मस्य, अस्य, परंतप,
अप्राप्य, माम्, निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

और–

परंतप = हे परंतप	माम् = मेरेको
अस्य = इस (तत्त्व ज्ञानरूप)	अप्राप्य = न प्राप्त होकर
धर्मस्य = धर्ममें	मृत्युसंसारवर्त्मनि = मृत्युरूप संसारचक्रमें
अश्रद्दधानाः = श्रद्धारहित	निवर्तन्ते = भ्रमण करते हैं
पुरुषाः = पुरुष	

प्रभावसहित भगवान्‌के सर्वव्यापी स्वरूपका कथन ।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना, मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः ॥ ४ ॥

और हे अर्जुन—

मया	= मुझ	सर्वभूतानि	= सब भूत
अव्यक्तमूर्तिना	= सच्चिदानन्दघन परमात्मासे	मत्स्थानि	= मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं (इसलिये वास्तवमें)
इदम्	= यह	अहम्	= मैं
सर्वम्	= सब	तेषु	= उनमें
जगत्	= जगत् (जलसे बर्फके सदृश)	न अवस्थितः	= स्थित नहीं हूं
ततम्	= परिपूर्ण है		
च	= और		

["] न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

न, च, मत्स्थानि, भूतानि, पश्य, मे, योगम, ऐश्वरम्, भूतभृत्, न, च, भूतस्थः, मम, आत्मा, भूतभावनः ॥ ५ ॥

च	= और (वे)	योगम्	= योगमाया (और)
भूतानि	= सब भूत	ऐश्वरम्	= प्रभावको
मत्स्थानि	= मेरेमें स्थित	पश्य	= देख (कि)
न	= नहीं हैं (किन्तु)	भूतभृत्	= भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला
मे	= मेरी		

(और)	मम = मेरा
भूतभावनः = { भूतोंको उत्पन्न करनेवाला	आत्मा = आत्मा (वास्तवमें)
	भूतस्थः = भूतोंमें स्थित
च = भी	न = नहीं है

आकाशके दृष्टान्त से भगवान्के सर्वव्यापी स्वरूपका कथन ।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

यथा, आकाशस्थितः, नित्यम्, वायुः, सर्वत्रगः, महान्,
तथा, सर्वाणि, भूतानि, मत्स्थानि, इति, उपधारय ॥ ६ ॥

क्योंकि—

यथा = जैसे (आकाशसे उत्पन्न हुआ)	तथा = वैसे ही (मेरे संकल्पद्वारा उत्पत्तिवाले होनेसे)
सर्वत्रगः = सर्वत्र विचरनेवाला	
महान् = महान्	सर्वाणि = संपूर्ण
वायुः = वायु	भूतानि = भूत
नित्यम् = सदा ही	मत्स्थानि = मेरेमें स्थित हैं
आकाश-स्थितः = { आकाशमें स्थित है	इति = ऐसे
	उपधारय = जान

सर्वभूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयका कथन ।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्,
कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम् ॥ ७ ॥

और—

कौन्तेय = हे अर्जुन	सर्वभूतानि = सब भूत
कल्पक्षये = कल्पके अन्तमें	मामिकाम् = मेरी

प्रकृतिम्	= प्रकृतिको	कल्पादौ	= कल्पके आदिमें
यान्ति	= प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लय होते हैं	तानि	= उनको
	(और)	अहम्	= मैं
		पुनः	= फिर
		विसृजामि	= रचता हूं

सर्वभूतोंकी पुनः पुनः उत्पत्तिका कथन

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

प्रकृतिम्, स्वाम्, अवष्टभ्य, विसृजामि, पुनः, पुनः,
भूतग्रामम्, इमम्, कृत्स्नम्, अवशम्, प्रकृतेः, वशात् ॥८॥

कैसे कि—

स्वाम्	= अपनी	इमम्	= इस
प्रकृतिम्	= त्रिगुणमयी मायाको	कृत्स्नम्	= संपूर्ण
अवष्टभ्य	= अङ्गीकार करके	भूतग्रामम्	= भूतसमुदायको
प्रकृतेः	= स्वभावके	पुनः पुनः	= बारम्बार (उनके कर्मोंके अनुसार)
वशात्	= वशसे		
अवशम्	= परतन्त्र हुए	विसृजामि	= रचता हूं

भगवान्को कर्म न बांधनेमें हेतुका कथन।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति धनंजय,
उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु ॥ ९ ॥

धनंजय	= हे अर्जुन	कर्मसु	= कर्मोंमें
तेषु	= उन	असक्तम्	= आसक्तिरहित

च	= और	तानि	= वे
उदासीनवत्	= उदासीनके सदृश*	कर्माणि	= कर्म
आसीनम्	= स्थित हुए	न	= नहीं
माम्	= मुझ परमात्माको	निबध्नन्ति	= बांधते हैं

भगवान्के सकाशसे प्रकृति-द्वारा चराचर जगत्की उत्पत्ति।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

मया, अध्यक्षेण, प्रकृतिः, सूयते, सचराचरम्, हेतुना, अनेन, कौन्तेय, जगत्, विपरिवर्तते ॥१०॥

और-

कौन्तेय	= हे अर्जुन	सूयते	= रचती है (और)
मया	= मुझ	अनेन	= इस (ऊपर कहे हुए)
अध्यक्षेण	= अधिष्ठाताके सकाशसे (यह मेरी)	हेतुना	= हेतुसे (ही)
प्रकृतिः	= माया	जगत्	= यह संसार
सचराचरम्	= चराचरसहित सर्व जगत्को	विपरिवर्तते	= आवागमन-रूप चक्रमें घूमता है

भगवान्का तिरस्कार करनेवालोंकी निन्दा।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

अवजानन्ति, माम्, मूढाः, मानुषीम्, तनुम्, आश्रितम्, परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, भूतमहेश्वरम् ॥११॥

---

* जिसके संपूर्ण कार्य कर्तृत्वभावके बिना अपने आप सत्तामात्रसे ही होते हैं, उसका नाम उदासीनके सदृश है।

ऐसा होनेपर भी—

भूत-महेश्वरम्	= संपूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप	मानुषीम्	= मनुष्यका
मम	= मेरे	तनुम्	= शरीर
परम्	= परम	आश्रितम्	= धारण करनेवाले
भावम्	= भावको*	माम्	= मुझ परमात्माको
अजानन्तः	= न जाननेवाले		
मूढाः	= मूढलोग	अवजानन्ति	= तुच्छ समझते हैं

अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुएको साधारण मनुष्य मानते हैं।

राक्षसी और आसुरी प्रकृतिवालोंके लक्षण।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

मोघाशाः, मोघकर्माणः, मोघज्ञानाः, विचेतसः, राक्षसीम्, आसुरीम्, च, एव, प्रकृतिम्, मोहिनीम्, श्रिताः॥१२॥

जो कि—

मोघाशाः	= वृथा आशा	आसुरीम्	= असुरोंके (जैसे)
मोघ-कर्माणः	= वृथा कर्म (और)	मोहिनीम्	= मोहित करनेवाले(तामसी)
मोघज्ञानाः	= वृथा ज्ञानवाले	प्रकृतिम्	= स्वभावको†
विचेतसः	= अज्ञानीजन	एव	= ही
राक्षसीम्	= राक्षसोंके	श्रिताः	= धारण किये हुए हैं
च	= और		

* गीता अध्याय ७ श्लोक २४ में देखना चाहिये।

† जिसको आसुरी संपदाके नामसे विस्तारपूर्वक भगवान्‌ने गीता अध्याय १६ श्लोक ४ तथा श्लोक ७से २१ तक कहा है।

दैवी प्रकृतिवाले महात्माओं की प्रशंसा ।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १ ३॥

महात्मानः, तु, माम्, पार्थ, दैवीम्, प्रकृतिम्, आश्रिताः, भजन्ति, अनन्यमनसः, ज्ञात्वा, भूतादिम्, अव्ययम् ॥ १ ३॥

तु = परन्तु
पार्थ = हे कुन्तीपुत्र
दैवीम् = दैवी
प्रकृतिम् = प्रकृतिके*
आश्रिताः = आश्रित हुए
महात्मानः = जो महात्मा-जन हैं (वे तो)
माम् = मेरेको
भूतादिम् = सब भूतोंका सनातन कारण
(और)
अव्ययम् = नाशरहित अक्षरस्वरूप
ज्ञात्वा = जानकर
अनन्य-मनसः = अनन्य मनसे युक्त
(सन्तः) = हुए
भजन्ति = निरन्तर भजते हैं

उपासनाकी विधि ।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १ ४॥

सततम्, कीर्तयन्तः, माम्, यतन्तः, च, दृढव्रताः, नमस्यन्तः, च, माम्, भक्त्या, नित्ययुक्ताः, उपासते ॥ १ ४॥

और वे—

दृढव्रताः = दृढ निश्चयवाले भक्तजन
सततम् = निरन्तर
कीर्तयन्तः = मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए

* इसका विस्तारपूर्वक वर्णन गीता अध्याय १६ श्लोक १-२-३ में देखना चाहिये ।

च	=तथा (मेरी प्राप्तिके लिये)	नित्ययुक्ताः	=सदा मेरे ध्यानमें युक्त हुए
यतन्तः	=यत्न करते हुए		
च	=और	भक्त्या	=अनन्य भक्तिसे
माम्	=मेरेको	माम्	=मुझे
नमस्यन्तः	=बारम्बार प्रणाम करते हुए	उपासते	=उपासते हैं

उपासनाके पृथक्-पृथक् भेद। ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

ज्ञानयज्ञेन, च, अपि, अन्ये, यजन्तः, माम्, उपासते,
एकत्वेन, पृथक्त्वेन, बहुधा, विश्वतोमुखम् ॥१५॥

उनमें कोई तो—

माम्	=मुझ	(उपासते)	=उपासते हैं (और)
विश्वतोमुखम्	=विराट्स्वरूप परमात्माको	अन्ये	=दूसरे
ज्ञानयज्ञेन	=ज्ञानयज्ञके द्वारा	पृथक्त्वेन	=पृथक्त्व भावसे अर्थात् स्वामी-सेवकभावसे
यजन्तः	=पूजन करते हुए	च	=और (कोई-कोई)
एकत्वेन	=एकत्वभावसे अर्थात् जो कुछ है सब वासुदेव ही है इस भावसे	बहुधा	=बहुत प्रकारसे
		अपि	=भी
		उपासते	=उपासते हैं

यज्ञरूपसे भगवान्के स्वरूपका कथन। अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

अहम्, क्रतुः, अहम्, यज्ञः, स्वधा, अहम्, अहम्, औषधम्, मन्त्रः, अहम्, अहम्, एव, आज्यम्, अहम्, अग्निः, अहम्, हुतम्॥

क्योंकि—

क्रतुः = क्रतु अर्थात् श्रौत कर्म	अहम् = मैं हूं (एवं)
अहम् = मैं हूं	मन्त्रः = मन्त्र
यज्ञः = यज्ञ अर्थात् पञ्चमहायज्ञादिक स्मार्तकर्म	अहम् = मैं हूं
	आज्यम् = घृत
अहम् = मैं हूं	अहम् = मैं हूं
स्वधा = स्वधा अर्थात् पितरोंके निमित्त दिया जानेवाला अन्न	अग्निः = अग्नि
	अहम् = मैं हूं (और)
	हुतम् = हवनरूप क्रिया (भी)
अहम् = मैं हूं	
औषधम् = ओषधि अर्थात् सब वनस्पतियां	अहम् = मैं
	एव = ही हूं

पिता-मातादिरूपसे भगवान्के स्वरूपका कथन।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥

पिता, अहम्, अस्य, जगतः, माता, धाता, पितामहः, वेद्यम्, पवित्रम्, ओंकारः, ऋक्, साम, यजुः, एव, च ॥१७॥

और हे अर्जुन ! मैं ही—

अस्य = इस	पिता = पिता
जगतः = संपूर्ण जगत्का	माता = माता (और)
धाता = धाता अर्थात् धारण पोषण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला (तथा)	पितामहः = पितामह हूं
	च = और
	वेद्यम् = जानने योग्य*
	पवित्रम् = पवित्र

* गीता अध्याय १३ श्लोक १२ से लेकर १७ तकमें देखना चाहिये।

ओंकारः = ओंकार (तथा)	यजुः = यजुर्वेद (भी)
ऋक् = ऋग्वेद	अहम् = मैं
साम = सामवेद (और)	एव = ही हूं

प्रभावसहित भगवान्के सर्व-व्यापी स्वरूपका कथन।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

गतिः, भर्ता, प्रभुः, साक्षी, निवासः, शरणम्, सुहृत्, प्रभवः, प्रलयः, स्थानम्, निधानम्, बीजम्, अव्ययम् ॥१८॥

और हे अर्जुन–

गतिः = प्राप्त होने योग्य (तथा)	सुहृत् = प्रति उपकार न चाहकर हित करनेवाला (और)
भर्ता = भरणपोषण करनेवाला	
प्रभुः = सबका स्वामी	प्रभवः = उत्पत्ति
साक्षी = शुभाशुभका देखनेवाला	प्रलयः = प्रलयरूप (तथा)
	स्थानम् = सबका आधार
निवासः = सबका वासस्थान (और)	निधानम् = निधान* (और)
	अव्ययम् = अविनाशी
शरणम् = शरण लेने योग्य (तथा)	बीजम् = कारण (भी)
	(अहम् एव) = मैं ही हूं

["] **तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।**
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च, अमृतम्, च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन ॥१९॥

---

* प्रलयकालमें संपूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं उसका नाम निधान है।

अहम्	= मैं (ही)	अहम्	= मैं (ही)
तपामि	= { सूर्यरूप हुआ तपता हूं (तथा)	अमृतम्	= अमृत
		च	= और
वर्षम्	= वर्षाको	मृत्युः	= मृत्यु एवं
निगृह्णामि	= { आकर्षण करता हूं	सत्	= सत्
		च	= और
च	= और	असत्	= असत् (भी) (सब कुछ)
उत्सृजामि	= वर्षाता हूं		
च	= और	अहम्	= मैं
अर्जुन	= हे अर्जुन	एव	= ही हूं

सकाम उपासनाका फल ।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्ट्वा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते, ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान् ॥ २० ॥

परन्तु जो-

त्रैविद्याः	= { तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकाम कर्मोंको करनेवाले (और)	सोमपाः	= { सोमरसको पीनेवाले (एवं)
		पूतपापाः	= { पापोंसे पवित्र हुए पुरुष*

* यहाँ स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक देवऋणरूप पापसे पवित्र होना समझना चाहिये ।

मास् = मेरेको
यज्ञैः = यज्ञोंके द्वारा
इष्ट्वा = पूजकर
स्वर्गतिम् = स्वर्गकी प्राप्तिको
प्रार्थयन्ते = चाहते हैं
ते = वे पुरुष
पुण्यम् = { अपने पुण्योंके फलरूप
सुरेन्द्र-लोकम् } = इन्द्रलोकको
आसाद्य = प्राप्त होकर
दिवि = स्वर्गमें
दिव्यान् = दिव्य
देव-भोगान् = { देवताओंके भोगोंको
अश्नन्ति = भोगते हैं

["]

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति, एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते ॥ २१ ॥

और—

ते = वे
तम् = उस
विशालम् = विशाल
स्वर्गलोकम् = स्वर्गलोकको
भुक्त्वा = भोगकर
पुण्ये क्षीणे = { पुण्य क्षीण होनेपर
मर्त्यलोकम् = मृत्युलोकको
विशन्ति = प्राप्त होते हैं
एवम् = इस प्रकार (स्वर्गके साधनरूप)
त्रयीधर्मम् = { तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मके
अनुप्रपन्नाः = शरण हुए (और)

कामकामाः	= भोगोंकी कामनावाले पुरुष	गतागतम्	= बारम्बार जाने-आनेको
		लभन्ते	= प्राप्त होते हैं

अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेसे मृत्युलोकमें आते हैं ।

निष्काम उपासनाका फल ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

अनन्याः, चिन्तयन्तः, माम्, ये, जनाः, पर्युपासते,
तेषाम्, नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमम्, वहामि, अहम् ॥२२॥

और—

ये	= जो	पर्युपासते	= निष्कामभावसे भजते हैं
अनन्याः	= अनन्यभावसे मेरेमें स्थित हुए	तेषाम्	= उन
जनाः	= भक्तजन	नित्याभियुक्तानाम्	= नित्य एकीभावसे मेरेमें स्थितिवाले पुरुषोंका
माम्	= मुझ परमेश्वरको		
चिन्तयन्तः	= निरन्तर चिन्तन करते हुए	योगक्षेमम्	= योगक्षेम*
		अहम्	= मैं स्वयम्
		वहामि	= प्राप्त कर देता हूं

अन्य देवताओंकी पूजासे भी अविधिपूर्वक भगवत् पूजन होनेका निरूपण ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

ये, अपि, अन्यदेवताः, भक्ताः, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः,
ते, अपि, माम्, एव, कौन्तेय, यजन्ति, अविधिपूर्वकम् ॥२३॥

* भगवत्के स्वरूपकी प्राप्तिका नाम योग है और भगवत्प्राप्तिके निमित्त किये हुए साधनकी रक्षाका नाम क्षेम है ।

और—

कौन्तेय	=हे अर्जुन	अपि	=भी
अपि	=यद्यपि	माम्	=मेरेको
श्रद्धया	=श्रद्धासे	एव	=ही
अन्विताः	=युक्त हुए	यजन्ति	=पूजते हैं (किन्तु उनका वह पूजना)
ये	=जो	अविधि-पूर्वकम्	=अविधिपूर्वक है अर्थात् अज्ञान-पूर्वक है
भक्ताः	=सकामी भक्त		
अन्यदेवताः	=दूसरे देवताओंको		
यजन्ते	=पूजते हैं		
ते	=वे		

भगवान्‌को तत्त्व-से न जानने-वालोंका पतन।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४॥

अहम्, हि, सर्वयज्ञानाम्, भोक्ता, च, प्रभुः, एव, च, न, तु, माम्, अभिजानन्ति, तत्त्वेन, अतः, च्यवन्ति, ते॥२४॥

हि	=क्योंकि	माम्	=मुझ अधियज्ञ-स्वरूप परमेश्वरको
सर्वयज्ञानाम्	=संपूर्ण यज्ञोंका	तत्त्वेन	=तत्त्वसे
भोक्ता	=भोक्ता	न	=नहीं
च	=और	अभिजानन्ति	=जानते हैं
प्रभुः	=स्वामी	अतः	=इसीसे
च	=भी	च्यवन्ति	=गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं
अहम्	=मैं		
एव	=ही (हूं)		
तु	=परन्तु		
ते	=वे		

उपासनाके अनुसार फलप्राप्तिका कथन ।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

यान्ति, देवव्रताः, देवान्, पितॄन्, यान्ति, पितृव्रताः,
भूतानि, यान्ति, भूतेज्याः, यान्ति, मद्याजिनः, अपि, माम् ॥२५॥

कारण यह नियम है कि—

देवव्रताः	= देवताओंको पूजनेवाले	भूतेज्याः	= भूतोंको पूजनेवाले
देवान्	= देवताओंको	भूतानि	= भूतोंको
यान्ति	= प्राप्त होते हैं	यान्ति	= प्राप्त होते हैं (और)
पितृव्रताः	= पितरोंको पूजनेवाले	मद्याजिनः	= मेरे भक्त
पितॄन्	= पितरोंको	माम्	= मेरेको
यान्ति	= प्राप्त होते हैं	अपि	= ही
		यान्ति	= प्राप्त होते हैं

इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता ।*

भक्तिपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादि को खानेके लिये भगवान् की प्रतिज्ञा ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम्, यः, मे, भक्त्या, प्रयच्छति,
तत्, अहम्, भक्त्युपहृतम्, अश्नामि, प्रयतात्मनः ॥२६॥

तथा हे अर्जुन ! मेरे पूजनमें यह सुगमता भी है कि—

पत्रम्	= पत्र	तोयम्	= जल (इत्यादि)
पुष्पम्	= पुष्प	यः	= जो (कोई भक्त)
फलम्	= फल	मे	= मेरे लिये

* गीता अध्याय ८ श्लोक १६ में देखना चाहिये ।

भक्त्या	=प्रेमसे	तत्	=वह (पत्र-पुष्पादिक)
प्रयच्छति	=अर्पण करता है	अहम्	=मैं (सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित)
प्रयतात्मनः	=उस शुद्ध-बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका		
भक्त्युपहृतम्	=प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ	अश्नामि	=खाता हूं

सर्वकर्म भगवान्‌के अर्पण करनेकी आज्ञा ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

यत्, करोषि, यत्, अश्नासि, यत्, जुहोषि, ददासि, यत्, यत्, तपस्यसि, कौन्तेय, तत्, कुरुष्व, मदर्पणम् ॥२७॥

इसलिये—

कौन्तेय	=हे अर्जुन (तूं)	ददासि	=दान देता है
यत्	=जो (कुछ)	यत्	=जो (कुछ)
करोषि	=कर्म करता है	तपस्यसि	=स्वधर्माचरणरूप तप करता है
यत्	=जो (कुछ)		
अश्नासि	=खाता है	तत्	=वह (सब)
यत्	=जो (कुछ)	मदर्पणम्	=मेरे अर्पण
जुहोषि	=हवन करता है	कुरुष्व	=कर
यत्	=जो (कुछ)		

सर्वकर्म भगवान्‌के अर्पण करनेसे परमेश्वरकी प्राप्ति

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

शुभाशुभफलैः, एवम्, मोक्ष्यसे, कर्मबन्धनैः, संन्यासयोगयुक्तात्मा, विमुक्तः, माम्, उपैष्यसि ॥२८॥

एवम्	= इस प्रकार	कर्मबन्धनैः	= कर्मबन्धनसे
संन्यासयोगयुक्तात्मा	= कर्मोंको मेरे अर्पण करनेरूप संन्यासयोगसे युक्त हुए मनवाला (तूं)	मोक्ष्यसे	= मुक्त हो जायगा
			(और) उनसे
		विमुक्तः	= मुक्त हुआ
		माम्	= मेरेको (ही)
शुभाशुभफलैः	= शुभाशुभ फलरूप	उपैष्यसि	= प्राप्त होवेगा

भगवान्के समत्वभाव का कथन और भजनेवालों की महिमा।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

समः, अहम्, सर्वभूतेषु, न, मे, द्वेष्यः, अस्ति, न, प्रियः,
ये, भजन्ति, तु, माम्, भक्त्या, मयि, ते, तेषु, च, अपि, अहम्॥२९॥

यद्यपि—

अहम्	= मैं	प्रियः	= प्रिय है
सर्वभूतेषु	= सब भूतोंमें	तु	= परन्तु
समः	= सम भावसे व्यापक हूं	ये	= जो (भक्त)
		माम्	= मेरेको
न	= न (कोई)	भक्त्या	= प्रेमसे
मे	= मेरा	भजन्ति	= भजते हैं
द्वेष्यः	= अप्रिय	ते	= वे
अस्ति	= है (और)	मयि	= मेरेमें
न	= न	च	= और

अहम्	= मैं	तेषु	= उनमें
अपि	= भी		(प्रत्यक्ष प्रकट हूं*)

निरन्तर भगवद्-भजनसे महा-पापीका भी उद्धार होनेका कथन ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

अपि, चेत्, सुदुराचारः, भजते, माम्, अनन्यभाक्, साधुः, एव, सः, मन्तव्यः, सम्यक्, व्यवसितः, हि, सः ॥३०॥

तथा और भी मेरी भक्तिका प्रभाव सुन–

चेत्	= यदि (कोई)	सः	= वह
सुदुराचारः	= अतिशय दुराचारी	साधुः	= साधु
		एव	= ही
अपि	= भी	मन्तव्यः	= माननेयोग्य है
अनन्य-भाक्	= अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ	हि	= क्योंकि
		सः	= वह
माम्	= मेरेको (निरन्तर)	सम्यक् व्यवसितः	= यथार्थ निश्चय-वाला है
भजते	= भजता है		

अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है ।

["]

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

क्षिप्रम्, भवति, धर्मात्मा, शश्वत्, शान्तिम्, निगच्छति, कौन्तेय, प्रति, जानीहि, न, मे, भक्तः, प्रणश्यति ॥३१॥

* जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्तःकरणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होता है ।

इसलिये वह—

क्षिप्रम्	= शीघ्र ही	प्रति	= { निश्चयपूर्वक / सत्य
धर्मात्मा	= धर्मात्मा		
भवति	= हो जाता है (और)	जानीहि	= जान (कि)
शश्वत्	= सदा रहनेवाली	मे	= मेरा
शान्तिम्	= परमशान्तिको	भक्तः	= भक्त
निगच्छति	= प्राप्त होता है	न प्रणश्यति	= नष्ट नहीं होता
कौन्तेय	= हे अर्जुन (तू)		

भगवान्के शरण होनेसे स्त्री, वैश्य, शूद्र और नीच योनिवालोंका भी कल्याण।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

माम्, हि, पार्थ, व्यपाश्रित्य, ये, अपि, स्युः, पापयोनयः,
स्त्रियः, वैश्याः, तथा, शूद्राः, ते, अपि, यान्ति, पराम्, गतिम् ॥ ३२ ॥

हि	= क्योंकि	स्युः	= होवें
पार्थ	= हे अर्जुन	ते	= वे
स्त्रियः	= स्त्री	अपि	= भी
वैश्याः	= वैश्य (और)	माम्	= मेरे
शूद्राः	= शूद्रादिक	व्यपाश्रित्य	= शरण होकर (तो)
तथा	= तथा		
पापयोनयः	= पापयोनिवाले	पराम्	= परम
अपि	= भी	गतिम्	= गतिको (ही)
ये	= जो कोई	यान्ति	= प्राप्त होते हैं

ब्राह्मण और राजर्षि भक्तोंकी प्रशंसा और भगवत्-भजनके लिये आज्ञा।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

किम्, पुनः, ब्राह्मणाः, पुण्याः, भक्ताः, राजर्षयः, तथा,
अनित्यम्, असुखम्, लोकम्, इमम्, प्राप्य, भजस्व, माम् ॥ ३३ ॥

पुनः	= फिर	(यान्ति)	= प्राप्त होते हैं
किम्	= क्या	(अतः)	= इसलिये (तूं)
(वक्तव्यम्)	= कहना है (कि)	असुखम्	= सुखरहित (और)
पुण्याः	= पुण्यशील	अनित्यम्	= क्षणभंगुर
ब्राह्मणाः	= ब्राह्मणजन	इमम्	= इस
तथा	= तथा	लोकम्	= मनुष्यशरीरको
राजर्षयः	= राजऋषि	प्राप्य	= प्राप्त होकर
भक्ताः	= भक्तजन (परमगतिको)	माम् भजस्व	= (निरन्तर) मेरा ही भजन कर

अर्थात् मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है, परन्तु है नाशवान् और सुखरहित, इसलिये कालका भरोसा न करके तथा अज्ञान-से सुखरूप भासनेवाले विषयभोगोंमें न फंसकर निरन्तर मेरा ही भजन कर ।

भगवान्की भक्ति करनेके लिये आज्ञा और उसका फल ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

मन्मनाः भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव, एष्यसि, युक्त्वा, एवम्, आत्मानम्, मत्परायणः ॥३४॥

मन्मनाः = { केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यप्रेमसे नित्य-निरन्तर अचल मनवाला

भव = हो (और)

मद्भक्तः (भव) = { मुझ परमेश्वरको ही श्रद्धाप्रेमसहित निष्कामभावसे नाम-गुण और प्रभावके श्रवण कीर्तन मनन और पठनपाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो (तथा)

मद्याजी (भव) = मेरा (शङ्ख चक्र गदा पद्म और किरीट-कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर वनमाला कौस्तुभमणि-धारी विष्णुका) मन वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेम-से विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो (और)

माम् = मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति बल ऐश्वर्य माधुर्य गम्भीरता उदारता वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको

नमस्कुरु = विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर

एवम् = इस प्रकार

मत्परायणः = मेरे शरण हुआ (तूं)

आत्मानम् = आत्माको

युक्त्वा = मेरेमें एकीभाव करके

माम् = मेरेको

एव = ही

एष्यसि = प्राप्त होवेगा

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ दशमोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ७ तक भगवान्‌की विभूति और योगशक्तिका कथन तथा उनके जाननेका फल। (८—११) फल और प्रभावसहित भक्तियोगका कथन। (१२—१८) अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति एवं विभूति और योगशक्तिको कहनेके लिये प्रार्थना। (१९—४२) भगवान्‌द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका कथन।

श्रीभगवानुवाच

परम प्रभावयुक्त वचन कहनेके लिये भगवान्‌की प्रतिज्ञा।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

भूयः, एव, महाबाहो, शृणु, मे, परमम्, वचः,
यत्, ते, अहम्, प्रीयमाणाय, वक्ष्यामि, हितकाम्यया ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले—

महाबाहो = हे महाबाहो
भूयः = फिर
एव = भी
मे = मेरे
परमम् = परम (रहस्य और प्रभावयुक्त)
वचः = वचन
शृणु = श्रवण कर

यत् = जो (कि)
अहम् = मैं
ते = तुझ
प्रीयमाणाय = अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये
हितकाम्यया = हितकी इच्छासे
वक्ष्यामि = कहूंगा

सबका आदि होनेसे मेरी उत्पत्ति को देवादि भी नहीं जानते इस विषयमें भगवान् का कथन।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः ॥ २ ॥

हे अर्जुन—

मे =मेरी
प्रभवम् =उत्पत्तिको अर्थात् विभूति-सहित लीलासे प्रकट होनेको
न =न
सुरगणाः =देवतालोग
(विदुः) =जानते हैं (और)
न =न
महर्षयः =महर्षिजन (ही)
विदुः =जानते हैं
हि =क्योंकि
अहम् =मैं
सर्वशः =सब प्रकारसे
देवानाम् =देवताओंका
च =और
महर्षीणाम् =महर्षियोंका (भी)
आदिः =आदि कारण हूं

प्रभावसहित परमेश्वर को जाननेका फल।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्,
असंमूढः, सः, मर्त्येषु, सर्वपापैः, प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

और—

यः =जो
माम् =मेरेको
अजम् =अजन्मा अर्थात् वास्तवमें जन्म-रहित (और)
अनादिम् =अनादि*
च =तथा
लोकमहेश्वरम् =लोकोंका महान् ईश्वर

* अनादि उसको कहते हैं कि जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे।

वेत्ति	= तत्त्वसे जानता है	असंमूढः	= ज्ञानवान् (पुरुष)
सः	= वह	सर्वपापैः	= संपूर्ण पापोंसे
मर्त्येषु	= मनुष्योंमें	प्रमुच्यते	= मुक्त हो जाता है

भगवान्से बुद्धि आदि भावोंकी उत्पत्तिका कथन ।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥

बुद्धिः, ज्ञानम्, असंमोहः, क्षमा, सत्यम्, दमः, शमः,
सुखम्, दुःखम्, भवः, अभावः, भयम्, च, अभयम्, एव, च॥ ४ ॥

और हे अर्जुन–

बुद्धिः	= निश्चय करनेकी शक्ति (एवं)		(तथा)
		सुखम्	= सुख
ज्ञानम्	= तत्त्वज्ञान (और)	दुःखम्	= दुःख
असंमोहः	= अमूढता	भवः	= उत्पत्ति
क्षमा	= क्षमा	च	= और
सत्यम्	= सत्य (तथा)	अभावः	= प्रलय (एवं)
दमः	= इन्द्रियोंका वशमें करना (और)	भयम्	= भय
		च	= और
		अभयम्	= अभय
शमः	= मनका निग्रह	एव	= भी

["]

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अहिंसा, समता, तुष्टिः, तपः, दानम्, यशः, अयशः,
भवन्ति, भावाः, भूतानाम्, मत्तः, एव, पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

तथा–

अहिंसा	= अहिंसा	समता	= समता

तुष्टिः	=संतोष	भूतानाम्	=प्राणियोंके
तपः	=तप*	पृथग्विधाः	=नाना प्रकारके
दानम्	=दान	भावाः	=भाव
यशः	=कीर्ति (और)	मत्तः	=मेरेसे
अयशः	=अपकीर्ति	एव	=ही
(एवम्)	=ऐसे (यह)	भवन्ति	=होते हैं

भगवान्‌के संकल्पसे सप्तर्षि और सनकादिकोंकी उत्पत्तिका कथन।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ ६॥

महर्षयः, सप्त, पूर्वे, चत्वारः, मनवः, तथा, मद्भावाः, मानसाः, जाताः, येषाम्, लोके, इमाः, प्रजाः॥ ६॥

और हे अर्जुन—

सप्त	=सात (तो)	मद्भावाः	=मेरेमें भाववाले (सबके सब)
महर्षयः	=महर्षिजन (और)		
चत्वारः	=चार (उनसे भी)	मानसाः जाताः	=मेरे संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं (कि)
पूर्वे	=पूर्वमें होनेवाले (सनकादि)		
तथा	=तथा	येषाम्	=जिनकी
मनवः	=स्वायंभुव आदि चौदह मनु	लोके	=संसारमें
		इमाः	=यह संपूर्ण
(एते)	=यह	प्रजाः	=प्रजा है

भगवान्‌की विभूति और योगको तत्त्वसे जाननेका फल।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥ ७॥

* स्वधर्मके आचरणसे इन्द्रियादिको तपाकर शुद्ध करनेका नाम तप है।

एताम्, विभूतिम्, योगम्, च, मम, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
सः, अविकम्पेन, योगेन, युज्यते, न, अत्र, संशयः ॥ ७ ॥

और–

यः =जो (पुरुष)
एताम् =इस
मम =मेरी
विभूतिम् =परमैश्वर्यरूप विभूतिको
च =और
योगम् =योगशक्तिको
तत्त्वतः =तत्त्वसे
वेत्ति =जानता है*
सः =वह
(पुरुष)
अविकम्पेन =निश्चल
योगेन =ध्यानयोगद्वारा
(मेरेमें ही)
युज्यते =एकीभावसे स्थित होता है
अत्र =इसमें (कुछ भी)
संशयः =संशय
न =नहीं
(अस्ति) =है

भगवान्‌के प्रभाव को समझकर भजनेवालों की प्रशंसा।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

अहम्, सर्वस्य, प्रभवः, मत्तः, सर्वम्, प्रवर्तते,
इति, मत्वा, भजन्ते, माम्, बुधाः, भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

अहम् =मैं वासुदेव ही
सर्वस्य =संपूर्ण जगत्‌की
प्रभवः =उत्पत्तिका कारण हूं
(और)
मत्तः =मेरेसे ही
सर्वम् =सब जगत्
प्रवर्तते =चेष्टा करता है
इति =इस प्रकार

---

* जो कुछ दृश्यमात्र संसार है सो सब भगवान्‌की माया है और एक वासुदेव भगवान् ही सर्वत्र परिपूर्ण है यह जानना ही तत्त्वसे जानना है

मत्वा	=तत्त्वसे समझकर	माम्	= मुझ परमेश्वरको (ही)
भाव-समन्विताः	= श्रद्धा और भक्ति-से युक्त हुए		
बुधाः	= बुद्धिमान् भक्त जन	भजन्ते	= निरन्तर भजते हैं

भावुक भक्तोंके लक्षण और उनके साधनका कथन।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ ९॥

मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः, बोधयन्तः, परस्परम्, कथयन्तः, च, माम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, च, रमन्ति, च॥ ९॥

और वे—

मच्चित्ताः	= निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले (और)	च	=तथा (गुण और प्रभावसहित)
मद्गत-प्राणाः	= मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले* (भक्तजन)	माम्	=मेरा
		कथयन्तः	=कथन करते हुए
नित्यम्	=सदा ही (मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा)	च	=ही
		तुष्यन्ति	=संतुष्ट होते हैं
		च	=और (मुझ वासुदेवमें ही)
परस्परम्	=आपसमें		
बोधयन्तः	= मेरे प्रभावको जनाते हुए	रमन्ति	= निरन्तर रमण करते हैं

प्रीतिपूर्वक निरन्तर भजनेका फल।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ १०॥

* मुझ वासुदेवके लिये ही जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है उनका नाम है मद्गतप्राणाः।

तेषाम्, सततयुक्तानाम्, भजताम्, प्रीतिपूर्वकम्, ददामि, बुद्धियोगम्, तम्, येन, माम्, उपयान्ति, ते ॥१०॥

तेषाम्	= उन	तम्	= वह
सतत-युक्तानाम्	= निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए	बुद्धियोगम्	= तत्त्वज्ञानरूप योग
	(और)	ददामि	= देता हूं
प्रीतिपूर्वकम्	= प्रेमपूर्वक	येन	= जिससे
		ते	= वे
भजताम्	= भजनेवाले भक्तोंको (मैं)	माम्	= मेरेको (ही)
		उपयान्ति	= प्राप्त होते हैं

["] तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

तेषाम्, एव, अनुकम्पार्थम्, अहम्, अज्ञानजम्, तमः, नाशयामि, आत्मभावस्थः, ज्ञानदीपेन, भास्वता ॥११॥

और हे अर्जुन—

तेषाम्	= उनके (ऊपर)	अज्ञानजम्	= अज्ञानसे उत्पन्न हुए
अनु-कम्पार्थम्	= अनुग्रह करनेके लिये	तमः	= अन्धकारको
एव	= ही	भास्वता	= प्रकाशमय
अहम्	= मैं स्वयं		
आत्म-भावस्थः	= (उनके) अन्तः-करणमें एकीभाव-से स्थित हुआ	ज्ञानदीपेन	= तत्त्वज्ञानरूप दीपकद्वारा
		नाशयामि	= नष्ट करता हूं

अर्जुन उवाच

अर्जुनद्वारा भगवान् की स्तुति ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

परम्, ब्रह्म, परम्, धाम, पवित्रम्, परमम्, भवान्, पुरुषम्, शाश्वतम्, दिव्यम्, आदिदेवम्, अजम्, विभुम्, आहुः, त्वाम्, ऋषयः, सर्वे, देवर्षिः, नारदः, तथा, असितः, देवलः, व्यासः, स्वयम्, च, एव, ब्रवीषि, मे ॥१२-१३॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला, हे भगवन्—

भवान्	=आप	आदिदेवम्	=देवोंका भी आदिदेव
परम्	=परम		
ब्रह्म	=ब्रह्म (और)	अजम्	=अजन्मा (और)
परम्	=परम		
धाम	=धाम (एवं)	विभुम्	=सर्वव्यापी
परमम्	=परम	आहुः	=कहते हैं
पवित्रम्	=पवित्र (हैं)	तथा	=वैसे ही
(यतः)	=क्योंकि	देवर्षिः	=देवऋषि
त्वाम्	=आपको	नारदः	=नारद (तथा)
सर्वे	=सब	असितः	=असित (और)
ऋषयः	=ऋषिजन	देवलः	=देवलऋषि (तथा)
शाश्वतम्	=सनातन		
दिव्यम्	=दिव्य	व्यासः	=महर्षि व्यास
पुरुषम्	=पुरुष (एवं)	च	=और

स्वयम्	= स्वयम् आप	मे	= मेरे (प्रति)
एव	= भी	ब्रवीषि	= कहते हैं

अर्जुनद्वारा भगवान् के प्रभावका वर्णन ।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

सर्वम्, एतत्, ऋतम्, मन्ये, यत्, माम्, वदसि, केशव, न, हि, ते, भगवन्, व्यक्तिम्, विदुः, देवाः, न, दानवाः ॥१४॥

और—

केशव	= हे केशव	व्यक्तिम्	= लीलामय* स्वरूपको
यत्	= जो (कुछ भी)		
माम्	= मेरे प्रति	न	= न
वदसि	= आप कहते हैं	दानवाः	= दानव
एतत्	= इस	विदुः	= जानते हैं
सर्वम्	= समस्तको (मैं)		(और)
ऋतम्	= सत्य	न	= न
मन्ये	= मानता हूं	देवाः	= देवता
भगवन्	= हे भगवन्	हि	= ही
ते	= आपके	(विदुः)	= जानते हैं

["]

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

स्वयम्, एव, आत्मना, आत्मानम्, वेत्थ, त्वम्, पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवदेव, जगत्पते ॥१५॥

भूतभावन	= हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले	भूतेश	= हे भूतोंके ईश्वर

* गीता अध्याय ४ श्लोक ६ में इसका विस्तार देखना चाहिये ।

देवदेव	= हे देवोंके देव	स्वयम्	= स्वयम्
जगत्पते	= हे जगत्के स्वामी	एव	= ही
		आत्मना	= अपनेसे
पुरुषोत्तम	= हे पुरुषोत्तम	आत्मानम्	= आपको
त्वम्	= आप	वेत्थ	= जानते हैं

भगवान्की विभूतियों को जाननेके लिये अर्जुनकी इच्छा ।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥१६॥

वक्तुम्, अर्हसि, अशेषेण, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः, याभिः, विभूतिभिः, लोकान्, इमान्, त्वम्, व्याप्य, तिष्ठसि ॥१६॥

इसलिये हे भगवन्–

त्वम्	= आप	याभिः	= जिन
हि	= ही (उन)	विभूतिभिः	= विभूतियोंके द्वारा
दिव्याः आत्मविभूतयः	= अपनी दिव्य विभूतियोंको	इमान्	= इन सब
		लोकान्	= लोकोंको
अशेषेण	= संपूर्णतासे	व्याप्य	= व्याप्त करके
वक्तुम्	= कहनेके लिये	तिष्ठसि	= स्थित हैं
अर्हसि	= योग्य हैं (कि)		

भगवत्-चिन्तनके विषयमें अर्जुन-का प्रश्न ।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

कथम्, विद्याम्, अहम्, योगिन्, त्वाम्, सदा परिचिन्तयन्, केषु, केषु, च, भावेषु, चिन्त्यः, असि, भगवन्, मया ॥१७॥

योगिन्	= हे योगेश्वर	कथम्	= किस प्रकार
अहम्	= मैं	सदा	= निरन्तर

परिचिन्तयन्	= चिन्तन करता हुआ	केषु	= किन
		केषु	= किन
त्वाम्	= आपको	भावेषु	= भावोंमें
विद्याम्	= जानूं	मया	= मेरे द्वारा
च	= और	चिन्त्यः	= चिन्तन करने योग्य
भगवन्	= हे भगवन्(आप)	असि	= हैं

योगशक्ति और विभूतियों को विस्तारसे कहनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

विस्तरेण, आत्मनः, योगम्, विभूतिम्, च, जनार्दन,
भूयः, कथय, तृप्तिः, हि, शृण्वतः, न, अस्ति, मे, अमृतम् ॥ १८ ॥

और–

जनार्दन	= हे जनार्दन	हि	= क्योंकि (आपके)
आत्मनः	= अपनी	अमृतम्	= अमृतमय वचनोंको
योगम्	= योगशक्तिको		
च	= और (परमैश्वर्यरूप)	शृण्वतः	= सुनते हुए
विभूतिम्	= विभूतिको	मे	= मेरी
भूयः	= फिर (भी)	तृप्तिः	= तृप्ति
विस्तरेण	= विस्तारपूर्वक	न	= नहीं
कथय	= कहिये	अस्ति	= होती है

अर्थात् सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है ।

श्रीभगवानुवाच

अपनी दिव्य विभूतियों को कहनेके लिये भगवान् की प्रतिज्ञा।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

हन्त, ते, कथयिष्यामि, दिव्याः, हि, आत्मविभूतयः,
प्राधान्यतः, कुरुश्रेष्ठ, न, अस्ति, अन्तः, विस्तरस्य, मे ॥ १९ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

कुरुश्रेष्ठ	= हे कुरुश्रेष्ठ	कथयिष्यामि	= कहूंगा
हन्त	= अब (मैं)	हि	= क्योंकि
ते	= तेरे लिये	मे	= मेरे
दिव्याः आत्म-विभूतयः	= अपनी दिव्य विभूतियोंको	विस्तरस्य	= विस्तारका
		अन्तः	= अन्त
		न	= नहीं
प्राधान्यतः	= प्रधानतासे	अस्ति	= है

सर्वात्मरूपसे भगवान्के स्वरूपका कथन।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

अहम्, आत्मा, गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः,
अहम्, आदिः, च, मध्यम्, च, भूतानाम्, अन्तः, एव, च ॥२०॥

गुडाकेश	= हे अर्जुन	भूतानाम्	= भूतोंका
अहम्	= मैं	आदिः	= आदि
सर्वभूताशय-स्थितः	= सब भूतोंके हृदयमें स्थित	मध्यम्	= मध्य
		च	= और
आत्मा	= सबका आत्मा हूं	अन्तः	= अन्त
		च	= भी
च	= तथा (संपूर्ण)	अहम्	= मैं
		एव	= ही हूं

विष्णु आदि विभूतियों का कथन ।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

आदित्यानाम्, अहम्, विष्णुः, ज्योतिषाम्, रविः, अंशुमान्,
मरीचिः, मरुताम्, अस्मि, नक्षत्राणाम्, अहम्, शशी ॥२१॥

और हे अर्जुन—

अहम्	= मैं	मरुताम्	= वायु-देवताओंमें
आदित्यानाम्	= अदितिके बारह पुत्रोंमें	मरीचिः	= मरीचि नामक वायुदेवता (और)
विष्णुः	= विष्णु अर्थात् वामन अवतार (और)	नक्षत्राणाम्	= नक्षत्रोंमें
ज्योतिषाम्	= ज्योतियोंमें	शशी	= (नक्षत्रोंका अधिपति) चन्द्रमा
अंशुमान्	= किरणोंवाला		
रविः	= सूर्य हूं (तथा)		
अहम्	= मैं (उन्चास)	अस्मि	= हूं

सामवेद आदि विभूतियों का कथन ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

वेदानाम्, सामवेदः, अस्मि, देवानाम्, अस्मि, वासवः, इन्द्रियाणाम्, मनः, च, अस्मि, भूतानाम्, अस्मि, चेतना ॥ २२ ॥

और मैं—

वेदानाम्	= वेदोंमें	इन्द्रियाणाम्	= इन्द्रियोंमें
सामवेदः	= सामवेद	मनः	= मन
अस्मि	= हूं	अस्मि	= हूं
देवानाम्	= देवोंमें	भूतानाम्	= भूतप्राणियोंमें
वासवः	= इन्द्र	चेतना	= चेतनता अथात् ज्ञान-शक्ति
अस्मि	= हूं		
च	= और	अस्मि	= हूं

शंकर आदि विभूतियों का कथन ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २ ३ ॥

रुद्राणाम्, शंकरः, च, अस्मि, वित्तेशः, यक्षरक्षसाम्,
वसूनाम्, पावकः, च, अस्मि, मेरुः, शिखरिणाम्, अहम् ॥२३॥

और मैं—

रुद्राणाम्	=एकादश रुद्रोंमें	च	=और
शंकरः	=शंकर	अहम्	=मैं
अस्मि	=हूं	वसूनाम्	=आठ वसुओंमें
च	=और	पावकः	=अग्नि
यक्षरक्षसाम्	=यक्ष तथा राक्षसोंमें	अस्मि	=हूं (तथा)
वित्तेशः	=धनका स्वामी कुबेर हूं	शिखरिणाम्	=शिखरवाले पर्वतोंमें
		मेरुः	=सुमेरु पर्वत हूं

बृहस्पति आदि विभूतियों का कथन ।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

पुरोधसाम्, च, मुख्यम्, माम्, विद्धि, पार्थ, बृहस्पतिम्,
सेनानीनाम्, अहम्, स्कन्दः, सरसाम्, अस्मि, सागरः ॥२४॥

और—

पुरोधसाम्	=पुरोहितोंमें	विद्धि	=जान
मुख्यम्	=मुख्य अर्थात् देवताओंका पुरोहित	च	=और
		पार्थ	=हे पार्थ
		अहम्	=मैं
बृहस्पतिम्	=बृहस्पति	सेनानीनाम्	=सेनापतियोंमें
माम्	=मेरेको	स्कन्दः	=स्वामिकार्तिक

(और)		सागरः	= समुद्र
सरसाम्	= जलाशयोंमें	अस्मि	= हूं

भृगु आदि विभूतियों का कथन ।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५॥

महर्षीणाम्, भृगुः, अहम्, गिराम्, अस्मि, एकम्, अक्षरम्,
यज्ञानाम्, जपयज्ञः, अस्मि, स्थावराणाम्, हिमालयः ॥२५॥

और हे अर्जुन—

अहम्	= मैं	यज्ञानाम्	= सब प्रकारके यज्ञोंमें
महर्षीणाम्	= महर्षियोंमें	जपयज्ञः	= जपयज्ञ (और)
भृगुः	= भृगु (और)	स्थावराणाम्	= स्थिर रहनेवालोंमें
गिराम्	= वचनोंमें	हिमालयः	= हिमालय पहाड़
एकम्	= एक	अस्मि	= हूं
अक्षरम्	= अक्षर अर्थात् ओंकार		
अस्मि	= हूं		

अश्वत्थ आदि विभूतियों का कथन ।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६॥

अश्वत्थः, सर्ववृक्षाणाम्, देवर्षीणाम्, च, नारदः,
गन्धर्वाणाम्, चित्ररथः, सिद्धानाम्, कपिलः, मुनिः ॥२६॥

और—

सर्ववृक्षाणाम्	= सब वृक्षोंमें	नारदः	= नारदमुनि (तथा)
अश्वत्थः	= पीपलका वृक्ष	गन्धर्वाणाम्	= गन्धर्वोंमें
च	= और	चित्ररथः	= चित्ररथ (और)
देवर्षीणाम्	= देवऋषियोंमें		

सिद्धानाम्	=सिद्धोंमें	मुनिः	=मुनि
कपिलः	=कपिल	(अस्मि)	=हूं

उच्चैःश्रव आदि विभूतियों का कथन ।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

उच्चैःश्रवसम्, अश्वानाम्, विद्धि, माम्, अमृतोद्भवम्, ऐरावतम्, गजेन्द्राणाम्, नराणाम्, च, नराधिपम् ॥२७॥

और हे अर्जुन ! तूं–

अश्वानाम्	=घोड़ोंमें	ऐरावतम्	=ऐरावत नामक हाथी
अमृतोद्भवम्	=अमृतसे उत्पन्न होनेवाला	च	=तथा
उच्चैःश्रवसम्	=उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा (और)	नराणाम्	=मनुष्योंमें
गजेन्द्राणाम्	=हाथियोंमें	नराधिपम्	=राजा
		माम्	=मेरेको (ही)
		विद्धि	=जान

वज्र आदि विभूतियों का कथन ।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

आयुधानाम्, अहम्, वज्रम्, धेनूनाम्, अस्मि, कामधुक्, प्रजनः, च, अस्मि, कन्दर्पः, सर्पाणाम्, अस्मि, वासुकिः ॥२८॥

और हे अर्जुन–

अहम्	=मैं	कामधुक्	=कामधेनु
आयुधानाम्	=शस्त्रोंमें	अस्मि	=हूं
वज्रम्	=वज्र (और)	च	=और (शास्त्रोक्त रीतिसे)
धेनूनाम्	=गौओंमें		

प्रजनः	= सन्तानकी उत्पत्तिका हेतु	सर्पाणाम्	= सर्पोंमें
कन्दर्पः	= कामदेव	वासुकिः	= (सर्पराज) वासुकि
अस्मि	= हूं	अस्मि	= हूं

अनन्त आदि विभूतियों का कथन।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

अनन्तः, च, अस्मि, नागानाम्, वरुणः, यादसाम्, अहम्,
पितॄणाम्, अर्यमा, च, अस्मि, यमः, संयमताम्, अहम् ॥२९॥

तथा–

अहम्	= मैं	च	= और
नागानाम्	= नागोंमें*	पितॄणाम्	= पितरोंमें
अनन्तः	= शेषनाग	अर्यमा	= अर्यमा नामक पित्रेश्वर (तथा)
च	= और		
यादसाम्	= जलचरोंमें	संयमताम्	= शासन करनेवालोंमें
वरुणः	= (उनका अधिपति) वरुण देवता	यमः	= यमराज
		अहम्	= मैं
अस्मि	= हूं	अस्मि	= हूं

प्रह्लाद आदि विभूतियों का कथन।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

प्रह्लादः, च, अस्मि, दैत्यानाम्, कालः, कलयताम्, अहम्,
मृगाणाम्, च, मृगेन्द्रः, अहम्, वैनतेयः, च, पक्षिणाम् ॥३०॥

और हे अर्जुन–

अहम्	= मैं	दैत्यानाम्	= दैत्योंमें

* नाग और सर्प यह दो प्रकारकी सर्पोंकी ही जाति है।

प्रह्लादः	=प्रह्लाद	मृगाणाम्	=पशुओंमें
च	=और	मृगेन्द्रः	=मृगराज (सिंह)
कलयताम्	=गिनती करने-वालोंमें	च	=और
		पक्षिणाम्	=पक्षियोंमें
कालः	=समय*	वैनतेयः	=गरुड़
अस्मि	=हूं	अहम्	=मैं
च	=तथा	(अस्मि)	=हूं

पवन आदि विभूतियों का कथन ।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

पवनः, पवताम्, अस्मि, रामः, शस्त्रभृताम्, अहम्, झषाणाम्, मकरः, च, अस्मि, स्रोतसाम्, अस्मि, जाह्नवी ॥३१॥

और–

अहम्	=मैं	च	=तथा
पवताम्	=पवित्र करने-वालोंमें	झषाणाम्	=मछलियोंमें
		मकरः	=मगरमच्छ
पवनः	=वायु (और)	अस्मि	=हूं (और)
शस्त्रभृताम्	=शस्त्रधारियोंमें	स्रोतसाम्	=नदियोंमें
रामः	=राम	जाह्नवी	=श्रीभागीरथी गङ्गा
अस्मि	=हूं	अस्मि	=हूं

भगवान्‌की योग-शक्तिका और अध्यात्म विद्या आदि विभूतियों का कथन ।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

सर्गाणाम्, आदिः, अन्तः, च, मध्यम्, च, एव, अहम्, अर्जुन, अध्यात्मविद्या, विद्यानाम्, वादः, प्रवदताम्, अहम् ॥३२॥

* क्षण-घड़ी-दिन-पक्ष-मास आदिमें जो समय है सो मैं हूं ।

और–

अर्जुन	=हे अर्जुन	अध्यात्म-विद्या	=अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या
सर्गाणाम्	=सृष्टियोंका		(एवं)
आदिः	=आदि	प्रवदताम्	=परस्परमें विवाद करनेवालोंमें
अन्तः	=अन्त	वादः	=तत्त्वनिर्णयके लिये किया जानेवाला वाद
च	=और	(अस्मि)	=हूं
मध्यम्	=मध्य		
च	=भी		
अहम्	=मैं		
एव	=ही हूं (तथा)		
अहम्	=मैं		
विद्यानाम्	=विद्याओंमें		

अकार आदि विभूतियों का कथन।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥

अक्षराणाम्, अकारः, अस्मि, द्वन्द्वः, सामासिकस्य, च,
अहम्, एव, अक्षयः, कालः, धाता, अहम्, विश्वतोमुखः ॥३३॥

तथा–

अहम्	=मैं	अस्मि	=हूं (तथा)
अक्षराणाम्	=अक्षरोंमें	अक्षयः	=अक्षय
अकारः	=अकार	कालः	=काल अर्थात् कालका भी महाकाल
च	=और		(और)
सामासिकस्य	=समासोंमें		
द्वन्द्वः	=द्वन्द्व नामक समास		

विश्वतोमुखः	= विराट् स्वरूप	अहम्	= मैं
धाता	= सबका धारण पोषण करनेवाला (भी)	एव	= ही
		(अस्मि)	= हूं

मृत्यु आदि विभूतियों का कथन ।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥

मृत्युः, सर्वहरः, च, अहम्, उद्भवः, च, भविष्यताम्,
कीर्तिः, श्रीः, वाक्, च, नारीणाम्, स्मृतिः, मेधा:, धृतिः, क्षमा ॥३४॥

हे अर्जुन—

अहम्	= मैं	नारीणाम्	= स्त्रियोंमें
सर्वहरः	= सबका नाश करनेवाला	कीर्तिः	= कीर्ति*
		श्रीः	= श्री
मृत्युः	= मृत्यु	वाक्	= वाक्
च	= और	स्मृतिः	= स्मृति
भविष्यताम्	= आगे होनेवालोंकी	मेधा	= मेधा
		धृतिः	= धृति
उद्भवः	= उत्पत्तिका कारण (हूं)	च	= और
		क्षमा	= क्षमा
च	= तथा	(अस्मि)	= हूं

बृहत्साम आदि विभूतियों का कथन ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

* कीर्ति आदि यह सात देवताओंकी स्त्रियां और स्त्रीवाचक नामवाले गुण भी प्रसिद्ध हैं इसलिये दोनों प्रकारसे ही भगवान्‌की विभूतियां हैं ।

बृहत्साम, तथा, साम्नाम्, गायत्री, छन्दसाम्, अहम्,
मासानाम्, मार्गशीर्षः, अहम्, ऋतूनाम्, कुसुमाकरः ॥३५॥

तथा = तथा	मासानाम् = महीनोंमें
अहम् = मैं	मार्गशीर्षः = मार्गशीर्षका महीना (और)
साम्नाम् = गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें	ऋतूनाम् = ऋतुओंमें
बृहत्साम = बृहत्साम (और)	कुसुमाकरः = वसन्त ऋतु
छन्दसाम् = छन्दोंमें	अहम् = मैं
गायत्री = गायत्री छन्द (तथा)	(अस्मि) = हूं

द्यूत आदि विभूतियोंका कथन ।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥

द्यूतम्, छलयताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्,
जयः, अस्मि, व्यवसायः, अस्मि, सत्त्वम्, सत्त्ववताम्, अहम् ॥३६॥

हे अर्जुन–

अहम् = मैं	जयः = विजय
छलयताम् = छल करनेवालोंमें	अस्मि = हूं (और)
द्यूतम् = जुआ (और)	(व्यवसायिनाम्) = निश्चय करनेवालोंका
तेजस्विनाम् = प्रभावशाली पुरुषोंका	व्यवसायः = निश्चय (एवं)
तेजः = प्रभाव	सत्त्ववताम् = सात्त्विक पुरुषोंका
अस्मि = हूं (तथा)	
अहम् = मैं	सत्त्वम् = सात्त्विक भाव
(जेतृणाम्) = जीतनेवालोंका	अस्मि = हूं

वासुदेव आदि विभूतियों का कथन ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥

वृष्णीनाम्, वासुदेवः, अस्मि, पाण्डवानाम्, धनंजयः,
मुनीनाम्, अपि, अहम्, व्यासः, कवीनाम्, उशना, कविः ॥३७॥

और—

वृष्णीनाम्	= वृष्णि-वंशियोंमें*		(एवं)
		मुनीनाम्	= मुनियोंमें
वासुदेवः	= वसुदेव अर्थात् मैं स्वयम् तुम्हारा सखा (और)	व्यासः	= वेदव्यास (और)
		कवीनाम्	= कवियोंमें
		उशना	= शुक्राचार्य
		कविः	= कवि
पाण्डवानाम्	= पाण्डवोंमें	अपि	= भी
धनंजयः	= धनंजय अर्थात् (तू)	अहम्	= मैं (ही)
		अस्मि	= हूं

दण्ड आदि विभूतियों का कथन ।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

दण्डः, दमयताम्, अस्मि, नीतिः, अस्मि, जिगीषताम्,
मौनम्, च, एव, अस्मि, गुह्यानाम्, ज्ञानम्, ज्ञानवताम्, अहम् ॥

च	= और	अस्मि	= हूं
दमयताम्	= दमन करने-वालोंका	जिगीषताम्	= जीतनेकी इच्छावालोंकी
दण्डः	= दण्ड अर्थात् दमन करनेकी शक्ति	नीतिः	= नीति
		अस्मि	= हूं (और)

* यादवोंके ही अन्तर्गत एक वृष्णिवंश भी था ।

गुह्यानाम्	= गोपनीयोंमें अर्थात् गुप्त रखने योग्य भावोंमें	अस्मि	= हूं (तथा)
		ज्ञानवताम्	= ज्ञानवानोंका
		ज्ञानम्	= तत्त्वज्ञान
		अहम्	= मैं
मौनम्	= मौन	एव	= ही (हूं)

सर्वरूपसे प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका कथन।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

यत्, च, अपि, सर्वभूतानाम्, बीजम्, तत्, अहम्, अर्जुन, न, तत्, अस्ति, विना, यत्, स्यात्, मया, भूतम्, चराचरम् ॥

च	= और	(यतः)	= क्योंकि (ऐसा)
अर्जुन	= हे अर्जुन	तत्	= वह
यत्	= जो	चराचरम्	= चर और अचर (कोई भी)
सर्वभूतानाम्	= सब भूतोंकी	भूतम्	= भूत
बीजम्	= उत्पत्तिका कारण है	न	= नहीं
		अस्ति	= है (कि)
तत्	= वह	यत्	= जो
अपि	= भी	मया	= मेरेसे
अहम्	= मैं	विना	= रहित
(एव)	= ही (हूं)	स्यात्	= होवे

इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है।

भगवत्-विभूतियोंकी अनन्तताका कथन।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

न, अन्तः, अस्ति, मम, दिव्यानाम्, विभूतीनाम्, परंतप,

एषः, तु, उद्देशतः, प्रोक्तः, विभूतेः, विस्तरः, मया ॥४०॥

परंतप	= हे परंतप	तु	= तो
मम	= मेरी	मया	= मैंने (अपनी)
दिव्यानाम्	= दिव्य	विभूतेः	= विभूतियोंका
विभूतीनाम्	= विभूतियोंका	विस्तरः	= विस्तार
अन्तः	= अन्त		(तेरे लिये)
न	= नहीं	उद्देशतः	= { एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे
अस्ति	= है		
एषः	= यह	प्रोक्तः	= कहा है

भगवान्के तेजके अंशसे संपूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्तिका कथन ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥

यत्, यत्, विभूतिमत्, सत्त्वम्, श्रीमत्, ऊर्जितम्, एव, वा,

तत्, तत्, एव, अवगच्छ, त्वम्, मम, तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥

इसलिये हे अर्जुन—

यत्	= जो	श्रीमत्	= कान्तियुक्त
यत्	= जो	वा	= और
एव	= भी	ऊर्जितम्	= शक्तियुक्त
विभूतिमत्	= { विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त (एवं)	सत्त्वम्	= वस्तु है
		तत्	= उस
		तत्	= उसको

त्वम्	= तूं	तेजोंऽश-संभवम् एव	= तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुई
मम	= मेरे	अवगच्छ	= जान

भगवान्की योग शक्तिके एक अंशसे संपूर्ण जगत्की स्थिति का कथन ।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४ २॥

अथवा, बहुना, एतेन, किम्, ज्ञातेन, तव, अर्जुन,
विष्टभ्य, अहम्, इदम्, कृत्स्नम्, एकांशेन, स्थितः, जगत् ॥४२॥

अथवा	= अथवा	इदम्	= इस
अर्जुन	= हे अर्जुन	कृत्स्नम्	= संपूर्ण
एतेन	= इस	जगत्	= जगत्को (अपनी योगमायाके)
बहुना	= बहुत		
ज्ञातेन	= जाननेसे		
तव	= तेरा	एकांशेन	= एक अंशमात्रसे
किम्	= क्या प्रयोजन है	विष्टभ्य	= धारण करके
अहम्	= मैं	स्थितः	= स्थित हूं

इसलिये मेरेको ही तत्त्वसे जानना चाहिये ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथैकादशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ४ तक विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना । (५—८) भगवान्‌द्वारा अपने विश्वरूपका वर्णन । (९—१४) धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन । (१५—३१) अर्जुनद्वारा भगवान्‌के विश्वरूपका देखा जाना और उनकी स्तुति करना । (३२—३४) भगवान्‌द्वारा अपने प्रभावका वर्णन और युद्धके लिये अर्जुनको उत्साहित करना । (३५—४६) भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति और चतुर्भुजरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना । (४७—५०) भगवान्‌द्वारा अपने विश्वरूपके दर्शनकी महिमाका कथन तथा चतुर्भुज और सौम्यरूप-का दिखाया जाना । (५१—५५) बिना अनन्यभक्तिके चतुर्भुजरूपके दर्शनकी दुर्लभताका और फलसहित अनन्य भक्तिका कथन ।

अर्जुन उवाच

अपने मोहकी निवृत्ति मानते हुए अर्जुनद्वारा भगवत्-वचनों-की प्रशंसा ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

मदनुग्रहाय, परमम्, गुह्यम्, अध्यात्मसंज्ञितम्,
यत्, त्वया, उक्तम्, वचः, तेन, मोहः, अयम्, विगतः, मम ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचन सुनकर अर्जुन बोला, हे भगवन्—

मदनुग्रहाय	= मेरेपर अनुग्रह करनेके लिये	त्वया	= आपके द्वारा
		यत्	= जो
परमम्	= परम	उक्तम्	= कहा गया
गुह्यम्	= गोपनीय	तेन	= उससे
अध्यात्म-संज्ञितम्	= अध्यात्म-विषयक	मम	= मेरा
		अयम्	= यह
वचः	= वचन अर्थात् उपदेश	मोहः	= अज्ञान
		विगतः	= नष्ट हो गया है

भगवत्द्वारा सुने हुए माहात्म्यको अर्जुन का स्वीकार करना और विश्वरूपको देखनेके लिये इच्छा प्रकट करना ।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्षमाहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

भवाप्ययौ, हि, भूतानाम्, श्रुतौ, विस्तरशः, मया,
त्वत्तः, कमलपत्राक्ष, माहात्म्यम्, अपि, च, अव्ययम् ॥ २ ॥

हि	= क्योंकि	त्वत्तः	= आपसे
कमलपत्राक्ष	= हे कमलनेत्र	विस्तरशः	= विस्तारपूर्वक
मया	= मैंने	श्रुतौ	= सुने हैं
भूतानाम्	= भूतोंकी	च	= तथा (आपका)
भवाप्ययौ	= { उत्पत्ति और प्रलय	अव्ययम्	= अविनाशी
		माहात्म्यम्	= प्रभाव
		अपि	= भी (सुना है)

["] **एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।**
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानम्, परमेश्वर,
द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

परमेश्वर	= हे परमेश्वर	ते	= आपके
त्वम्	= आप	ऐश्वरम्	= { ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बल वीर्य और तेजयुक्त
आत्मानम्	= अपनेको		
यथा	= जैसा		
आत्थ	= कहते हो	रूपम्	= रूपको (प्रत्यक्ष)
एतत्	= यह (ठीक)		
एवम्	= ऐसा		
(एव)	= ही है (परन्तु)	द्रष्टुम्	= देखना
पुरुषोत्तम	= हे पुरुषोत्तम	इच्छामि	= चाहता हूं

विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

मन्यसे, यदि, तत्, शक्यम्, मया, द्रष्टुम्, इति, प्रभो, योगेश्वर, ततः, मे, त्वम्, दर्शय, आत्मानम्, अव्ययम् ॥ ४ ॥

इसलिये--

प्रभो	=हे प्रभो*	मन्यसे	=मानते हैं
मया	=मेरे द्वारा	ततः	=तो
तत्	=वह(आपका रूप)	योगेश्वर	=हे योगेश्वर
द्रष्टुम्	=देखा जाना	त्वम्	=आप (अपने)
शक्यम्	=शक्य है	अव्ययम्	=अविनाशी
इति	=ऐसा	आत्मानम्	=स्वरूपका
यदि	=यदि	मे	=मुझे
		दर्शय	=दर्शन कराइये

श्रीभगवानुवाच

विश्वरूपको देखनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान् का कथन।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

पश्य, मे, पार्थ, रूपाणि, शतशः, अथ, सहस्रशः, नानाविधानि, दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि, च ॥ ५ ॥

इस प्रकार अर्जुनके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पार्थ	=हे पार्थ	अथ	=तथा
मे	=मेरे	सहस्रशः	=हजारों
शतशः	=सैकड़ों	नानाविधानि	=नाना प्रकारके

* उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अन्तर्यामीरूपसे शासन करनेवाला होनेसे भगवान्का नाम प्रभु है।

च	= और	दिव्यानि	= अलौकिक
नानावर्णाकृतीनि	= नाना वर्ण तथा आकृतिवाले	रूपाणि	= रूपोंको
		पश्य	= देख

[„] पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

पश्य, आदित्यान्, वसून्, रुद्रान्, अश्विनौ, मरुतः, तथा, बहूनि, अदृष्टपूर्वाणि, पश्य, आश्चर्याणि, भारत ॥ ६ ॥

और–

भारत	= हे भरतवंशी अर्जुन (मेरेमें)		(और)
आदित्यान्	= आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको (और)	मरुतः	= उनचास मरुद्गणोंको
		पश्य	= देख
		तथा	= तथा (और भी)
		बहूनि	= बहुतसे
वसून्	= आठ वसुओंको	अदृष्टपूर्वाणि	= पहिले न देखे हुए
रुद्रान्	= एकादश रुद्रोंको (तथा)	आश्चर्याणि	= आश्चर्यमय रूपोंको
अश्विनौ	= दोनों अश्विनीकुमारोंको	पश्य	= देख

विश्वरूपके एक अंशमें संपूर्ण जगत्को देखनेके लिये भगवान्का कथन ।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

इह, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, पश्य, अद्य, सचराचरम्, मम, देहे, गुडाकेश, यत्, च, अन्यत्, द्रष्टुम्, इच्छसि ॥ ७ ॥

और–

गुडाकेश*	=हे अर्जुन	कृत्स्नम्	=संपूर्ण
अद्य	=अब	जगत्	=जगत्‌को
इह	=इस	पश्य	=देख (तथा)
मम	=मेरे	अन्यत्	=और
देहे	=शरीरमें	च	=भी
एकस्थम्	=एक जगह स्थित हुए	यत्	=जो (कुछ)
		द्रष्टुम्	=देखना
सचराचरम्	=चराचर-सहित	इच्छसि	=चाहता है (सो देख)

विश्वरूपको देखनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवत् द्वारा दिव्य नेत्रोंका प्रदान।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा,
दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम् ॥ ८ ॥

तु	=परन्तु		
माम्	=मेरेको	दिव्यम्	=दिव्य अर्थात् अलौकिक
अनेन	=इन	चक्षुः	=चक्षु
स्वचक्षुषा	=अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा	ददामि	=देता हूं
द्रष्टुम्	=देखनेको	(तेन)	=उससे (तूं)
एव	=निःसन्देह	मे	=मेरे
न शक्यसे	=समर्थ नहीं है	ऐश्वरम्	=स्वभावको (और)
(अतः)	=इसीसे (मैं)	योगम्	=योगशक्तिको
ते	=तेरे लिये	पश्य	=देख

* निद्राको जीतनेवाला होनेसे अर्जुनका नाम गुडाकेश हुआ था।

संजय उवाच

अर्जुनके प्रति भगवान् द्वारा अपने विश्वरूप-का दिखाया जाना।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

एवम्, उक्त्वा, ततः, राजन्, महायोगेश्वरः, हरिः,
दर्शयामास, पार्थाय, परमम्, रूपम्, ऐश्वरम् ॥ ९ ॥

संजय बोला—

राजन्	= हे राजन्	उक्त्वा	= कहकर
महायोगेश्वरः	= महायोगेश्वर (और)	ततः	= उसके उपरान्त
		पार्थाय	= अर्जुनके लिये
हरिः	= सब पापोंके नाश करने-वाले भगवान्ने	परमम्	= परम
		ऐश्वरम्	= ऐश्वर्ययुक्त
		रूपम्	= दिव्य स्वरूप
एवम्	= इस प्रकार	दर्शयामास	= दिखाया

संजयद्वारा विश्व-रूपका वर्णन।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

अनेकवक्त्रनयनम्, अनेकाद्भुतदर्शनम्,
अनेकदिव्याभरणम्, दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

और उस—

अनेकवक्त्र-नयनम्	= अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त (तथा)	अनेक-दिव्या-भरणम्	= बहुतसे दिव्य भूषणोंसे युक्त (और)
अनेकाद्भुत दर्शनम्	= अनेक अद्भुत दर्शनोंवाले (एवं)	दिव्यानेको-द्यतायुधम्	= बहुतसे दिव्य शस्त्रों को हाथों-में उठाये हुए

"] दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११॥

दिव्यमाल्याम्बरधरम्, दिव्यगन्धानुलेपनम्,
सर्वाश्चर्यमयम्, देवम्, अनन्तम्, विश्वतोमुखम् ॥ ११॥

तथा–

दिव्यमाल्याम्बरधरम्	= दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए (और)	सर्वाश्चर्यमयम्	= सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त
		अनन्तम्	= सीमारहित
दिव्यगन्धानुलेपनम्	= दिव्य गन्धका अनुलेपन किये हुए (एवं)	विश्वतोमुखम्	= विराट्स्वरूप
		देवम्	= परमदेव परमेश्वरको
		(अपश्यत्)	= अर्जुनने देखा

विश्वरूपके प्रकाश की महिमा।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२॥

दिवि, सूर्यसहस्रस्य, भवेत्, युगपत्, उत्थिता,
यदि, भाः, सदृशी, सा, स्यात्, भासः, तस्य, महात्मनः ॥ १२॥

और हे राजन्–

दिवि	= आकाशमें	सा	= वह (भी)
सूर्यसहस्रस्य	= हजार सूर्योंके	तस्य	= उस
युगपत्	= एक साथ	महात्मनः	= विश्वरूप परमात्माके
उत्थिता	= उदय होनेसे उत्पन्न हुआ (जो)	भासः	= प्रकाशके
		सदृशी	= सदृश
भाः	= प्रकाश	यदि	= कदाचित् ही
भवेत्	= होवे	स्यात्	= होवे

अर्जुनका विश्वरूपमें संपूर्ण जगत्को एक जगह स्थित देखना।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

तत्र, एकस्थम्, जगत्, कृत्स्नम्, प्रविभक्तम्, अनेकधा, अपश्यत्, देवदेवस्य, शरीरे, पाण्डवः, तदा ॥१३॥

ऐसे आश्चर्यमय रूपको देखते हुए–

पाण्डवः = पाण्डुपुत्र अर्जुनने
तदा = उस कालमें
अनेकधा = अनेक प्रकारसे
प्रविभक्तम् = विभक्त हुए अर्थात् पृथक् पृथक् हुए
कृत्स्नम् = संपूर्ण
जगत् = जगत्को
तत्र = उस
देवदेवस्य = देवोंके देव श्रीकृष्ण भगवान्‌के
शरीरे = शरीरमें
एकस्थम् = एक जगह स्थित
अपश्यत् = देखा

विश्वरूपका दर्शन करके अर्जुनका विस्मित होना।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

ततः, सः, विस्मयाविष्टः, हृष्टरोमा, धनंजयः, प्रणम्य, शिरसा, देवम्, कृताञ्जलिः, अभाषत ॥१४॥

और–

ततः = उसके अनन्तर
सः = वह
विस्मयाविष्टः = आश्चर्यसे युक्त हुआ
हृष्टरोमा = हर्षित रोमोंवाला
धनंजयः = अर्जुन
देवम् = विश्वरूप परमात्माको

	(श्रद्धाभक्तिसहित)	कृताञ्जलिः	= हाथ जोड़े हुए
शिरसा	= सिरसे		
प्रणम्य	= प्रणाम करके	अभाषत	= बोला

अर्जुन उवाच—

विश्वरूपमें देवता और ऋषि आदिको देखना।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

पश्यामि, देवान्, तव, देव, देहे, सर्वान्, तथा, भूतविशेषसंघान्, ब्रह्माणम्, ईशम्, कमलासनस्थम्, ऋषीन्, च, सर्वान्, उरगान्, च, दिव्यान् ॥१५॥

देव	= हे देव	कमलासनस्थम्	= कमलके आसनपर बैठे हुए
तव	= आपके	ब्रह्माणम्	= ब्रह्माको (तथा)
देहे	= शरीरमें	ईशम्	= महादेवको
सर्वान्	= संपूर्ण	च	= और
देवान्	= देवोंको	सर्वान्	= संपूर्ण
तथा	= तथा	ऋषीन्	= ऋषियोंको
भूतविशेषसंघान्	= अनेक भूतोंके समुदायोंको (और)	च	= तथा
		दिव्यान्	= दिव्य
		उरगान्	= सर्पोंको
		पश्यामि	= देखता हूं

विश्वरूपको अनेक बाहु और उदर आदिसे युक्त देखना।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, सर्वतः, अनन्तरूपम्, न, अन्तम्, न, मध्यम्, न, पुनः, तव, आदिम्, पश्यामि, विश्वेश्वर, विश्वरूप ॥ १६ ॥

और—

विश्वेश्वर = हे संपूर्ण विश्वके स्वामिन्	विश्वरूप = हे विश्वरूप
त्वाम् = आपको	तव = आपके
अनेक-बाहूदर-वक्त्रनेत्रम् = अनेक हाथ पेट मुख और नेत्रोंसे युक्त (तथा)	न = न
सर्वतः = सब ओरसे	अन्तम् = अन्तको (देखता हूं) (तथा)
अनन्त-रूपम् = अनन्त रूपोंवाला	न = न
पश्यामि = देखता हूं	मध्यम् = मध्यको
	पुनः = और
	न = न
	आदिम् = आदिको (ही)
	पश्यामि = देखता हूं

विश्वरूपको किरीट, गदा और चक्र आदिसे युक्त देखना।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रिणम्, च, तेजोराशिम्, सर्वतः, दीप्तिमन्तम्, पश्यामि, त्वाम्, दुर्निरीक्ष्यम्, समन्तात्, दीप्तानलार्कद्युतिम्, अप्रमेयम् ॥ १७ ॥

और हे विष्णो—

त्वाम् = आपको (मैं)
किरीटिनम् = मुकुटयुक्त
गदिनम् = गदायुक्त
च = और
चक्रिणम् = चक्रयुक्त (तथा)
सर्वतः = सब ओरसे
दीप्तिमन्तम् = प्रकाशमान
तेजोराशिम् = तेजका पुञ्ज
दीप्तानलार्कद्युतिम् = प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त
दुर्निरीक्ष्यम् = देखनेमें अति गहन
(और)
अप्रमेयम् = अप्रमेय स्वरूप
समन्तात् = सब ओरसे
पश्यामि = देखता हूँ

विश्वरूपकी स्तुति ।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

त्वम्, अक्षरम्, परमम्, वेदितव्यम्, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, त्वम्, अव्ययः, शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनः, त्वम्, पुरुषः, मतः, मे ॥ १८ ॥

इसलिये हे भगवन्—

त्वम्	=आप (ही)	निधानम्	=आश्रय हैं (तथा)
वेदितव्यम्	=जानने योग्य	त्वम्	=आप (ही)
परमम्	=परम	शाश्वत-धर्मगोप्ता	=अनादि धर्मके रक्षक हैं (और)
अक्षरम्	=अक्षर हैं अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं (और)	त्वम्	=आप (ही)
		अव्ययः	=अविनाशी
त्वम्	=आप ही	सनातनः	=सनातन
अस्य	=इस	पुरुषः	=पुरुष हैं (ऐसा)
विश्वस्य	=जगत्के	मे	=मेरा
परम्	=परम	मतः	=मत है

अनन्त सामर्थ्य और प्रभावयुक्त विश्वरूप का दर्शन।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥ १९॥

अनादिमध्यान्तम्, अनन्तवीर्यम्, अनन्तबाहुम्, शशिसूर्यनेत्रम्, पश्यामि, त्वाम्, दीप्तहुताशवक्त्रम्, स्वतेजसा, विश्वम्, इदम्, तपन्तम्॥ १९॥

हे परमेश्वर! मैं—

त्वाम्	=आपको	अनन्त-वीर्यम्	=अनन्त सामर्थ्यसे युक्त (और)
अनादि-मध्यान्तम्	=आदि अन्त और मध्यसे रहित (तथा)	अनन्त-बाहुम्	=अनन्त हाथोंवाला

	(तथा)		(तथा)
शशिसूर्य-नेत्रम्	= चन्द्रसूर्यरूप नेत्रोंवाला	स्वतेजसा	= अपने तेजसे
		इदम्	= इस
	(और)	विश्वम्	= जगत्को
दीप्तहुताश-वक्त्रम्	= प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाला	तपन्तम्	= तपायमान करता हुआ
		पश्यामि	= देखता हूं

अद्भुत विराट-रूपसे संपूर्ण जगत्को व्याप्त देखना।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

द्यावापृथिव्योः, इदम्, अन्तरम्, हि, व्याप्तम्, त्वया, एकेन, दिशः, च, सर्वाः, दृष्ट्वा, अद्भुतम्, रूपम्, उग्रम्, तव, इदम्, लोकत्रयम्, प्रव्यथितम्, महात्मन् ॥ २० ॥

और—

महात्मन्	= हे महात्मन्	एकेन	= एक
इदम्	= यह	त्वया	= आपसे
द्यावा-पृथिव्योः	= स्वर्ग और पृथिवीके	हि	= ही
		व्याप्तम्	= परिपूर्ण हैं (तथा)
अन्तरम्	= बीचका संपूर्ण आकाश	तव	= आपके
		इदम्	= इस
च	= तथा	अद्भुतम्	= अलौकिक
सर्वाः	= सब		(और)
दिशः	= दिशाएं	उग्रम्	= भयंकर

रूपम्	=रूपको	प्रव्यथितम्	=अतिव्यथाको प्राप्त हो रहे हैं
दृष्ट्वा	=देखकर		
लोकत्रयम्	=तीनों लोक		

विश्वरूपमें प्रवेश करते हुए देवादिकोंका और स्तुति करते हुए महर्षि आदिकोंका दर्शन।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥२१॥

अमी, हि, त्वाम्, सुरसंघाः, विशन्ति, केचित्, भीताः, प्राञ्जलयः, गृणन्ति, स्वस्ति, इति, उक्त्वा, महर्षिसिद्धसंघाः, स्तुवन्ति, त्वाम्, स्तुतिभिः, पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

और हे गोविन्द—

अमी	=वे	गृणन्ति	=उच्चारण करते हैं (तथा)
सुरसंघाः	=देवताओंके समूह	महर्षि-सिद्धसंघाः	=महर्षि और सिद्धोंके समुदाय
त्वाम्	=आपमें		
हि	=ही		
विशन्ति	=प्रवेश करते हैं (और)	स्वस्ति	=कल्याण होवे
		इति	=ऐसा
केचित्	=कई एक	उक्त्वा	=कहकर
भीताः	=भयभीत होकर	पुष्कलाभिः	=उत्तम उत्तम
प्राञ्जलयः	=हाथ जोड़े हुए (आपके नाम और गुणोंका)	स्तुतिभिः	=स्तोत्रोंद्वारा
		त्वाम्	=आपकी
		स्तुवन्ति	=स्तुति करते हैं

विश्वरूपको देखते हुए विस्मययुक्त रुद्रादिकोंका दर्शन।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

रुद्रादित्याः, वसवः, ये, च, साध्याः, विश्वे, अश्विनौ, मरुतः, च, ऊष्मपाः, च, गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः, वीक्षन्ते, त्वाम्, विस्मिताः, च, एव, सर्वे ॥ २२ ॥

और हे परमेश्वर—

ये = जो
रुद्रादित्याः = एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य
च = तथा
वसवः = आठ वसु (और)
साध्याः = साध्यगण
विश्वे = विश्वेदेव (तथा)
अश्विनौ = अश्विनीकुमार
च = और
मरुतः = मरुद्गण
च = और
ऊष्मपाः = पितरोंका समुदाय
च = तथा
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः = गन्धर्व यक्ष राक्षस और सिद्धगणोंके समुदाय हैं
(ते) = वे
सर्वे = सब
एव = ही
विस्मिताः = विस्मित हुए
त्वाम् = आपको
वीक्षन्ते = देखते हैं

भगवान्‌के भयंकर रूपको देखकर अर्जुनका भयभीत होना।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

रूपम्, महत्, ते, बहुवक्त्रनेत्रम्, महाबाहो, बहुबाहूरुपादम्, बहूदरम्, बहुदंष्ट्राकरालम्, दृष्ट्वा, लोकाः, प्रव्यथिताः, तथा, अहम् ॥ २३ ॥

और—

महाबाहो = हे महाबाहो
ते = आपके
बहुवक्त्रनेत्रम् = बहुत मुख और नेत्रोंवाले
(तथा)
बहुबाहूरुपादम् = बहुत हाथ जंघा और पैरोंवाले
(और)
बहूदरम् = बहुत उदरोंवाले
(तथा)
बहुदंष्ट्राकरालम् = बहुत-सी विकराल जाड़ोंवाले
महत् = महान्
रूपम् = रूपको
दृष्ट्वा = देखकर
लोकाः = सब लोक
प्रव्यथिताः = व्याकुल हो रहे हैं
तथा = तथा
अहम् = मैं
(अपि) = भी
(व्याकुल हो रहा हूं)

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

नभःस्पृशम्, दीप्तम्, अनेकवर्णम्, व्यात्ताननम्, दीप्तविशालनेत्रम्, दृष्ट्वा, हि, त्वाम्, प्रव्यथितान्तरात्मा, धृतिम्, न, विन्दामि, शमम्, च, विष्णो ॥ २४ ॥

हि = क्योंकि
विष्णो = हे विष्णो
नभःस्पृशम् = आकाशके साथ स्पर्श किये हुए
दीप्तम् = देदीप्यमान
अनेकवर्णम् = अनेक रूपोंसे युक्त
(तथा)
व्यात्ताननम् = फैलाये हुए मुख (और)
दीप्तविशालनेत्रम् = प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त
त्वाम् = आपको
दृष्ट्वा = देखकर
प्रव्यथितान्तरात्मा = भयभीत अन्तःकरणवाला (मैं)
धृतिम् = धीरज
च = और
शमम् = शान्तिको
न = नहीं
विन्दामि = प्राप्त होता हूं

[„]

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

दंष्ट्राकरालानि, च, ते, मुखानि, दृष्ट्वा, एव, कालानलसन्निभानि, दिशः, न, जाने, न, लभे, च, शर्म, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास ॥

और हे भगवन्–

ते = आपके
दंष्ट्राकरालानि = विकराल जाड़ोंवाले
च = और
कालानलसन्निभानि = प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित

मुखानि	=मुखोंको	न	=नहीं
दृष्ट्वा	=देखकर	लभे	=प्राप्त होता हूं
दिशः	=दिशाओंको	(अतः)	=इसलिये
न	=नहीं	देवेश	=हे देवेश
जाने	=जानता हूं	जगन्निवास	=हे जगन्निवास (आप)
च	=और		
शर्म	=सुखको		
एव	=भी	प्रसीद	=प्रसन्न होवें

दोनों सेनाओंके योधाओं को विराट् स्वरूपके मुखमें प्रवेश हो-कर नष्ट होते हुए देखना।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥

अमी, च, त्वाम्, धृतराष्ट्रस्य, पुत्राः, सर्वे, सह, एव, अवनिपालसंघैः, भीष्मः, द्रोणः, सूतपुत्रः, तथा, असौ, सह, अस्मदीयैः, अपि, योधमुख्यैः ॥ २६ ॥

और मैं देखता हूं कि—

अमी	=वे	त्वाम्	=आपमें
सर्वे	=सब	(विशन्ति)	=प्रवेश करते हैं
एव	=ही	च	=और
धृतराष्ट्रस्य	=धृतराष्ट्रके	भीष्मः	=भीष्मपितामह
पुत्राः	=पुत्र	द्रोणः	=द्रोणाचार्य
अवनि-पालसंघैः	=राजाओंके समुदाय	तथा	=तथा
		असौ	=वह
सह	=सहित	सूतपुत्रः	=कर्ण (और)

अस्मदीयैः	= हमारे पक्षके	योधमुख्यैः	= प्रधान योधाओंके
अपि	= भी	सह	= सहित (सब-के-सब)

["]

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

वक्त्राणि, ते, त्वरमाणाः, विशन्ति, दंष्ट्राकरालानि, भयानकानि, केचित्, विलग्नाः, दशनान्तरेषु, संदृश्यन्ते, चूर्णितैः, उत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

त्वरमाणाः	= वेगयुक्त हुए	केचित्	= कई एक
ते	= आपके	चूर्णितैः	= चूर्ण हुए
दंष्ट्राकरालानि	= विकराल जाड़ोंवाले	उत्तमाङ्गैः	= सिरोंसहित (आपके)
भयानकानि	= भयानक	दशनान्तरेषु	= दाँतोंके बीचमें
वक्त्राणि	= मुखोंमें	विलग्नाः	= लगे हुए
विशन्ति	= प्रवेश करते हैं (और)	संदृश्यन्ते	= दीखते हैं

नदी और समुद्रके दृष्टान्तसे प्रवेशके दृश्यका कथन ।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

यथा, नदीनाम्, बह्वः, अम्बुवेगाः, समुद्रम्, एव, अभिमुखाः, द्रवन्ति, तथा, तव, अमी, नरलोकवीराः, विशन्ति, वक्त्राणि, अभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

और हे विश्वमूर्ते—

यथा	= जैसे	तथा	= वैसे ही
नदीनाम्	= नदियोंके	अमी	= वे
बह्वः	= बहुतसे	नरलोक-वीराः	= शूरवीर मनुष्योंके समुदाय (भी)
अम्बुवेगाः	= जलके प्रवाह		
समुद्रम्	= समुद्रके		
एव	= ही	तव	= आपके
अभिमुखाः	= सम्मुख	अभि-विज्वलन्ति	= प्रज्वलित हुए
द्रवन्ति	= दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं	वक्त्राणि	= मुखोंमें
		विशन्ति	= प्रवेश करते हैं

दीपक और पतङ्गके दृष्टान्त-से नाशके दृश्य-का कथन।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

यथा, प्रदीप्तम्, ज्वलनम्, पतङ्गाः, विशन्ति, नाशाय, समृद्धवेगाः, तथा, एव, नाशाय, विशन्ति, लोकाः, तव, अपि, वक्त्राणि, समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

अथवा—

यथा	= जैसे		(मोहके वश होकर)
पतङ्गाः	= पतङ्ग	नाशाय	= नष्ट होनेके लिये

प्रदीप्तम्	= प्रज्वलित	अपि	= भी
ज्वलनम्	= अग्निमें	नाशाय	= अपने नाशके लिये
समृद्धवेगाः	= अति वेगसे युक्त हुए	तव	= आपके
विशन्ति	= प्रवेश करते हैं	वक्त्राणि	= मुखोंमें
तथा	= वैसे	समृद्धवेगाः	= अति वेगसे युक्त हुए
एव	= ही		
लोकाः	= यह सब लोग	विशन्ति	= प्रवेश करते हैं

सब लोकोंको ग्रसन करते हुए तेजोमय भयानक विश्वरूपका वर्णन ।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

लेलिह्यसे, ग्रसमानः, समन्तात्, लोकान्, समग्रान्, वदनैः, ज्वलद्भिः, तेजोभिः, आपूर्य, जगत्, समग्रम्, भासः, तव, उग्राः, प्रतपन्ति, विष्णो ॥ ३० ॥

और आप उन—

समग्रान्	= संपूर्ण	उग्राः	= उग्र
लोकान्	= लोकोंको	भासः	= प्रकाश
ज्वलद्भिः	= प्रज्वलित	समग्रम्	= संपूर्ण
वदनैः	= मुखोंद्वारा	जगत्	= जगत्को
ग्रसमानः	= ग्रसन करते हुए	तेजोभिः	= तेजके द्वारा
समन्तात्	= सब ओरसे		
लेलिह्यसे	= चाट रहे हैं	आपूर्य	= परिपूर्ण करके
विष्णो	= हे विष्णो	प्रतपन्ति	= तपायमान करता है
तव	= आपका		

उग्ररूपधारी भगवान्‌को तत्त्वसे जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्‌ ॥ ३१ ॥

आख्याहि, मे, कः, भवान्‌, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद, विज्ञातुम्‌, इच्छामि, भवन्तम्‌, आद्यम्‌, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्‌ ॥ ३१ ॥

हे भगवन्‌ ! कृपा करके—

मे	=मेरे प्रति	आद्यम्‌	=आदिस्वरूप
आख्याहि	=कहिये (कि)	भवन्तम्‌	=आपको (मैं)
भवान्‌	=आप	विज्ञातुम्‌	=तत्त्वसे जानना
उग्ररूपः	=उग्ररूपवाले	इच्छामि	=चाहता हूं
कः	=कौन हैं	हि	=क्योंकि
देववर	=हे देवोंमें श्रेष्ठ	तव	=आपकी
ते	=आपको	प्रवृत्तिम्‌	=प्रवृत्तिको (मैं)
नमः	=नमस्कार	न	=नहीं
अस्तु	=होवे (आप)	प्रजानामि	=जानता
प्रसीद	=प्रसन्न होइये		

श्रीभगवानुवाच

लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ मैं महाकाल हूं इत्यादि वचनोंसे भगवान्‌का उत्तर।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्तः, ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन! मैं—

लोकक्षयकृत्	= लोकोंका नाश करनेवाला	प्रत्यनीकेषु	= प्रतिपक्षियोंकी सेनामें
प्रवृद्धः	= बढ़ा हुआ	अवस्थिताः	= स्थित हुए
कालः	= महाकाल	योधाः	= योधालोग हैं
अस्मि	= हूं	(ते)	= वे
इह	= इस समय (इन)	सर्वे	= सब
लोकान्	= लोकोंको	त्वाम्	= तेरे
समाहर्तुम्	= नष्ट करनेके लिये	ऋते	= बिना
प्रवृत्तः	= प्रवृत्त हुआ हूं (इसलिये)	अपि	= भी
		न	= नहीं
ये	= जो	भविष्यन्ति	= रहेंगे

निमित्तमात्र होकर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्की आज्ञा।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्, भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः, पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

तस्मात्	= इससे	त्वम्	= तूं

उत्तिष्ठ	=खड़ा हो (और)	एव	=ही
यशः	=यशको	मया	=मेरेद्वारा
लभस्व	=प्राप्त कर (तथा)	निहताः	=मारे हुए हैं
शत्रून्	=शत्रुओंको	सव्यसाचिन्	=हे सव्य-साचिन्*
जित्वा	=जीतकर		(तूं तो)
समृद्धम्	=धनधान्यसे सम्पन्न	निमित्त-मात्रम्	=केवल निमित्तमात्र
राज्यम्	=राज्यको	एव	=ही
भुङ्क्ष्व	=भोग (और)	भव	=हो जा
एते	=यह सब (शूरवीर)		
पूर्वम्	=पहिलेसे		

["] द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्, मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान् ॥३४॥

तथा इन—

द्रोणम्	=द्रोणाचार्य	जयद्रथम्	=जयद्रथ
च	=और	च	=और
भीष्मम्	=भीष्मपितामह	कर्णम्	=कर्ण
च	=तथा	तथा	=तथा

* बायें हाथसे भी बाण चलानेका अभ्यास होनेसे अर्जुनका नाम सव्यसाची हुआ था ।

अन्यान् अपि	= और भी बहुतसे	मा व्यथिष्ठाः	= भय मत कर
मया	= मेरे द्वारा	रणे	= निःसन्देह (तूं) युद्धमें
हतान्	= मारे हुए	सपत्नान्	= वैरियोंको
योधवीरान्	= शूरवीर योधाओंको	जेतासि	= जीतेगा
त्वम्	= तूं	(अतः)	= इसलिये
जहि	= मार (और)	युध्यस्व	= युद्ध कर

संजय उवाच

भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुनका भयभीत और गद्गद होना।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

एतत्, श्रुत्वा, वचनम्, केशवस्य, कृताञ्जलिः, वेपमानः, किरीटी, नमस्कृत्वा, भूयः, एव, आह, कृष्णम्, सगद्गदम्, भीतभीतः, प्रणम्य ॥ ३५ ॥

इसके उपरान्त संजय बोला कि हे राजन्—

केशवस्य	= केशव भगवान्के	कृताञ्जलिः	= हाथ जोड़े हुए
एतत्	= इस	वेपमानः	= कांपता हुआ
वचनम्	= वचनको	नमस्कृत्वा	= नमस्कार करके
श्रुत्वा	= सुनकर	भूयः	= फिर
किरीटी	= मुकुटधारी अर्जुन	एव	= भी
		भीतभीतः	= भयभीत हुआ
		प्रणम्य	= प्रणाम करके

कृष्णम्	= भगवान् श्रीकृष्णके प्रति	सगद्गदम्	= गद्गद वाणीसे
		आह	= बोला

अर्जुन उवाच

भगवान्के महत्त्वका वर्णन ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

स्थाने, हृषीकेश, तव, प्रकीर्त्या, जगत्, प्रहृष्यति, अनुरज्यते, च, रक्षांसि, भीतानि, दिशः, द्रवन्ति, सर्वे, नमस्यन्ति, च, सिद्धसङ्घाः ॥ ३६ ॥

कि—

हृषीकेश	= हे अन्तर्यामिन्		(तथा)
स्थाने	= यह योग्य ही है (कि)	भीतानि	= भयभीत हुए
(यत्)	= जो	रक्षांसि	= राक्षसलोग
तव	= आपके	दिशः	= दिशाओंमें
प्रकीर्त्या	= नाम और प्रभाव- के कीर्तनसे	द्रवन्ति	= भागते हैं
		च	= और
जगत्	= जगत्	सर्वे	= सब
प्रहृष्यति	= अति हर्षित होता है	सिद्धसंघाः	= सिद्धगणोंके समुदाय
च	= और		
अनुरज्यते	= अनुरागको भी प्राप्त होता है	नमस्यन्ति	= नमस्कार करते हैं

[,,]

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत् ॥ ३७ ॥

महात्मन् = हे महात्मन्
ब्रह्मणः = ब्रह्माके
अपि = भी
आदिकर्त्रे = आदिकर्ता
च = और
गरीयसे = सबसे बड़े
ते = आपके लिये (वे)
कस्मात् = कैसे
न, नमेरन् = {नमस्कार नहीं करें (क्योंकि)
अनन्त = हे अनन्त
देवेश = हे देवेश
जगन्निवास = हे जगन्निवास
यत् = जो
सत् = सत्
असत् = असत् (और)
तत्परम् = उनसे परे
अक्षरम् = {अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है
(तत्) = वह
त्वम् = आप ही हैं

अनन्तरूप परमेश्वर की स्तुति और बारम्बार नमस्कार ।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप ॥ ३८ ॥

और हे प्रभो–

त्वम्	= आप		(तथा)
आदिदेवः	= आदिदेव (और)	वेद्यम्	= जानने योग्य
पुराणः	= सनातन	च	= और
पुरुषः	= पुरुष हैं	परम्	= परम
त्वम्	= आप	धाम	= धाम
अस्य	= इस	असि	= हैं
विश्वस्य	= जगत्‌के	अनन्तरूप	= हे अनन्तरूप
परम्	= परम	त्वया	= आपसे (यह सब)
निधानम्	= आश्रय	विश्वम्	= जगत्
च	= और	ततम्	= { व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है
वेत्ता	= जाननेवाले		

["]

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

वायुः, यमः, अग्निः, वरुणः, शशाङ्कः, प्रजापतिः, त्वम्, प्रपितामहः, च, नमः, नमः, ते, अस्तु, सहस्रकृत्वः, पुनः, च, भूयः, अपि, नमः, नमः, ते ॥ ३९ ॥

और हे हरे–

त्वम्	= आप	वायुः	= वायु

यमः	=यमराज	सहस्रकृत्वः	=हजारों बार
अग्निः	=अग्नि	नमः	=नमस्कार
वरुणः	=वरुण	नमः	=नमस्कार
शशाङ्कः	=चन्द्रमा (तथा)	अस्तु	=होवे
प्रजापतिः	={ प्रजाके स्वामी ब्रह्मा	ते	=आपके लिये
		भूयः	=फिर
च	=और	अपि	=भी
प्रपितामहः	=ब्रह्माके भी पिता	पुनः च	=बारम्बार
(असि)	=हैं	नमः	=नमस्कार
ते	=आपके लिये	नमः	=नमस्कार (होवे)

सर्व ओरसे भगवान् को नमस्कार और उनकी अनन्त सामर्थ्यका कथन

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

नमः, पुरस्तात्, अथ, पृष्ठतः, ते, नमः, अस्तु, ते, सर्वतः, एव, सर्व, अनन्तवीर्य, अमितविक्रमः, त्वम्, सर्वम्, समाप्नोषि, ततः, असि, सर्वः ॥ ४० ॥

और—

अनन्तवीर्य	={ हे अनन्त सामर्थ्यवाले	नमः	=नमस्कार होवे
		सर्व	=हे सर्वात्मन्
ते	=आपके लिये	ते	=आपके लिये
पुरस्तात्	=आगेसे	सर्वतः	=सब ओरसे
अथ	=और	एव	=ही
पृष्ठतः	=पीछेसे भी	नमः	=नमस्कार

अस्तु	= होवे (क्योंकि)	समाप्नोषि	= व्याप्त किये हुए हैं
अमित-विक्रमः	= अनन्त पराक्रमशाली	ततः	= इससे (आप ही)
त्वम्	= आप	सर्वः	= सर्वरूप
सर्वम्	= सब संसारको	असि	= हैं

अपराध-क्षमाके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

सखा, इति, मत्वा, प्रसभम्, यत्, उक्तम्, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे, इति, अजानता, महिमानम्, तव, इदम्, मया, प्रमादात्, प्रणयेन, वा, अपि ॥ ४१ ॥

हे परमेश्वर—

सखा	= सखा	वा	= अथवा
इति	= ऐसे	प्रमादात्	= प्रमादसे
मत्वा	= मानकर	अपि	= भी
तव	= आपके	हे कृष्ण	= हे कृष्ण
इदम्	= इस	हे यादव	= हे यादव
महिमानम्	= प्रभावको	हे सखे	= हे सखे
अजानता	= न जानते हुए	इति	= इस प्रकार
मया	= मेरेद्वारा	यत्	= जो (कुछ)
प्रणयेन	= प्रेमसे	प्रसभम्	= हठपूर्वक
		उक्तम्	= कहा गया है

[,,]

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

यत्, च, अवहासार्थम्, असत्कृतः, असि, विहारशय्यासनभोजनेषु, एकः, अथवा, अपि, अच्युत, तत्समक्षम्, तत्, क्षामये, त्वाम्, अहम्, अप्रमेयम् ॥४२॥

च = और
अच्युत = हे अच्युत
यत् = जो (आप)
अवहासार्थम् = हंसीके लिये
विहार शय्या आसन भोजनेषु = विहार शय्या आसन और भोजनादिकोंमें
एकः = अकेले
अथवा = अथवा
तत्समक्षम् = उन सखाओं-के सामने
अपि = भी
असत्कृतः = अपमानित किये गये
असि = हैं
तत् = वह (सब अपराध)
अप्रमेयम् = अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले
त्वाम् = आपसे
अहम् = मैं
क्षामये = क्षमा कराता हूं

भगवान्के अतिशय प्रभाव-का कथन ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

पिता, असि, लोकस्य, चराचरस्य, त्वम्, अस्य, पूज्यः, च, गुरुः, गरीयान्, न, त्वत्समः, अस्ति, अभ्यधिकः, कुतः, अन्यः, लोकत्रये, अपि, अप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

हे विश्वेश्वर—

त्वम्	=आप	अप्रतिम-प्रभाव	={हे अतिशय प्रभाववाले
अस्य	=इस	लोकत्रये	=तीनों लोकोंमें
चराचरस्य	=चराचर	त्वत्समः	=आपके समान
लोकस्य	=जगत्के	अपि	=भी
पिता	=पिता	अन्यः	=दूसरा कोई
च	=और	न	=नहीं
गरीयान्	=गुरुसे भी बड़े	अस्ति	=है (फिर)
गुरुः	=गुरु (एवं)	अभ्यधिकः	=अधिक
पूज्यः	=अति पूजनीय	कुतः	=कैसे होवे
असि	=हैं		

प्रसन्न होनेके लिये और अपराध सहनेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

तस्मात्, प्रणम्य, प्रणिधाय, कायम्, प्रसादये, त्वाम्, अहम्, ईशम्, ईड्यम्, पिता, इव, पुत्रस्य, सखा, इव, सख्युः, प्रियः, प्रियायाः, अर्हसि, देव, सोढुम् ॥ ४४ ॥

तस्मात्	=इससे (हे प्रभो)	प्रणिधाय	={अच्छी प्रकार चरणोंमें रखके (और)
अहम्	=मैं		
कायम्	=शरीरको		

प्रणम्य	=प्रणाम करके	सखा	=सखा
ईड्यम्	=स्तुति करने योग्य	इव	=जैसे
त्वाम्	=आप	सख्युः	=सखाके (और)
ईशम्	=ईश्वरको	प्रियः	=पति
प्रसादये	=प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूं	(इव)	=जैसे
		प्रियायाः	=प्रिय स्त्रीके (वैसे ही आप भी)
देव	=हे देव	(मम)	=मेरे
पिता	=पिता	(अपराधम्)	=अपराधको
इव	=जैसे	सोढुम्	=सहन करनेके लिये
पुत्रस्य	=पुत्रके (और)	अर्हसि	=योग्य हैं

चतुर्भुजरूप दिखानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

अदृष्टपूर्वम्, हृषितः, अस्मि, दृष्ट्वा, भयेन, च, प्रव्यथितम्, मनः, मे, तत्, एव, मे, दर्शय, देव, रूपम्, प्रसीद, देवेश, जगन्निवास ॥ ४५ ॥

हे विश्वमूर्ते ! मैं—

अदृष्टपूर्वम्	=पहिले न देखे हुए आश्चर्यमय आपके इस रूपको	अस्मि	=हूं (और)
		मे	=मेरा
दृष्ट्वा	=देखकर	मनः	=मन
हृषितः	=हर्षित हो रहा	भयेन	=भयसे

प्रव्यथितम् च	= अति व्याकुल भी हो रहा है	एव	= ही
		मे	= मेरे लिये
(अतः)	= इसलिये	दर्शय	= दिखाइये
देव	= हे देव (आप)	देवेश	= हे देवेश
तत्	= उस (अपने चतुर्भुज)	जगन्निवास	= हे जगन्निवास
रूपम्	= रूपको	प्रसीद	= प्रसन्न होइये

[„] किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

किरीटिनम्, गदिनम्, चक्रहस्तम्, इच्छामि, त्वाम्, द्रष्टुम्, अहम्, तथा, एव, तेन, एव, रूपेण, चतुर्भुजेन, सहस्रबाहो, भव, विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

और हे विष्णो—

अहम्	= मैं	इच्छामि	= चाहता हूं
तथा	= वैसे	(अतः)	= इसलिये
एव	= ही	विश्वमूर्ते	= हे विश्वस्वरूप
त्वाम्	= आपको	सहस्रबाहो	= हे सहस्रबाहो (आप)
किरीटिनम्	= मुकुट धारण किये हुए तथा	तेन	= उस
		एव	= ही
गदिनम् चक्रहस्तम्	= गदा और चक्र हाथमें लियेहुए	चतुर्भुजेन	= चतुर्भुज
		रूपेण	= रूपसे (युक्त)
द्रष्टुम्	= देखना	भव	= होइये

श्रीभगवानुवाच

भगवान्‌के द्वारा अपने विश्व-रूपकी प्रशंसा।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

मया, प्रसन्नेन, तव, अर्जुन, इदम्, रूपम्, परम्, दर्शितम्, आत्मयोगात्, तेजोमयम्, विश्वम्, अनन्तम्, आद्यम्, यत्, मे, त्वदन्येन, न, दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार अर्जुनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

अर्जुन	=हे अर्जुन		(और)
प्रसन्नेन	=अनुग्रहपूर्वक	अनन्तम्	=सीमारहित
मया	=मैंने	विश्वम्	=विराट्
आत्मयोगात्	=अपनी योगशक्तिके प्रभावसे	रूपम्	=रूप
		तव	=तेरेको
		दर्शितम्	=दिखाया है
इदम्	=यह	यत्	=जो (कि)
मे	=मेरा	त्वदन्येन	=तेरे सिवाय दूसरेसे
परम्	=परम		
तेजोमयम्	=तेजोमय	न	=पहिले नहीं देखा गया
आद्यम्	=सबका आदि	दृष्टपूर्वम्	

["]

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥
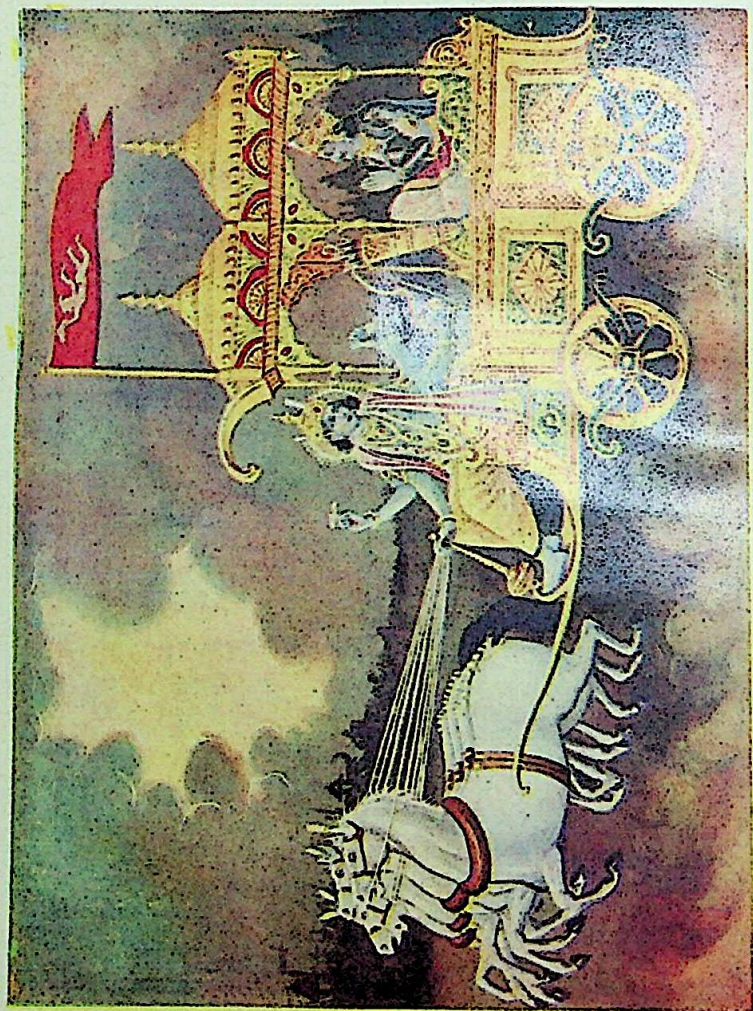
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः । निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

न, वेदयज्ञाध्ययनैः, न, दानैः, न, च, क्रियाभिः, न, तपोभिः, उग्रैः, एवंरूपः, शक्यः, अहम्, नृलोके, द्रष्टुम्, त्वदन्येन, कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

कुरुप्रवीर	=हे अर्जुन	न	=न
नृलोके	=मनुष्यलोकमें	क्रियाभिः	=क्रियाओंसे
एवंरूपः	=इस प्रकार विश्वरूपवाला	च	=और
अहम्	=मैं	न	=न
न	=न	उग्रैः	=उग्र
वेद-यज्ञाध्ययनैः	=वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे (तथा)	तपोभिः	=तपोंसे (ही)
		त्वदन्येन	=तेरे सिवाय दूसरेसे
न	=न	द्रष्टुम्	=देखा जानेको
दानैः	=दानसे (और)	शक्यः	=शक्य हूं

अर्जुनको धीरज देकर अपना चतुर्भुज रूप दिखाना।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

मा, ते, व्यथा, मा, च, विमूढभावः, दृष्ट्वा, रूपम्, घोरम्, ईदृक्, मम, इदम्, व्यपेतभीः, प्रीतमनाः, पुनः, त्वम्, तत्, एव, मे, रूपम्, इदम्, प्रपश्य ॥ ४९ ॥

ईदृक्	=इस प्रकारके	घोरम्	=विकराल
मम	=मेरे	रूपम्	=रूपको
इदम्	=इस	दृष्ट्वा	=देखकर

ते	= तेरेको	तत्	= उस
व्यथा	= व्याकुलता	एव	= ही
मा	= न होवे	मे	= मेरे
च	= और	इदम्	= इस
विमूढभावः	= मूढ़भाव (भी)	रूपम्	= (शङ्ख चक्र गदा पद्मसहित चतुर्भुज) रूपको
मा	= न होवे (और)		
व्यपेतभीः	= भयरहित		
प्रीतमनाः	= प्रीतियुक्त मनवाला	पुनः	= फिर
त्वम्	= तूं	प्रपश्य	= देख

संजय उवाच

चतुर्भुजरूप दिखाने के उपरान्त सौम्य-रूप होकर अर्जुनको पुनः धीरज देना।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

इति, अर्जुनम्, वासुदेवः, तथा, उक्त्वा, स्वकम्, रूपम्, दर्शयामास, भूयः, आश्वासयामास, च, भीतम्, एनम्, भूत्वा, पुनः, सौम्यवपुः, महात्मा ॥ ५० ॥

उसके उपरान्त संजय बोला, हे राजन्–

वासुदेवः	= वासुदेव भगवान्ने	भूयः	= फिर
		तथा	= वैसे ही
अर्जुनम्	= अर्जुनके प्रति	स्वकम्	= अपने
इति	= इस प्रकार	रूपम्	= चतुर्भुजरूपको
उक्त्वा	= कहकर	दर्शयामास	= दिखाया

च	=और	एनम्	=इस
पुनः	=फिर	भीतम्	=भयभीत हुए अर्जुनको
महात्मा	=महात्मा कृष्णने	आश्वासयामास	=धीरज दिया
सौम्यवपुः	=सौम्यमूर्ति		
भूत्वा	=होकर		

अर्जुन उवाच

भगवान्के मनुष्यरूप को देखकर अर्जुन-का शान्तचित्त होना।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वा, इदम्, मानुषम्, रूपम्, तव, सौम्यम्, जनार्दन,
इदानीम्, अस्मि, संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिम्, गतः ॥५१॥

उसके उपरान्त अर्जुन बोला—

जनार्दन	=हे जनार्दन	इदानीम्	=अब (मैं)
तव	=आपके	सचेताः	=शान्तचित्त
इदम्	=इस	संवृत्तः	=हुआ
सौम्यम्	=अतिशान्त	प्रकृतिम्	=अपने स्वभावको
मानुषम्	=मनुष्य	गतः	=प्राप्त हो गया
रूपम्	=रूपको	अस्मि	=हूं
दृष्ट्वा	=देखकर		

श्रीभगवानुवाच

चतुर्भुजरूपके दर्शन की दुर्लभता और प्रभावका कथन।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

सुदुर्दर्शम्, इदम्, रूपम्, दृष्टवानसि, यत्, मम,
देवाः, अपि, अस्य, रूपस्य, नित्यम्, दर्शनकाङ्क्षिणः ॥५२॥

इस प्रकार अर्जुनके वचनको सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन—

मम	=मेरा	(यतः)	=क्योंकि
इदम्	=यह	देवाः	=देवता
रूपम्	=(चतुर्भुज) रूप	अपि	=भी
सुदुर्दर्शम्	=देखनेको अति दुर्लभ है (कि)	नित्यम्	=सदा
		अस्य	=इस
यत्	=जिसको (तुमने)	रूपस्य	=रूपके
दृष्टवानसि	=देखा है	दर्शनकाङ्क्षिणः	=दर्शन करनेकी इच्छावाले हैं

[„] नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

न, अहम्, वेदैः, न, तपसा, न, दानेन, न, च, इज्यया, शक्यः, एवंविधः, द्रष्टुम्, दृष्टवानसि, माम्, यथा ॥ ५३ ॥

और हे अर्जुन—

न	=न	एवंविधः	=इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला
वेदैः	=वेदोंसे		
न	=न	अहम्	=मैं
तपसा	=तपसे	द्रष्टुम्	=देखा जानेको
न	=न	शक्यः	=शक्य हूं (कि)
दानेन	=दानसे	यथा	=जैसे
च	=और	माम्	=मेरेको
न	=न	(त्वम्)	=तुमने
इज्यया	=यज्ञसे	दृष्टवानसि	=देखा है

अनन्यभक्तिसे भगवत्‌प्राप्तिकी सुलभता का कथन।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्यः, अहम्, एवंविधः, अर्जुन, ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन, प्रवेष्टुम्, च, परंतप ॥५४॥

परन्तु—

परंतप = हे श्रेष्ठ तपवाले
अर्जुन = अर्जुन
अनन्यया = अनन्य*
भक्त्या = भक्ति करके
तु = तो
एवंविधः = इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला
अहम् = मैं
द्रष्टुम् = प्रत्यक्ष देखनेके लिये (और)
तत्त्वेन = तत्त्वसे
ज्ञातुम् = जाननेके लिये
च = तथा
प्रवेष्टुम् = प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये
च = भी
शक्यः = शक्य हूं

अनन्यभक्तके लक्षण और उसको परमात्माकी प्राप्तिका कथन।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

मत्कर्मकृत्, मत्परमः, मद्भक्तः, सङ्गवर्जितः, निर्वैरः, सर्वभूतेषु, यः, सः, माम्, एति, पाण्डव ॥५५॥

पाण्डव = हे अर्जुन
यः = जो पुरुष

* अनन्यभक्तिका भाव अगले श्लोकमें विस्तारपूर्वक कहा है।

मत्कर्मकृत् = केवल मेरे ही लिये (सब कुछ मेरा समझता हुआ) यज्ञ दान और तप आदि संपूर्ण कर्तव्यकर्मोंको करनेवाला है (और)

मत्परमः = मेरे परायण है अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर है (तथा)

मद्भक्तः = मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम गुण प्रभाव और रहस्यके श्रवण कीर्तन मनन ध्यान और पठन-पाठनका प्रेमसहित निष्कामभावसे निरन्तर अभ्यास करनेवाला है (और)

सङ्गवर्जितः = आसक्तिरहित है अर्थात् स्त्री पुत्र और धनादि संपूर्ण सांसारिक पदार्थोंमें स्नेहरहित है (और)

सर्वभूतेषु = संपूर्ण भूतप्राणियोंमें

निर्वैरः = वैरभावसे रहित है* (ऐसा)

सः = वह (अनन्यभक्तिवाला पुरुष)

माम् = मेरेको (ही)

एति = प्राप्त होता है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

---

* सर्वत्र भगवत्-बुद्धि हो जानेसे उस पुरुषका अति अपराध करनेवालेमें भी वैरभाव नहीं होता है, फिर औरोंमें तो कहना ही क्या है ।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से १२ तक साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय और भगवत्-प्राप्तिके उपायका विषय। (१३—२०) भगवत्-प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षण।

अर्जुन उवाच

साकार और निराकार के उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है यह जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

एवम्, सततयुक्ताः, ये, भक्ताः, त्वाम्, पर्युपासते,
ये, च, अपि, अक्षरम्, अव्यक्तम्, तेषाम्, के, योगवित्तमाः ॥१॥

इस प्रकार भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला, हे मनमोहन!

ये	=जो	च	=और
भक्ताः	=अनन्य प्रेमी भक्तजन	ये	=जो
एवम्	=इस पूर्वोक्त प्रकारसे	अक्षरम्	=अविनाशी सच्चिदानन्दघन
		अव्यक्तम्	=निराकारको
सततयुक्ताः	=निरन्तर आपके भजन ध्यानमें लगे हुए	अपि	=ही (उपासते हैं)
		तेषाम्	=उन दोनों प्रकारके भक्तोंमें
त्वाम्	=आप सगुण-रूप परमेश्वरको	योग-वित्तमाः	=अति उत्तम योगवेत्ता
पर्युपासते	=अति श्रेष्ठभाव-से उपासते हैं	के	=कौन हैं

श्रीभगवानुवाच

भगवान्के सगुण रूपकी उपासना करनेवालोंकी श्रेष्ठताका कथन।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ताः, उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमाः, मताः ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन—

मयि	= मेरेमें	उपेताः	= युक्त हुए
मनः	= मनको	माम्	= मुझ सगुणरूप परमेश्वरको
आवेश्य	= एकाग्र करके	उपासते	= भजते हैं
नित्ययुक्ताः	= निरन्तर मेरे भजन ध्यानमें लगे हुए*	ते	= वे
		मे	= मेरेको
ये	= जो भक्तजन	युक्ततमाः	= योगियोंमें भी अति उत्तम योगी
परया	= अतिशय श्रेष्ठ		
श्रद्धया	= श्रद्धासे	मताः	= मान्य हैं

अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं

निराकार ब्रह्मके स्वरूपका कथन और उसकी उपासनासे भगवत्-प्राप्ति।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

* अर्थात् गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ में लिखे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए।

ये, तु, अक्षरम्, अनिर्देश्यम्, अव्यक्तम्, पर्युपासते,
सर्वत्रगम्, अचिन्त्यम्, च, कूटस्थम्, अचलम्, ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्य, इन्द्रियग्रामम्, सर्वत्र, समबुद्धयः,
ते, प्राप्नुवन्ति, माम्, एव, सर्वभूतहिते, रताः ॥ ४ ॥

तु	=और	अक्षरम्	=अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
ये	=जो पुरुष	पर्युपासते	=निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए उपासते हैं
इन्द्रिय-ग्रामम्	=इन्द्रियोंके समुदायको	ते	=वे
संनियम्य	=अच्छी प्रकार वशमें करके	सर्वभूत-हिते रताः	=संपूर्ण भूतोंके हितमें रत हुए (और)
अचिन्त्यम्	=मन बुद्धिसे परे	सर्वत्र	=सबमें
सर्वत्रगम्	=सर्वव्यापी	समबुद्धयः	=समान भाववाले योगी (भी)
अनिर्देश्यम्	=अकथनीय स्वरूप	माम्	=मेरेको
च	=और	एव	=ही
कूटस्थम्	=सदा एकरस रहनेवाले	प्राप्नुवन्ति	=प्राप्त होते हैं
ध्रुवम्	=नित्य		
अचलम्	=अचल		
अव्यक्तम्	=निराकार		

निराकारकी उपासना में कठिनता का कथन ।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्,
अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते ॥ ५ ॥

किन्तु—

तेषाम्	= उन	क्लेशः	= { क्लेश अर्थात् परिश्रम
अव्यक्तासक्तचेतसाम्	= { सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषोंके	अधिकतरः	= विशेष है
		हि	= क्योंकि
		देहवद्भिः	= { देहाभिमानियोंसे
		अव्यक्ता	= अव्यक्तविषयक
		गतिः	= गति
		दुःखम्	= दुःखपूर्वक
(साधनमें)		अवाप्यते	= प्राप्त की जाती है

अर्थात् जबतक शरीरमें अभिमान रहता है तबतक शुद्ध सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें स्थिति होनी कठिन है ।

भगवान्के सगुणरूप की उपासना का कथन ।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

ये, तु, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, संन्यस्य, मत्पराः,
अनन्येन, एव, योगेन, माम्, ध्यायन्तः, उपासते ॥ ६ ॥

तु	= और	सर्वाणि	= संपूर्ण
ये	= जो	कर्माणि	= कर्मोंको
मत्पराः	= { मेरे परायण हुए भक्तजन	मयि	= मेरेमें
		संन्यस्य	= अर्पण करके

माम्	= { मुझ सगुणरूप परमेश्वरको	योगेन	= ध्यानयोगसे
एव	= ही	ध्यायन्तः	= { निरन्तर चिन्तन करते हुए
अनन्येन	= { (तैलधाराके सदृश) अनन्य	उपासते	= भजते हैं*

अपने भक्तोंका शीघ्र उद्धार करनेके लिये भगवान् की प्रतिज्ञा ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

तेषाम्, अहम्, समुद्धर्ता, मृत्युसंसारसागरात्,
भवामि, नचिरात्, पार्थ, मयि, आवेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

पार्थ	= हे अर्जुन	नचिरात्	= शीघ्र ही
तेषाम्	= उन	मृत्युसंसार-सागरात्	= { मृत्युरूप संसारसमुद्रसे
मयि	= मेरेमें		
आवेशित-चेतसाम्	= { चित्तको लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका	समुद्धर्ता	= { उद्धार करनेवाला
अहम्	= मैं	भवामि	= होता हूं

ध्यानसे भगवत्-प्राप्ति ।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

मयि, एव, मनः, आधत्स्व, मयि, बुद्धिम्, निवेशय,
निवसिष्यसि, मयि, एव, अतः, ऊर्ध्वम्, न, संशयः ॥ ८ ॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू–

मयि	= मेरेमें	मनः	= मनको

* इस श्लोकका विशेष भाव जाननेके लिये गीता अध्याय ११ श्लोक ५५ देखना चाहिये ।

आधत्स्व	=लगा (और)	मयि	=मेरेमें
मयि	=मेरेमें	एव	=ही
एव	=ही-	निवसिष्यसि	=निवास करेगा अर्थात् मेरेको ही प्राप्त होगा
बुद्धिम्	=बुद्धिको	(अत्र)	=इसमें (कुछ भी)
निवेशय	=लगा	संशयः	=संशय
अतः	=इसके	न	=नहीं है
ऊर्ध्वम्	=उपरान्त (तूं)		

अभ्यास योगसे भगवत्-प्राप्ति ।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

अथ, चित्तम्, समाधातुम्, न, शक्नोषि, मयि, स्थिरम्, अभ्यासयोगेन, ततः, माम्, इच्छ, आप्तुम्, धनंजय ॥ ९ ॥

और–

अथ	=यदि (तूं)	ततः	=तो
चित्तम्	=मनको	धनंजय	=हे अर्जुन
मयि	=मेरेमें	अभ्यास-योगेन	=अभ्यासरूप* योगके द्वारा
स्थिरम्	=अचल	माम्	=मेरेको
समाधातुम्	=स्थापन करनेके लिये	आप्तुम्	=प्राप्त होनेके लिये
न शक्नोषि	=समर्थ नहीं है	इच्छ	=इच्छा कर

* भगवान्‌के नाम और गुणोंका श्रवण, कीर्तन, मनन तथा श्वासके द्वारा जप और भगवत्-प्राप्तिविषयक शास्त्रोंका पठन-पाठन इत्यादिक चेष्टाएं भगवत्-प्राप्तिके लिये बारम्बार करनेका नाम अभ्यास है ।

भगवान्‌के लिये कर्म करनेसे भगवत्-प्राप्ति।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

अभ्यासे, अपि, असमर्थः, असि, मत्कर्मपरमः, भव, मदर्थम्, अपि, कर्माणि, कुर्वन्, सिद्धिम्, अवाप्स्यसि ॥१०॥

और यदि तूं–

अभ्यासे	= ऊपर कहे हुए अभ्यासमें	भव	= हो (इस प्रकार)
अपि	= भी	मदर्थम्	= मेरे अर्थ
असमर्थः	= असमर्थ	कर्माणि	= कर्मोंको
असि	= है	कुर्वन्	= करता हुआ
(तर्हि)	= तो	अपि	= भी
मत्कर्मपरमः	= केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण*	सिद्धिम्	= मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको (ही)
		अवाप्स्यसि	= प्राप्त होगा

सर्व कर्मोंके फलत्यागसे भगवत्प्राप्ति।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

अथ, एतत्, अपि, अशक्तः, असि, कर्तुम्, मद्योगम्, आश्रितः, सर्वकर्मफलत्यागम्, ततः, कुरु, यतात्मवान् ॥ ११ ॥

और–

अथ	= यदि	अपि	= भी
एतत्	= इसको	कर्तुम्	= करनेके लिये

* स्वार्थको त्यागकर तथा परमेश्वरको ही परम आश्रय और परमगति समझकर निष्काम प्रेमभावसे सती शिरोमणि पतिव्रता स्त्रीकी भांति मन, वाणी और शरीरद्वारा परमेश्वरके ही लिये यज्ञ, दान और तपादि संपूर्ण कर्तव्यकर्मोंके करनेका नाम "भगवत्-अर्थ कर्म करनेके परायण होना" है ।

अशक्तः	= असमर्थ	आश्रितः	= शरण हुआ
असि	= है	सर्वकर्म-फलत्यागम्	= सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग*
ततः	= तो		
यतात्मवान्	= जीते हुए मनवाला (और)		
मद्योगम्	= मेरी प्राप्तिरूप योगके	कुरु	= कर

सर्वकर्म-फल-त्यागकी प्रशंसा।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

श्रेयः, हि, ज्ञानम्, अभ्यासात्, ज्ञानात्, ध्यानम्, विशिष्यते, ध्यानात्, कर्मफलत्यागः, त्यागात्, शान्तिः, अनन्तरम् ॥ १२ ॥

हि	= क्योंकि (मर्मको न जानकर किये हुए)	ध्यानात्	= ध्यानसे भी
अभ्यासात्	= अभ्याससे	कर्मफलत्यागः	= सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग करना‡
ज्ञानम्	= परोक्षज्ञान†		
श्रेयः	= श्रेष्ठ है (और)	(विशिष्यते)	= श्रेष्ठ है (और)
ज्ञानात्	= परोक्षज्ञानसे	त्यागात्	= त्यागसे
ध्यानम्	= मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान	अनन्तरम्	= तत्काल ही
विशिष्यते	= श्रेष्ठ है (तथा)	शान्तिः	= परम शान्ति होती है

* गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में इसका विस्तार देखना चाहिये ।

† सुननेसे और शास्त्र पठन करनेसे परमेश्वरके स्वरूपका जो अनुमान ज्ञान होता है उसीका नाम परोक्ष ज्ञान है ।

‡ केवल भगवत् अर्थ कर्म करनेवाले पुरुषका भगवत्में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवत्का चिन्तन भी बना रहता है इसलिये ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ कहा है ।

सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित और मैत्री आदि गुणोंसे युक्त प्रिय भक्तके लक्षण ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १ ३॥

अद्वेष्टा, सर्वभूतानाम्, मैत्रः, करुणः, एव, च, निर्ममः, निरहंकारः, समदुःखसुखः, क्षमी ॥१ ३॥

इस प्रकार शान्तिको प्राप्त हुआ जो पुरुष–

सर्वभूतानाम्	= सब भूतोंमें	एव	= *
अद्वेष्टा	= द्वेषभावसे रहित (एवं)	निर्ममः	= ममतासे रहित (एवं)
मैत्रः	= स्वार्थरहित सबका प्रेमी	निरहंकारः	= अहंकारसे रहित
च	= और	समदुःखसुखः	= सुख दुःखोंकी प्राप्तिमें सम (और)
करुणः	= हेतुरहित दयालु है (तथा)	क्षमी	= क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है

[,,] **संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।**
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १ ४॥

संतुष्टः, सततम्, योगी, यतात्मा, दृढनिश्चयः, मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः ॥१४॥

तथा–

यः	= जो	संतुष्टः	= लाभ हानिमें संतुष्ट है (तथा)
योगी	= ध्यानयोगमें युक्त हुआ	यतात्मा	= मन और इन्द्रियों-सहित शरीरको वशमें किये हुए
सततम्	= निरन्तर		

* "एव" शब्द यहां सब गुणोंका समुच्चय करनेके लिये समझना चाहिये ।

दृढनिश्चयः	= मेरेमें दृढ़ निश्चयवाला है	अर्पितमनोबुद्धिः	= अर्पण किये हुए मन बुद्धिवाला
सः	= वह	मद्भक्तः	= मेरा भक्त
मयि	= मेरेमें	मे	= मेरेको
		प्रियः	= प्रिय है

हर्षादि विकारोंसे रहित और सबको अभय देनेवाले प्रिय भक्तके लक्षण।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

यस्मात्, न, उद्विजते, लोकः, लोकात्, न, उद्विजते, च, यः, हर्षामर्षभयोद्वेगैः, मुक्तः, यः, सः, च, मे, प्रियः ॥ १५ ॥

तथा—

यस्मात्	= जिससे	च	= तथा
लोकः	= कोई भी जीव	यः	= जो
न उद्विजते	= उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है	हर्ष	= हर्ष
		अमर्ष	= अमर्ष*
च	= और	भय	= भय (और)
		उद्वेगैः	= उद्वेगादिकोंसे
यः	= जो (स्वयम् भी)	मुक्तः	= रहित है
लोकात्	= किसी जीवसे	सः	= वह भक्त
न उद्विजते	= उद्वेगको प्राप्त नहीं होता है	मे	= मेरेको
		प्रियः	= प्रिय है

निःस्पृहादि गुणोंसे युक्त सर्वत्यागी प्रिय भक्तके लक्षण।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

* दूसरेकी उन्नतिको देखकर संताप होनेका नाम अमर्ष है ।

अनपेक्षः, शुचिः, दक्षः, उदासीनः, गतव्यथः,
सर्वारम्भपरित्यागी, यः, मद्भक्तः, सः, मे, प्रियः ॥१६॥

और–

यः	= जो पुरुष
अनपेक्षः	= आकाङ्क्षासे रहित (तथा)
शुचिः	= बाहर भीतरसे शुद्ध* (और)
दक्षः	= चतुर है अर्थात् जिस कामके लिये आया था उसको पूरा कर चुका है (एवं)
उदासीनः	= पक्षपातसे रहित (और)
गतव्यथः	= दुःखोंसे छूटा हुआ है
सः	= वह
सर्वारम्भपरित्यागी	= सर्व आरम्भोंका त्यागी†
मद्भक्तः	= मेरा भक्त
मे	= मेरेको
प्रियः	= प्रिय है

हर्षशोकादि विकारोंसे रहित निष्कामी प्रिय भक्तके लक्षण ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

यः, न, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्, यः, सः, मे, प्रियः ॥१७॥

और–

यः	= जो
न	= न (कभी)
हृष्यति	= हर्षित होता है
न	= न
द्वेष्टि	= द्वेष करता है
न	= न

* गीता अ० १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें इसका विस्तार देखना चाहिये ।

† अर्थात् मन, वाणी और शरीरद्वारा प्रारब्धसे होनेवाले संपूर्ण स्वाभाविक कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्यागी ।

शोचति =शोच करता है
न =न
काङ्क्षति ={कामना करता है (तथा)
यः =जो
शुभाशुभपरित्यागी ={शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मोंके फलका त्यागी है
सः =वह
भक्तिमान् =भक्तियुक्त पुरुष
मे =मेरेको
प्रियः =प्रिय है

शत्रु मित्रादिमें समभाव वाले स्थिरबुद्धि प्रिय भक्तके लक्षण।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

समः, शत्रौ, च, मित्रे, च, तथा, मानापमानयोः, शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः, सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

और जो पुरुष—

शत्रौ =शत्रु
मित्रे =मित्रमें
च =और
मानापमानयोः ={मान अपमानमें
समः =सम है
तथा =तथा
शीतोष्णसुखदुःखेषु ={सर्दी गर्मी और सुखदुःखादिक द्वन्द्वोंमें
समः =सम है
च =और (सब संसारमें)
सङ्गविवर्जितः ={आसक्तिसे रहित है

[„] **तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।**
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

तुल्यनिन्दास्तुतिः, मौनी, संतुष्टः, येन, केनचित्, अनिकेतः, स्थिरमतिः, भक्तिमान्, मे, प्रियः, नरः ॥१९॥

तथा जो--

तुल्य-निन्दास्तुतिः	= निन्दा स्तुतिको समान समझनेवाला (और)	संतुष्टः	= सदा ही संतुष्ट है (और)
		अनिकेतः	= रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है
मौनी	= मननशील हैं* (एवं)	(सः)	= वह
		स्थिरमतिः	= स्थिरबुद्धिवाला
येन केनचित्	= जिस किस प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें	भक्तिमान्	= भक्तिमान्
		नरः	= पुरुष
		मे	= मेरेको
		प्रियः	= प्रिय है

उपरोक्त गुणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंकी महिमा।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

ये, तु, धर्म्यामृतम्, इदम्, यथा, उक्तम्, पर्युपासते,
श्रद्दधानाः, मत्परमाः, भक्ताः, ते, अतीव, मे, प्रियाः ॥२०॥

तु	= और	श्रद्दधानाः	= श्रद्धायुक्त‡ पुरुष
ये	= जो		
मत्परमाः	= मेरे परायण हुए†	इदम्	= इस
		यथा उक्तम्	= ऊपर कहे हुए

* अर्थात् ईश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला है ।

† अर्थात् मेरेको परम आश्रय और परम गति एवं सबका आत्मरूप और सबसे परे परम पूज्य समझकर विशुद्ध प्रेमसे मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर हुए ।

‡ वेद, शास्त्र, महात्मा और गुरुजनोंके तथा परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वासका नाम श्रद्धा है ।

धर्म्यामृतम्	= { धर्ममय अमृतको	भक्ताः	= भक्त
पर्युपासते	= { निष्कामभावसे सेवन करते हैं	मे	= मेरेको
ते	= वे	अतीव	= अतिशय
		प्रियाः	= प्रिय हैं

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से १८ तक ज्ञानसहित क्षेत्रक्षेत्रज्ञका विषय। (१९—३४) ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुषका विषय।

श्रीभगवानुवाच

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के स्वरूप का कथन।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञः, इति, तद्विदः ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले—

कौन्तेय	= हे अर्जुन	शरीरम्	= शरीर
इदम्	= यह	क्षेत्रम्	= क्षेत्र है*

* जैसे खेतमें बोये हुए बीजोंका उनके अनुरूप फल समयपर प्रकट होता है वैसे ही इसमें बोये हुए कर्मोंके संस्काररूप बीजोंका फल समयपर प्रकट होता है इसलिये इसका नाम क्षेत्र ऐसा कहा है।

इति =ऐसे
अभिधीयते =कहा जाता है (और)
एतत् =इसको
यः =जो
वेत्ति =जानता है
तम् =उसको
क्षेत्रज्ञः =क्षेत्रज्ञ
इति =ऐसा
तद्विदः = उनके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन
प्राहुः =कहते हैं

जीवात्मा और परमात्मा की एकता का निरूपण ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम ॥ २ ॥

च =और
भारत =हे अर्जुन (तू)
सर्वक्षेत्रेषु =सब क्षेत्रोंमें
क्षेत्रज्ञम् = क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा
अपि =भी
माम् =मेरेको ही
विद्धि =जान* (और)
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोः = क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकार-सहित प्रकृतिका और पुरुषका
यत् =जो
ज्ञानम् =तत्त्वसे जानना है†
तत् =वह
ज्ञानम् =ज्ञान है
(इति) =ऐसा
मम =मेरा
मतम् =मत है

* गीता अध्याय १५ श्लोक ७ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये ।

† गीता अध्याय १३ श्लोक २३ और उसकी टिप्पणी देखनी चाहिये ।

विकारसहित क्षेत्र और प्रभाव-सहित क्षेत्रज्ञका स्वरूप सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा ।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्, सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु ॥ ३ ॥

इसलिये—

तत्	=वह	च	=तथा
क्षेत्रम्	=क्षेत्र	सः	=वह (क्षेत्रज्ञ)
यत्	=जो है	च	=भी
च	=और	यः	=जो है (और)
यादृक्	=जैसा है		
च	=तथा	यत्प्रभावः	=जिस प्रभाव-वाला है
यद्विकारि	=जिन विकारों-वाला है	तत्	=वह सब
च	=और	समासेन	=संक्षेपसे
यतः	=जिस कारणसे	मे	=मेरेसे
यत्	=जो हुआ है	शृणु	=सुन

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ-के विषय में ऋषि, वेद और ब्रह्मसूत्र का प्रमाण ।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छन्दोभिः, विविधैः, पृथक्, ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व—

ऋषिभिः	=ऋषियोंद्वारा	(च)	=और
बहुधा गीतम्	=बहुत प्रकारसे कहा गया है अर्थात् समझाया गया है	विविधैः	=नाना प्रकारके
		छन्दोभिः	=वेदमन्त्रोंसे
		पृथक्	=विभागपूर्वक

(गीतम्)	= कहा गया है	हेतुमद्भिः	= युक्तियुक्त
च	= तथा	ब्रह्मसूत्रपदैः	= ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा
विनिश्चितैः	= अच्छी प्रकार निश्चय किये हुए	एव	= भी (वैसे ही कहा गया है)

क्षेत्रके स्वरूपका कथन।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥ ५॥

महाभूतानि, अहंकारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च, इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पञ्च, च, इन्द्रियगोचराः॥ ५॥

और हे अर्जुन! वही मैं तेरे लिये कहता हूं कि–

महाभूतानि	= पांच महाभूत*	च	= तथा
अहंकारः	= अहंकार	दश	= दस
बुद्धिः	= बुद्धि	इन्द्रियाणि	= इन्द्रियां†
च	= और	एकम्	= एक मन
अव्यक्तम्	= मूल प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया	च	= और
एव	= भी	पञ्च	= पांच
		इन्द्रियगोचराः	= इन्द्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध

क्षेत्रके विकारोंका कथन।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ ६॥

* अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका सूक्ष्मभाव।

† अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा।

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, संघातः, चेतना, धृतिः,
एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम् ॥ ६ ॥

तथा—

इच्छा	= इच्छा	धृतिः	= धृति† (इस प्रकार)
द्वेषः	= द्वेष	एतत्	= यह
सुखम्	= सुख	क्षेत्रम्	= क्षेत्र
दुःखम्	= दुःख (और)	सविकारम्	= विकारोंके सहित‡
संघातः	= स्थूल देहका पिण्ड (एवं)	समासेन	= संक्षेपसे
चेतना	= चेतनता* (और)	उदाहृतम्	= कहा गया

ज्ञानके साधनोंमें अमानित्वादि ९ गुणोंका कथन ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

अमानित्वम्, अदम्भित्वम्, अहिंसा, क्षान्तिः, आर्जवम्,
आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम् आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन—

अमानित्वम्	= श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव	अहिंसा	= प्राणीमात्रको किसी प्रकार भी न सताना (और)
अदम्भित्वम्	= दम्भाचरण-का अभाव	क्षान्तिः	= क्षमाभाव

* शरीर और अन्तःकरणकी एक प्रकारकी चेतनशक्ति ।

† गीता अध्याय १८ श्लोक ३३-३४-३५ में देखना चाहिये ।

‡ पाँचवें श्लोकमें कहा हुआ तो क्षेत्रका स्वरूप समझना चाहिये और इस श्लोकमें कहे हुए इच्छादि क्षेत्रके विकार समझने चाहिये ।

(तथा)

आर्जवम्	= मन वाणीकी सरलता	शौचम्	= बाहर भीतर-की शुद्धि*
आचार्योपासनम्	= श्रद्धा भक्ति-सहित गुरुकी सेवा	स्थैर्यम्	= अन्तःकरण-की स्थिरता
		आत्म-विनिग्रहः	= मन और इन्द्रियों-सहित शरीरका निग्रह

ज्ञानके साधनोंमें अहंकारके अभावका और वैराग्यका कथन ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इन्द्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहंकारः, एव, च, जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

तथा—

इन्द्रियार्थेषु	= इस लोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंमें		(एवं)
		जन्म	= जन्म
		मृत्यु	= मृत्यु
		जरा	= जरा (और)
वैराग्यम्	= आसक्तिका अभाव	व्याधि	= रोग आदिमें
		दुःख	= दुःख
च	= और	दोष	= दोषोंका
अनहंकारः एव	= अहंकारका भी अभाव	अनु-दर्शनम्	= बारम्बार विचार करना

* सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं तथा राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कही जाती है ।

ज्ञानके साधनोंमें आसक्ति के अभाव और चित्तकी समता-का कथन ।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

असक्तिः, अनभिष्वङ्गः, पुत्रदारगृहादिषु,
नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

तथा—

पुत्रदार-गृहादिषु	= पुत्र स्त्री घर और धनादिमें	च	= तथा
असक्तिः	= आसक्तिका अभाव (और)	इष्टानिष्टोप-पत्तिषु	= प्रिय अप्रिय-की प्राप्तिमें
		नित्यम्	= सदा ही
अनभिष्वङ्गः	= ममताका न होना	समचित्तत्वम्	= चित्तका सम रहना—

अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूलके प्राप्त होनेपर हर्ष-शोकादि विकारोंका न होना ।

ज्ञानके साधनोंमें अव्यभिचारिणी भक्तिका और एकान्तदेशके सेवनका कथन ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी,
विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि ॥ १० ॥

और—

मयि	= मुझ परमेश्वरमें	अव्यभि-चारिणी	= अव्यभिचारिणी
अनन्य-योगेन	= एकीभावसे स्थितिरूप ध्यान-योगके द्वारा	भक्तिः	= भक्ति*
		च	= तथा

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करना अव्यभिचारिणी भक्ति है ।

विविक्त-देश-सेवित्वम्	= एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव (और)	जनसंसदि	= विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें
		अरतिः	= प्रेमका न होना।

ज्ञानके साधनोंमें निदिध्यासनका कथन और ज्ञानके साधनोंसे विपरीत गुणोंको अज्ञान बताना।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्,
एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा ॥११॥

तथा–

अध्यात्म-ज्ञान-नित्यत्वम्	= अध्यात्म-ज्ञानमें* नित्य स्थिति (और)	ज्ञानम्	= ज्ञान है† (और)
		यत्	= जो
		अतः	= इससे
तत्त्व-ज्ञानार्थ-दर्शनम्	= तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना	अन्यथा	= विपरीत है
		(तत्)	= वह
		अज्ञानम्	= अज्ञान है‡
		इति	= ऐसे
एतत्	= यह सब (तो)	प्रोक्तम्	= कहा है

* जिस ज्ञानके द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाय उस ज्ञानका नाम अध्यात्मज्ञान है।

† इस अध्यायके श्लोक ७ से लेकर यहांतक जो साधन कहे हैं वे सब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें हेतु होनेसे ज्ञान नामसे कहे गये हैं।

‡ ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे विपरीत जो मान, दम्भ, हिंसा आदि हैं वे अज्ञानकी वृद्धिमें हेतु होनेसे अज्ञान नामसे कहे गये हैं।

जाननेयोग्य परमात्माके स्वरूपका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा और उसके निर्गुणस्वरूपका वर्णन ।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते,
अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते ॥१२॥

और हे अर्जुन—

यत् = जो
ज्ञेयम् = जाननेके योग्य है
(च) = तथा
यत् = जिसको
ज्ञात्वा = जानकर
(मनुष्य)
अमृतम् = परमानन्दको
अश्नुते = प्राप्त होता है
तत् = उसको
प्रवक्ष्यामि = { अच्छी प्रकार कहूंगा

तत् = वह
अनादिमत् = आदिरहित
परम् = परम
ब्रह्म = ब्रह्म
(अकथनीय होनेसे)
न = न
सत् = सत्
(कहा जाता है और)
न = न
असत् = असत् ही
उच्यते = कहा जाता है

परमात्माके विश्वरूपका कथन ।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

सर्वतःपाणिपादम्, तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्,
सर्वतःश्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति ॥१३॥

परन्तु—

तत् = वह
सर्वतःपाणिपादम् = { सब ओरसे हाथ पैरवाला
(एवं)

सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् = { सब ओरसे नेत्र सिर और मुखवाला
(तथा)

सर्वतः-श्रुतिमत् = { सब ओरसे श्रोत्रवाला
(अस्ति) = है
(यतः) = क्योंकि (वह)
लोके = संसारमें
सर्वम् = सबको
आवृत्य = व्याप्त करके
तिष्ठति = स्थित है*

परमेश्वरके सगुण और निर्गुण स्वरूप-की एकताका कथन।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्,
असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च ॥१४॥

और—

सर्वेन्द्रिय-गुणाभासम् = { संपूर्ण इन्द्रियों-के विषयोंको जाननेवाला है
(परन्तु वास्तवमें)
सर्वेन्द्रिय-विवर्जितम् = { सब इन्द्रियोंसे रहित है
च = तथा
असक्तम् = आसक्तिरहित (और)
निर्गुणम् = गुणोंसे अतीत (हुआ)
एव = { भी (अपनी योगमायासे)
सर्वभृत् = { सबको धारण पोषण करनेवाला
च = और
गुणभोक्तृ = { गुणोंको भोगने-वाला है

सर्वात्मरूपसे परमात्मा की व्यापकता का कथन।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥१५॥

बहिः, अन्तः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च,
सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अन्तिके, च, तत् ॥

* आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका कारणरूप होनेसे उनको व्याप्त करके स्थित है वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होनेसे संपूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है।

तथा वह परमात्मा—

भूतानाम् = { चराचर सब भूतोंके	तत् = वह
बहिः = बाहर	सूक्ष्मत्वात् = सूक्ष्म होनेसे
अन्तः = भीतर परिपूर्ण है	अविज्ञेयम् = अविज्ञेय है*
च = और	च = तथा
चरम् = चर	अन्तिके = अति समीपमें†
अचरम् = अचररूप	च = और
एव = भी (वही) है	दूरस्थम् = दूरमें भी स्थित‡
च = और	तत् = वही है

उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले परमेश्वरके सर्वव्यापी स्वरूपका कथन।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्, भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च ॥ १६ ॥

च = और (वह)	च = भी
अविभक्तम् = { विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण हुआ	भूतेषु = { चराचर संपूर्ण भूतोंमें
	विभक्तम् = पृथक्-पृथक्के
	इव = सदृश

* जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित हुआ जल सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है।

† वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सर्वका आत्मा होनेसे अत्यन्त समीप है।

‡ श्रद्धारहित अज्ञानी पुरुषोंके लिये न जाननेके कारण बहुत दूर है।

स्थितम् = { स्थित* (प्रतीत होता है तथा)
तत् = वह
ज्ञेयम् = { जानने योग्य परमात्मा
भूतभर्तृ = { विष्णुरूपसे भूतोंको धारण पोषण करनेवाला
च = और
ग्रसिष्णु = { रुद्ररूपसे संहार करनेवाला
च = तथा
प्रभविष्णु = { ब्रह्मारूपसे सबका उत्पन्न करनेवाला है

ज्ञानद्वारा प्राप्त होने योग्य परमात्माके परम प्रकाशमय स्वरूपका कथन।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥ १७॥

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते,
ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम् ॥ १७॥

और–

तत् = वह ब्रह्म
ज्योतिषाम् = ज्योतियोंका
अपि = भी
ज्योतिः = ज्योति† (एवं)
तमसः = मायासे
परम् = अति परे
उच्यते = कहा जाता है
(तथा वह परमात्मा)
ज्ञानम् = बोधस्वरूप (और)
ज्ञेयम् = { जाननेके योग्य है (एवं)
ज्ञानगम्यम् = { तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाला

* जैसे महाकाश विभागरहित स्थित हुआ भी घड़ोंमें पृथक्-पृथक्के सदृश प्रतीत होता है वैसे ही परमात्मा सब भूतोंमें एकरूपसे स्थित हुआ भी पृथक्-पृथक्की भाँति प्रतीत होता है ।

† गीता अध्याय १५ श्लोक १२ में देखना चाहिये ।

(और)		हृदि	=हृदयमें
सर्वस्य	=सबके	विष्ठितम्	=स्थित है

क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेयका तत्त्व जानने से भगवत् प्राप्ति होनेका कथन।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः, मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते ॥१८॥

हे अर्जुन—

इति	=इस प्रकार	समासतः	=संक्षेपसे
क्षेत्रम्	=क्षेत्र*	उक्तम्	=कहा गया
तथा	=तथा	एतत्	=इसको
ज्ञानम्	=ज्ञान†	विज्ञाय	=तत्त्वसे जानकर
च	=और	मद्भक्तः	=मेरा भक्त
ज्ञेयम्	=जाननेयोग्य परमात्माका स्वरूप‡	मद्भावाय	=मेरे स्वरूपको
		उपपद्यते	=प्राप्त होता है

प्रकृति पुरुषकी अनादिता तथा प्रकृतिसे विकार और गुणोंकी उत्पत्तिका कथन।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि, विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

और हे अर्जुन—

प्रकृतिम्	=प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी मेरी माया	च	=और
		पुरुषम्	=जीवात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ

---

* श्लोक ५-६ में विकारसहित क्षेत्रका स्वरूप कहा है।

† श्लोक ७ से ११ तक ज्ञान अर्थात् ज्ञानका साधन कहा है।

‡ श्लोक १२ से १७ तक ज्ञेयका स्वरूप कहा है।

उभौ	= इन दोनोंको	गुणान्	= { त्रिगुणात्मक संपूर्ण पदार्थोंको
एव	= ही (तूं)	अपि	= भी
अनादी	= अनादि	प्रकृति-संभवान् एव	= प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए
विद्धि	= जान	विद्धि	= जान
च	= और		
विकारान्	= { रागद्वेषादि विकारोंको		
च	= तथा		

कार्य-करणकी उत्पत्तिमें प्रकृतिकी और सुख-दुःखोंके भोगनेमें पुरुष की हेतुताका कथन।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते,
पुरुषः, सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते ॥२०॥

क्योंकि—

कार्यकरण-कर्तृत्वे	= { कार्य और करणके* उत्पन्न करनेमें	पुरुषः	= जीवात्मा
हेतुः	= हेतु	सुख-दुःखानाम्	= सुखदुःखोंके
प्रकृतिः	= प्रकृति	भोक्तृत्वे	= { भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें
उच्यते	= कही जाती है (और)	हेतुः	= हेतु
		उच्यते	= कहा जाता है

*आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध— इनका नाम कार्य है। बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा—इन १३ का नाम करण है।

प्रकृतिके सङ्गसे पुरुषको भोग और नाना योनियोंकी प्राप्ति।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुङ्क्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्, कारणम्, गुणसङ्गः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

परन्तु—

प्रकृतिस्थः = { प्रकृतिमें* स्थित हुआ	(और इन)
हि = ही	गुणसङ्गः = गुणोंका सङ्ग
पुरुषः = पुरुष	(एव) = ही
प्रकृतिजान् = { प्रकृतिसे उत्पन्न हुए	अस्य = इस जीवात्माके
गुणान् = { त्रिगुणात्मक सब पदार्थोंको	सदसद्योनि-जन्मसु = { अच्छी बुरी योनियोंमें जन्म लेनेमें
भुङ्क्ते = भोगता है	कारणम् = कारण है†

पुरुषके स्वरूप-का निरूपण।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२२॥

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः, परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः ॥२२॥

वास्तवमें तो यह—

पुरुषः = पुरुष	अस्मिन् = इस

* प्रकृति शब्दका अर्थ गीता अध्याय ७ श्लोक १४ में कही हुई भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया समझना चाहिये।

† सत्त्वगुणके सङ्गसे देवयोनिमें एवं रजोगुणके सङ्गसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके सङ्गसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म होता है।

देहे = देहमें
(स्थितः) = स्थित हुआ
अपि = भी
परः = पर*
(एव) = ही है
(केवल)
उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमन्ता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता
(एवं)
भर्ता = सबको धारण करनेवाला होनेसे भर्ता
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता (तथा)
महेश्वरः = ब्रह्मादिकोंका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा
इति = ऐसा
उक्तः = कहा गया है

प्रकृति पुरुषको तत्त्वसे जाननेका फल ।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह, सर्वथा, वर्तमानः, अपि, न, सः, भूयः, अभिजायते ॥२३॥

एवम् = इस प्रकार
पुरुषम् = पुरुषको
च = और
गुणैः = गुणोंके
सह = सहित
प्रकृतिम् = प्रकृतिको
यः = जो मनुष्य
वेत्ति = तत्त्वसे जानता है†

* अर्थात् त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ।

† दृश्यमात्र संपूर्ण जगत् मायाका कार्य होनेसे क्षणभङ्गुर, नाशवान्, जड़ और

सः	=वह	अभिजायते	=जन्मता है अर्थात् पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है
सर्वथा	=सब प्रकारसे		
वर्तमानः	=बर्तता हुआ		
अपि	=भी		
भूयः	=फिर		
न	=नहीं		

ध्यानयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोगसे भगवत्प्राप्तिका कथन।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यन्ति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना,
अन्ये, सांख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे ॥२४॥

हे अर्जुन ! उस परम पुरुष–

आत्मानम्	=परमात्माको	ध्यानेन	=ध्यानके द्वारा*
केचित्	=कितने ही मनुष्य तो	आत्मनि	=हृदयमें
आत्मना	=शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे	पश्यन्ति	=देखते हैं (तथा)
		अन्ये	=अन्य (कितने ही)
		सांख्येन	=ज्ञान†

अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध बोधस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर संपूर्ण मायिक पदार्थोंके सङ्गका सर्वथा त्याग करके परमपुरुष परमात्मामें ही एकीभावसे नित्य स्थित रहनेका नाम उनको तत्त्वसे जानना है ।

* जिसका वर्णन गीता अध्याय ६ में श्लोक ११ से ३२ तक विस्तारपूर्वक किया है ।

† जिसका वर्णन गीता अध्याय २ में श्लोक ११ से ३० तक विस्तारपूर्वक किया है ।

योगेन	= योगके द्वारा (देखते हैं)	कर्मयोगेन	= निष्काम कर्म-योगके द्वारा*
च	= और	(पश्यन्ति)	= देखते हैं
अपरे	= अपर (कितने ही)		

महान् पुरुषों-के कथनानुसार उपासना करने-से भगवत्-प्राप्तिका कथन।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

अन्ये, तु, एवम्, अजानन्तः, श्रुत्वा, अन्येभ्यः, उपासते,
ते, अपि, च, अतितरन्ति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

तु	= परन्तु	उपासते	= उपासना करते हैं†
अन्ये	= इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं वे (स्वयम्)	च	= और
		ते	= वे
		श्रुति-परायणाः	= सुननेके परायण हुए पुरुष
एवम्	= इस प्रकार		
अजानन्तः	= न जानते हुए	अपि	= भी
अन्येभ्यः	= दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जानने-वाले पुरुषोंसे	मृत्युम्	= मृत्युरूप संसार सागरको
श्रुत्वा	= सुनकर ही	अतितरन्ति एव	= निःसन्देह तर जाते हैं

क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगसे जगत्-की उत्पत्तिका कथन।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

* जिसका वर्णन गीता अध्याय २ श्लोक ४० से अध्यायसमाप्तिपर्यन्त विस्तारपूर्वक किया है ।

† अर्थात् उन पुरुषोंके कहनेके अनुसार ही श्रद्धासहित तत्पर हुए साधन करते हैं ।

यावत्, संजायते, किंचित्, सत्त्वम्, स्थावरजङ्गमम्,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ ॥२६॥

भरतर्षभ	=हे अर्जुन	तत्	=उस संपूर्णको
यावत्	=यावन्मात्र		(तूं)
किंचित्	=जो कुछ भी	क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-संयोगात्	=क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही
स्थावरजङ्गमम्	=स्थावर जङ्गम		(उत्पन्न हुई)
सत्त्वम्	=वस्तु		
संजायते	=उत्पन्न होती है	विद्धि	=जान

अर्थात् प्रकृति और पुरुषके परस्परके सम्बन्धसे ही संपूर्ण जगत्की स्थिति है, वास्तवमें तो संपूर्ण जगत् नाशवान् और क्षणभङ्गुर होनेसे अनित्य है।

अविनाशी परमेश्वर को सर्वत्र समभाव-से स्थित देखने-वालेकी प्रशंसा।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

समम्, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्तम्, परमेश्वरम्,
विनश्यत्सु, अविनश्यन्तम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति ॥२७॥

इस प्रकार जानकर—

यः	=जो पुरुष	परमेश्वरम्	=परमेश्वरको
विनश्यत्सु	=नष्ट होते हुए	समम्	=समभावसे
सर्वेषु	=सब	तिष्ठन्तम्	=स्थित
भूतेषु	=चराचर भूतोंमें	पश्यति	=देखता है
		सः	=वही
अविनश्यन्तम्	=नाशरहित	पश्यति	=देखता है

परमेश्वरको सर्वत्र समभावसे स्थित देखनेका फल।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८॥

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्, न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥२८॥

हि	= क्योंकि (वह पुरुष)	आत्मना	= अपने द्वारा
सर्वत्र	= सबमें	आत्मानम्	= आपको
समवस्थितम्	= समभावसे स्थित हुए	न हिनस्ति	= नष्ट नहीं करता है*
ईश्वरम्	= परमेश्वरको	ततः	= इससे (वह)
समम्	= समान	पराम्	= परम
पश्यन्	= देखता हुआ	गतिम्	= गतिको
		याति	= प्राप्त होता है

आत्माको अकर्ता देखनेवालेकी प्रशंसा।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः, यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्तारम्, सः, पश्यति ॥२९॥

च	= और	क्रियमाणानि	= किये हुए
यः	= जो पुरुष	(पश्यति)	= देखता है†
कर्माणि	= संपूर्ण कर्मोंको	तथा	= तथा
सर्वशः	= सब प्रकारसे	आत्मानम्	= आत्माको
प्रकृत्या	= प्रकृतिसे	अकर्तारम्	= अकर्ता
एव	= ही	पश्यति	= देखता है

* अर्थात् शरीरका नाश होनेसे अपने आत्माका नाश नहीं मानता है।

† अर्थात् इस बातको तत्त्वसे समझ लेता है कि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए संपूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं।

सः	=वही	पश्यति	=देखता है

संसारको परमात्मा में स्थित और परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ देखनेका फल।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति,
ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, संपद्यते, तदा ॥३०॥

और यह पुरुष—

यदा	=जिस कालमें	ततः	=उस परमात्माके संकल्पसे
भूत-पृथग्भावम्	=भूतोंके न्यारे न्यारे भावको	एव	=ही
एकस्थम्	=एक परमात्मा-के संकल्पके आधार स्थित	विस्तारम्	=संपूर्ण भूतोंका विस्तार
		(पश्यति)	=देखता है
अनुपश्यति	=देखता है	तदा	=उस कालमें
च	=तथा	ब्रह्म	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
		संपद्यते	=प्राप्त होता है

अविनाशी परमात्मा गुणातीत होनेसे न कर्ता है और न लिपायमान होता है इस विषयका कथन।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः,
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते ॥३१॥

कौन्तेय	=हे अर्जुन	निर्गुणत्वात्	=गुणातीत होनेसे
अनादित्वात्	=अनादि होनेसे (और)	अयम्	=यह
		अव्ययः	=अविनाशी

परमात्मा	= परमात्मा	न	= न
शरीरस्थः	= { शरीरमें स्थित हुआ	करोति	= करता है (और)
अपि	= भी (वास्तवमें)	न	= न
		लिप्यते	= { लिपायमान होता है

आकाश के दृष्टान्तसे आत्मा-की निर्लेपताका कथन ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते, सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते ॥३२॥

यथा	= जिस प्रकार	सर्वत्र	= सर्वत्र
सर्वगतम्	= { सर्वत्र व्याप्त हुआ (भी)	देहे	= देहमें
		अवस्थितः	= स्थित हुआ भी
आकाशम्	= आकाश	आत्मा	= आत्मा (गुणातीत होनेके कारण देहके गुणोंसे)
सौक्ष्म्यात्	= { सूक्ष्म होनेके कारण		
न उपलिप्यते	= { लिपायमान नहीं होता है	न उपलिप्यते	= { लिपायमान नहीं होता है
तथा	= वैसे ही		

सूर्यके दृष्टान्तसे प्रकाश-स्वरूप आत्माके अकर्ता-पनका कथन ।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः, क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत ॥३३॥

भारत	= हे अर्जुन	एकः	= एक ही
यथा	= जिस प्रकार	रविः	= सूर्य

इमम्	=इस	क्षेत्री	=एक ही आत्मा
कृत्स्नम्	=संपूर्ण	कृत्स्नम्	=संपूर्ण
लोकम्	=ब्रह्माण्डको	क्षेत्रम्	=क्षेत्रको
प्रकाशयति	=प्रकाशित करता है	प्रकाशयति	=प्रकाशित करता है—
तथा	=उसी प्रकार		

अर्थात् नित्य बोधस्वरूप एक आत्माकी ही सत्तासे संपूर्ण जडवर्ग प्रकाशित होता है ।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा प्रकृतिसे छूटनेके उपायको जाननेका फल ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अन्तरम्, ज्ञानचक्षुषा, भूतप्रकृतिमोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम् ॥ ३४ ॥

एवम्	=इस प्रकार	ये	=जो पुरुष
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः	=क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके	ज्ञानचक्षुषा	=ज्ञाननेत्रोंद्वारा
अन्तरम्	=भेदको*	विदुः	=तत्त्वसे जानते हैं
च	=तथा	ते	=वे महात्मा जन
भूतप्रकृतिमोक्षम्	=विकारसहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको	परम्	=परब्रह्म परमात्माको
		यान्ति	=प्राप्त होते हैं

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

* क्षेत्रको जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी जानना ही उनके भेदको जानना है ।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ४ तक ज्ञानकी महिमा और प्रकृति-पुरुषसे जगत्‌की उत्पत्ति। (५—१८) सत्, रज, तम तीनों गुणोंका विषय। (१९—२७) भगवत्‌-प्राप्तिका उपाय और गुणातीत पुरुषके लक्षण।

श्रीभगवानुवाच

अति उत्तम परम ज्ञानको कथन करनेकी प्रतिज्ञा और उसकी महिमा।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्,
यत्, ज्ञात्वा, मुनयः, सर्वे, पराम्, सिद्धिम्, इतः, गताः ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन—

ज्ञानानाम्	=ज्ञानोंमें भी	ज्ञात्वा	=जानकर
उत्तमम्	=अति उत्तम	सर्वे	=सब
परम्	=परम	मुनयः	=मुनिजन
ज्ञानम्	=ज्ञानको (मैं)	इतः	=इस संसारसे (मुक्त होकर)
भूयः	=फिर (भी) (तेरे लिये)	पराम्	=परम
प्रवक्ष्यामि	=कहूंगा (कि)	सिद्धिम्	=सिद्धिको
यत्	=जिसको	गताः	=प्राप्त हो गये हैं

["] **इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।**
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः,
सर्गे, अपि, न, उपजायन्ते, प्रलये, न, व्यथन्ति, च ॥ २ ॥

हे अर्जुन–

इदम्	=इस	सर्गे	=सृष्टिके आदिमें(पुनः)
ज्ञानम्	=ज्ञानको	न उपजायन्ते	=उत्पन्न नहीं होते हैं
उपाश्रित्य	=आश्रय करके अर्थात् धारण करके	च	=और
		प्रलये	=प्रलयकालमें
मम	=मेरे	अपि	=भी
साधर्म्यम्	=स्वरूपको	न व्यथन्ति	=व्याकुल नहीं होते हैं
आगताः	=प्राप्त हुए पुरुष		

क्योंकि उनकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवसे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं।

प्रकृति-पुरुषके संयोगसे सर्वभूतोंकी उत्पत्तिका कथन।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

मम, योनिः, महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्, दधामि, अहम्, संभवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत ॥ ३ ॥

भारत	=हे अर्जुन	अहम्	=मैं
मम	=मेरी	तस्मिन्	=उस योनिमें
महत् ब्रह्म	=महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया	गर्भम्	=चेतनरूप बीजको
	(संपूर्ण भूतोंकी)	दधामि	=स्थापन करता हूं
योनिः	=योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है (और)	ततः	=उस जड़चेतनके संयोगसे
		सर्वभूतानाम्	=सब भूतोंकी

संभवः = उत्पत्ति	भवति = होती है

["] **सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।**
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

सर्वयोनिषु, कौन्तेय, मूर्तयः, संभवन्ति, याः,
तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता ॥ ४ ॥

तथा—

कौन्तेय = हे अर्जुन	महत्ब्रह्म = त्रिगुणमयीमाया (तो)
सर्वयोनिषु = (नाना प्रकारकी) सब योनियोंमें	योनिः = गर्भको धारण करनेवाली माता है (और)
याः = जितनी	अहम् = मैं
मूर्तयः = मूर्तियां अर्थात् शरीर	बीजप्रदः = बीजको स्थापन करनेवाला
संभवन्ति = उत्पन्न होते हैं	पिता = पिता हूं
तासाम् = उन सबकी	

प्रकृतिसे उत्पन्न हुए तीनों गुणों-द्वारा जीवात्मा-के बांधे जाने-का कथन ।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसंभवाः,
निबध्नन्ति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम् ॥ ५ ॥

तथा—

महाबाहो = हे अर्जुन	प्रकृतिसंभवाः = प्रकृतिसे उत्पन्न हुए
सत्त्वम् = सत्त्वगुण	
रजः = रजोगुण (और)	गुणाः = तीनों गुण
तमः = तमोगुण	अव्ययम् = (इस) अविनाशी
इति = ऐसे (यह)	देहिनम् = जीवात्माको

देहे =शरीरमें | निबध्नन्ति =बांधते हैं

सत्त्वगुणद्वारा जीवात्माके बांधे जानेका प्रकार।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ ६ ॥

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्, सुखसङ्गेन, बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन, च, अनघ ॥ ६ ॥

अनघ =हे निष्पाप
तत्र =उन तीनों गुणोंमें
प्रकाशकम् =प्रकाश करनेवाला
अनामयम् =निर्विकार
सत्त्वम् =सत्त्वगुण (तो)
निर्मलत्वात् =निर्मल होनेके कारण
सुखसङ्गेन =सुखकी आसक्तिसे
च =और
ज्ञानसङ्गेन =ज्ञानकी आसक्तिसे अर्थात् ज्ञानके अभिमानसे
बध्नाति =बांधता है

रजोगुणद्वारा जीवात्माके बांधे जानेका प्रकार।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥

रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम्, तत्, निबध्नाति, कौन्तेय, कर्मसङ्गेन, देहिनम् ॥ ७ ॥

तथा—

कौन्तेय =हे अर्जुन
रागात्मकम् =रागरूप
रजः =रजोगुणको
तृष्णासङ्गसमुद्भवम् =कामना और आसक्तिसे उत्पन्न हुआ
विद्धि =जान
तत् =वह
देहिनम् =(इस) जीवात्माको
कर्मसङ्गेन =कर्मोंकी और उनके फलकी आसक्तिसे
निबध्नाति =बांधता है

तमोगुणद्वारा जीवात्माके बांधे जानेका प्रकार।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्, प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत ॥ ८ ॥

तु =और
भारत =हे अर्जुन
सर्वदेहिनाम् = सर्वदेहाभिमानियोंके
मोहनम् =मोहनेवाले
तमः =तमोगुणको
अज्ञानजम् = अज्ञानसे उत्पन्न हुआ
विद्धि =जान
तत् =वह
(देहिनम्) =इस जीवात्माको
प्रमादालस्यनिद्राभिः = प्रमाद* आलस्य† और निद्राके द्वारा
निबध्नाति =बांधता है

सुख, कर्म और प्रमादमें तीनों गुणों द्वारा जीवात्मा को जोड़ा जाना।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

सत्त्वम्, सुखे, संजयति, रजः, कर्मणि, भारत, ज्ञानम्, आवृत्य, तु, तमः, प्रमादे, संजयति, उत ॥ ९ ॥

क्योंकि—

भारत =हे अर्जुन
सत्त्वम् =सत्त्वगुण
सुखे =सुखमें
संजयति =लगाता है (और)
रजः =रजोगुण
कर्मणि =कर्ममें (लगाता है) (तथा)
तमः =तमोगुण
तु =तो
ज्ञानम् =ज्ञानको

* इन्द्रियां और अन्तःकरणकी व्यर्थ चेष्टाओंका नाम प्रमाद है।

† कर्तव्यकर्ममें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमताका नाम आलस्य है।

आवृत्य	= { आच्छादन करके अर्थात् ढकके	उत	= भी
प्रमादे	= प्रमादमें	संजयति	= लगाता है

दो गुणोंको दबाकर एक गुणके बढ़नेका कथन ।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत,
रजः, सत्त्वम्, तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा ॥१०॥

च	= और	सत्त्वम्	= सत्त्वगुणको
भारत	= हे अर्जुन	(अभिभूय)	= दबाकर
रजः	= रजोगुण (और)	तमः	= तमोगुण (बढ़ता है)
तमः	= तमोगुणको		
अभिभूय	= दबाकर	तथा	= वैसे
सत्त्वम्	= सत्त्वगुण	एव	= ही
भवति	= { होता है अर्थात् बढ़ता है	तमः	= तमोगुण (और)
		सत्त्वम्	= सत्त्वगुणको
च	= तथा	(अभिभूय)	= दबाकर
रजः	= रजोगुण (और)	रजः	= रजोगुण (बढ़ता है)

सत्त्वगुणकी वृद्धिके लक्षण ।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते, ज्ञानम्,
यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत ॥११॥

इसलिये—

यदा	= जिस कालमें	अस्मिन्	= इस

देहे = देहमें (तथा)
सर्वद्वारेषु = अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें
प्रकाशः = चेतनता
(च) = और
ज्ञानम् = बोधशक्ति
उपजायते = उत्पन्न होती है
तदा = उस कालमें
इति = ऐसा
विद्यात् = जानना चाहिये
उत = कि
सत्त्वम् = सत्त्वगुण
विवृद्धम् = बढ़ा है

रजोगुणकी वृद्धिके लक्षण।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

लोभः, प्रवृत्तिः, आरम्भः, कर्मणाम्, अशमः, स्पृहा,
रजसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, भरतर्षभ ॥ १२ ॥

और—

भरतर्षभ = हे अर्जुन
रजसि = रजोगुणके
विवृद्धे = बढ़नेपर
लोभः = लोभ (और)
प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा (तथा)
कर्मणाम् = सब प्रकारके कर्मोंका
(स्वार्थबुद्धिसे)
आरम्भः = आरम्भ (एवं)
अशमः = अशान्ति अर्थात् मनकी चञ्चलता
(और)
स्पृहा = विषय-भोगोंकी लालसा
एतानि = यह सब
जायन्ते = उत्पन्न होते हैं

तमोगुणकी वृद्धिके लक्षण।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

अप्रकाशः, अप्रवृत्तिः, च, प्रमादः, मोहः, एव, च,
तमसि, एतानि, जायन्ते, विवृद्धे, कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

तथा—

कुरुनन्दन	= हे अर्जुन	प्रमादः	=	प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा
तमसि	= तमोगुणके	च	=	और
विवृद्धे	= बढ़नेपर (अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें)	मोहः	=	निद्रादि अन्तः-करणकी मोहिनी वृत्तियां
अप्रकाशः	= अप्रकाश (एवं)			
अप्रवृत्तिः	= कर्तव्यकर्मोंमें अप्रवृत्ति	एतानि	=	यह सब
		एव	=	ही
च	= और	जायन्ते	=	उत्पन्न होते हैं

सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मरनेका फल।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्,
तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते ॥१४॥

और हे अर्जुन—

यदा	= जब	तु	=	तो
देहभृत्	= यह जीवात्मा	उत्तमविदाम्	=	उत्तम कर्म करनेवालोंके
सत्त्वे	= सत्त्वगुणकी			
प्रवृद्धे	= वृद्धिमें	अमलान्	=	मलरहित अर्थात् दिव्य स्वर्गादि
प्रलयम्	= मृत्युको			
याति	= प्राप्त होता है	लोकान्	=	लोकोंको
तदा	= तब	प्रतिपद्यते	=	प्राप्त होता है

रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धिमें मरनेका फल।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसङ्गिषु, जायते,
तथा, प्रलीनः, तमसि, मूढयोनिषु, जायते ॥१५॥

और—

रजसि = रजोगुणके बढ़नेपर*
प्रलयम् = मृत्युको
गत्वा = प्राप्त होकर
कर्मसङ्गिषु = कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें
जायते = उत्पन्न होता है

तथा = तथा
तमसि = तमोगुणके बढ़नेपर
प्रलीनः = मरा हुआ पुरुष (कीट पशु आदि)
मूढयोनिषु = मूढ़ योनियोंमें
जायते = उत्पन्न होता है

सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंका फल।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

कर्मणः, सुकृतस्य, आहुः, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्,
रजसः, तु, फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम् ॥१६॥

क्योंकि—

सुकृतस्य = सात्त्विक
कर्मणः = कर्मका
तु = तो
सात्त्विकम् = सात्त्विक अर्थात् सुख ज्ञान और वैराग्यादि
निर्मलम् = निर्मल
फलम् = फल

आहुः = कहा है (और)
रजसः = राजस कर्मका
फलम् = फल
दुःखम् = दुःख (एवं)
तमसः = तामस कर्मका
फलम् = फल
अज्ञानम् = अज्ञान (कहा है)

* अर्थात् जिस कालमें रजोगुण बढ़ता है उस कालमें।

सत्त्वगुणसे ज्ञान और रजोगुणसे लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञानकी उत्पत्ति।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

सत्त्वात्, संजायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च, प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च ॥१७॥

तथा–

सत्त्वात्	= सत्त्वगुणसे	च	= तथा
ज्ञानम्	= ज्ञान	तमसः	= तमोगुणसे
संजायते	= उत्पन्न होता है	प्रमादमोहौ	= प्रमाद* और मोह†
च	= और	भवतः	= उत्पन्न होते हैं (और)
रजसः	= रजोगुणसे	अज्ञानम्	= अज्ञान
एव	= निःसन्देह	एव	= भी (होता है)
लोभः	= लोभ (उत्पन्न होता है)		

सात्त्विक, राजस और तामस पुरुषोंकी गतिका कथन।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः, जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः ॥१८॥

इसलिये—

सत्त्वस्थाः	= सत्त्वगुणमें स्थित हुए पुरुष	राजसाः	= रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष
ऊर्ध्वम्	= स्वर्गादि उच्च लोकोंको	मध्ये	= मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही
गच्छन्ति	= जाते हैं (और)	तिष्ठन्ति	= रहते हैं (एवं)

*† इसी अध्यायके श्लोक १३ में देखना चाहिये।

जघन्य-गुण-वृत्तिस्थाः	= तमोगुणके कार्य-रूप निद्रा प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित हुए	अधः	= अधोगतिको अर्थात् कीट पशु आदि नीच योनियोंको
तामसाः	= तामस पुरुष	गच्छन्ति	= प्राप्त होते हैं

आत्माको अकर्ता और गुणातीत जाननेसे भगवत्-प्राप्ति।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

न, अन्यम्, गुणेभ्यः, कर्तारम्, यदा, द्रष्टा, अनुपश्यति, गुणेभ्यः, च, परम्, वेत्ति, मद्भावम्, सः, अधिगच्छति ॥१९॥

और हे अर्जुन—

यदा	= जिस कालमें	च	= और
द्रष्टा	= द्रष्टा*	गुणेभ्यः	= तीनों गुणोंसे
गुणेभ्यः	= तीनों गुणोंके सिवाय	परम्	= अति परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको
अन्यम्	= अन्य किसीको		
कर्तारम्	= कर्ता	वेत्ति	= तत्त्वसे जानता है
न	= नहीं	(तदा)	= उस कालमें
अनुपश्यति	= देखता है अर्थात् गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं† ऐसा देखता है	सः	= वह पुरुष
		मद्भावम्	= मेरे स्वरूपको
		अधिगच्छति	= प्राप्त होता है

* अर्थात् समष्टिचेतनमें एकीभावसे स्थित हुआ साक्षी पुरुष।

† त्रिगुणमयी मायासे उत्पन्न हुए अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंमें विचरना ही गुणोंका गुणोंमें बर्तना है।

[„] गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्, जन्ममृत्युजरादुःखैः, विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते ॥२०॥

तथा यह—

देही	=पुरुष	जन्ममृत्युजरादुःखैः	=जन्म मृत्यु-वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे
एतान्	=इन		
देहसमुद्भवान्	=स्थूल*शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप		
त्रीन्	=तीनों	विमुक्तः	=मुक्त हुआ
गुणान्	=गुणोंको	अमृतम्	=परमानन्दको
अतीत्य	=उल्लङ्घन करके	अश्नुते	=प्राप्त होता है

अर्जुन उवाच

गुणातीत पुरुषके विषयमें अर्जुन-के तीन प्रश्न।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

कैः, लिङ्गैः, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीतः, भवति, प्रभो, किमाचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्तते॥२१॥

इस प्रकार भगवान्‌के रहस्ययुक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा कि हे पुरुषोत्तम!

एतान्	=इन	त्रीन्	=तीनों

* बुद्धि, अहंकार और मन तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच भूत, पांच इन्द्रियोंके विषय, इस प्रकार इन २३ तत्त्वोंका पिण्डरूप यह स्थूल शरीर प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंका ही कार्य है इसलिये इन तीनों गुणोंको इसकी उत्पत्तिका कारण कहा है।

गुणान् =गुणोंसे
अतीतः =अतीत हुआ पुरुष
कैः लिङ्गैः = { किन किन लक्षणोंसे (युक्त)
भवति =होता है
च =और
किमाचारः = { किस प्रकारके आचरणोंवाला
(भवति) =होता है (तथा)
प्रभो =हे प्रभो (मनुष्य)
कथम् =किस उपायसे
एतान् =इन
त्रीन् =तीनों
गुणान् =गुणोंसे
अतिवर्तते =अतीत होता है

श्रीभगवानुवाच

पहिले और दूसरे प्रश्नके उत्तरमें गुणातीत पुरुषके लक्षणोंका और आचरणोंका वर्णन ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥

प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पाण्डव,
न, द्वेष्टि, संप्रवृत्तानि, न, निवृत्तानि, काङ्क्षति ॥२२॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पाण्डव =हे अर्जुन
(जो पुरुष)
प्रकाशम् = { सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको*
च =और
प्रवृत्तिम् = { रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको
च =तथा
मोहम् = { तमोगुणके कार्यरूप मोहको†
एव =भी
न =न (तो)
संप्रवृत्तानि =प्रवृत्त होनेपर
द्वेष्टि =बुरा समझता है
च =और
न =न

* अन्तःकरण और इन्द्रियादिकोंमें आलस्यका अभाव होकर जो एक प्रकारकी चेतनता होती है उसका नाम प्रकाश है ।

† निद्रा और आलस्य आदिकी बहुलतासे अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनशक्तिके लय होनेको यहाँ मोह नामसे समझना चाहिये ।

निवृत्तानि	= निवृत्त होनेपर (उनकी)	काङ्क्षति	= आकाङ्क्षा करता है*

[,,] उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते,
गुणाः, वर्तन्ते, इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इङ्गते ॥२३॥

तथा—

यः	= जो	इति	= ऐसा (समझता हुआ)
उदासीनवत्	= साक्षीके सदृश	यः	= जो (सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे)
आसीनः	= स्थित हुआ	अवतिष्ठति	= स्थित रहता है (एवं)
गुणैः	= गुणोंके द्वारा	न इङ्गते	= उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता है
न विचाल्यते	= विचलित नहीं किया जा सकता है (और)		
गुणाः एव	= गुण ही गुणोंमें		
वर्तन्ते	= वर्तते हैं†		

[,,] समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

* जो पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही नित्य एकीभावसे स्थित हुआ इस त्रिगुणमयी मायाके प्रपञ्चरूप संसारसे सर्वथा अतीत हो गया है उस गुणातीत पुरुषके अभिमानरहित अन्तःकरणमें तीनों गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहादि वृत्तियोंके प्रकट होने और न होनेपर किसी कालमें भी इच्छा, द्वेष आदि विकार नहीं होते हैं। यही उसके गुणोंसे अतीत होनेके प्रधान लक्षण है।

† इसी अध्यायके श्लोक १९ की टिप्पणीमें देखना चाहिये ।

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः,
तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

और जो–

स्वस्थः = निरन्तर आत्म-भावमें स्थित हुआ
समदुःखसुखः = दुःखसुखको समान समझनेवाला है (तथा)
समलोष्टाश्मकाञ्चनः = मिट्टी पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला (और)
धीरः = धैर्यवान् है (तथा)
तुल्यप्रियाप्रियः = जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है (और)
तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः = अपनी निन्दा स्तुतिमें भी समान भाववाला है

["] मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः,
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते ॥२५॥

तथा जो–

मानापमानयोः = मान और अपमानमें
तुल्यः = सम है (एवं)
मित्रारिपक्षयोः = मित्र और वैरीके पक्षमें (भी)
तुल्यः = सम है
सः = वह
सर्वारम्भपरित्यागी = संपूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष
गुणातीतः = गुणातीत
उच्यते = कहा जाता है

तीसरे प्रश्नके उत्तरमें भगवान्‌की अनन्यभक्तिसे गुणातीत होनेका वर्णन।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते,
सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥२६॥

च	=और	एतान्	=इन तीनों
यः	=जो पुरुष	गुणान्	=गुणोंको
अव्यभिचारेण	=अव्यभिचारी	समतीत्य	=अच्छी प्रकार उल्लङ्घन करके
भक्तियोगेन	=भक्तिरूप योगके द्वारा*	ब्रह्मभूयाय	=सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये
माम्	=मेरेको		
सेवते	=निरन्तर भजता है		
सः	=वह	कल्पते	=योग्य होता है

भगवत्स्वरूपकी महिमा।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च,
शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य, ऐकान्तिकस्य, च ॥२७॥

तथा हे अर्जुन ! उस—

अव्ययस्य	=अविनाशी	च	=तथा
ब्रह्मणः	=परब्रह्मका	शाश्वतस्य	=नित्य
च	=और	धर्मस्य	=धर्मका
अमृतस्य	=अमृतका	च	=और

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वासुदेव भगवान्‌को ही अपना स्वामी मानता हुआ स्वार्थ और अभिमानको त्यागकर श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे निरन्तर चिन्तन करनेको अव्यभिचारी भक्तियोग कहते हैं।

ऐकान्तिकस्य = { अखण्ड एकरस | अहम् = मैं
सुखस्य = आनन्दका | हि = ही
| प्रतिष्ठा = आश्रय हूं

अर्थात् उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख, यह सब मेरे ही नाम हैं, इसलिये इनका मैं परम आश्रय हूं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ६ तक संसारवृक्षका कथन और भगवत्प्राप्तिका उपाय। (७—११) जीवात्माका विषय। (१२—१५) प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका विषय। (१६—२०) क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तमका विषय।

श्रीभगवानुवाच

वृक्षरूपसे संसारका वर्णन और उसके जाननेवालेकी महिमा।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ १॥

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्, छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित्॥ १॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन—

ऊर्ध्वमूलम् = { आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले* और | अधःशाखम् = { ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले† (जिस)

* आदिपुरुष नारायण वासुदेव भगवान् ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होनेके कारण और सबसे ऊपर नित्यधाममें सगुणरूपसे वास करनेके कारण ऊर्ध्वनामसे कहे गये हैं और वे मायापति सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस संसाररूप वृक्षके कारण हैं, इसलिये संसारवृक्षको ऊर्ध्वमूलवाला कहते हैं।

† उस आदिपुरुष परमेश्वरसे उत्पत्तिवाला होनेके कारण तथा नित्य

अश्वत्थम्	= संसाररूप पीपलके वृक्षको	तम्	= उस संसाररूप वृक्षको
अव्ययम्	= अविनाशी*	यः	= जो पुरुष (मूलसहित)
प्राहुः	= कहते हैं (तथा)	वेद	= तत्त्वसे जानता है
यस्य	= जिसके	सः	= वह
छन्दांसि	= वेद†	वेदवित्	= वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है‡
पर्णानि	= पत्ते (कहे गये हैं)		

संसारवृक्षका विस्तार और उसको असङ्गशस्त्रसे छेदन करनेके लिये कथन।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः, विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसंततानि, कर्मानुबन्धीनि, मनुष्यलोके ॥ २ ॥

धामसे नीचे ब्रह्मलोकमें वास करनेके कारण हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माको परमेश्वरकी अपेक्षा अधः कहा है और वही इस संसारका विस्तार करनेवाला होनेसे इसकी मुख्य शाखा है इसलिये इस संसारवृक्षको अधःशाखावाला कहते हैं।

* इस वृक्षका मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकालसे इसकी परम्परा चली आती है इसलिये इस संसारवृक्षको अविनाशी कहते हैं।

† इस वृक्षकी शाखारूप ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले और यज्ञादिक कर्मोंके द्वारा इस संसारवृक्षकी रक्षा और वृद्धिके करनेवाले एवं शोभाको बढ़ानेवाले होनेसे वेद पत्ते कहे गये हैं।

‡ भगवान्‌की योगमायासे उत्पन्न हुआ संसार क्षणभङ्गुर, नाशवान् और दुःखरूप है, इसके चिन्तनको त्यागकर केवल परमेश्वरका ही नित्य निरन्तर अनन्य प्रेमसे चिन्तन करना वेदके तात्पर्यको जानना है।

और हे अर्जुन—

तस्य	=उस संसारवृक्षकी
गुण-प्रवृद्धाः	=तीनों गुणरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई (एवं)
विषय-प्रवालाः	=विषय*भोगरूप कोंपलोंवाली
शाखाः	=देव मनुष्य और तिर्यक् आदि योनि-रूप शाखाएँ†
अधः	=नीचे
च	=और
ऊर्ध्वम्	=ऊपर सर्वत्र
प्रसृताः	=फैली हुई हैं (तथा)
मनुष्य-लोके	=मनुष्ययोनिमें ‡
कर्मानु-बन्धीनि	=कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली
मूलानि	=अहंता ममता और वासनारूप जड़ें
(अपि)	=भी
अधः	=नीचे
च	=और
(ऊर्ध्वम्)	=ऊपर
अनु-संततानि	=सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पांचों स्थूल देह और इन्द्रियोंकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेके कारण उन शाखाओंकी कोंपलोंके रूपमें कहे गये हैं।

† मुख्य शाखारूप ब्रह्मासे संपूर्ण लोकोंके सहित देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनियोंकी उत्पत्ति और विस्तार हुआ है इसलिये उनका यहां शाखाओंके रूपमें वर्णन किया है।

‡ अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंको केवल मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली कहनेका कारण यह है कि अन्य सब योनियोंमें तो केवल पूर्वकृत कर्मोंके फलको भोगनेका ही अधिकार है और मनुष्ययोनिमें नवीन कर्मोंके करनेका भी अधिकार है।

["] न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अन्तः, न, च, आदिः, न, च, संप्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा ॥ ३ ॥

परन्तु—

अस्य	=इस संसारवृक्षका	आदिः	=आदि है †
रूपम्	=स्वरूप (जैसा कहा है)	च	=और
तथा	=वैसा	न	=न
इह	=यहां (विचारकालमें)	अन्तः	=अन्त है ‡
न	=नहीं	च	=तथा
उपलभ्यते	=पाया जाता है*	न	=न
(यतः)	=क्योंकि	संप्रतिष्ठा	=अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है §
न	=न (तो इसका)		

* इस संसारका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है और जैसा देखा-सुना जाता है वैसा तत्त्वज्ञान होनेके उपरान्त नहीं पाया जाता, जिस प्रकार आंख खुलनेके उपरान्त स्वप्नका संसार नहीं पाया जाता ।

† इसका आदि नहीं है यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबसे चली आती है इसका कोई पता नहीं है ।

‡ इसका अन्त नहीं है यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबतक चलती रहेगी इसका कोई पता नहीं है ।

§ इसकी अच्छी प्रकार स्थिति भी नहीं है यह कहनेका यह प्रयोजन है कि वास्तवमें यह क्षणभंगुर और नाशवान् है ।

(अतः)	= इसलिये	अश्वत्थम्	= संसाररूप पीपलके वृक्षको
एनम्	= इस	दृढेन	= दृढ़
सुविरूढ-मूलम्	= अहंता ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों-वाले	असङ्ग-शस्त्रेण	= वैराग्यरूप* शस्त्रद्वारा
		छित्त्वा	= काटकर†

परमपदकी प्राप्तिके निमित्त भगवान्‌के शरण होनेके लिये प्रेरणा ।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः, तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी ॥ ४ ॥

ततः	= उसके उपरान्त		(कि)
तत्	= उस	यस्मिन्	= जिसमें
पदम्	= परमपदरूप परमेश्वरको	गताः	= गये हुए पुरुष
		भूयः	= फिर
परिमार्गि-तव्यम्	= अच्छी प्रकार खोजना चाहिये	न निवर्तन्ति	= पीछे संसारमें नहीं आते हैं

* ब्रह्मलोकतकके भोग क्षणिक और नाशवान् हैं ऐसा समझकर इस संसारके समस्त विषयभोगोंमें सत्ता, सुख, प्रीति और रमणीयताका न भासना ही दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र है ।

† स्थावर-जङ्गमरूप यावन्मात्र संसारके चिन्तनका तथा अनादिकालसे अज्ञानके द्वारा दृढ़ हुई अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंका त्याग करना ही संसारवृक्षका अवान्तर मूलोंके सहित काटना है ।

च = और
यतः = जिस परमेश्वरसे (यह)
पुराणी = पुरातन
प्रवृत्तिः = संसारवृक्षकी प्रवृत्ति
प्रसृता = विस्तारको प्राप्त हुई है
तम् = उस
एव = ही
आद्यम् = आदि
पुरुषम् = पुरुष नारायणके (मैं)
प्रपद्ये = शरण हूं (इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके)

भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षण।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः, जितसङ्गदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः, द्वन्द्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसंज्ञैः, गच्छन्ति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः = नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका (तथा)
जितसङ्गदोषाः = जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिनने (और)
अध्यात्मनित्याः = परमात्माके स्वरूपमें है निरन्तर स्थिति जिनकी (तथा)
विनिवृत्तकामाः = अच्छी प्रकारसे नष्ट हो गयी है कामना जिनकी (ऐसे वे)
सुखदुःखसंज्ञैः = सुखदुःख-नामक
द्वन्द्वैः = द्वन्द्वोंसे
विमुक्ताः = विमुक्त हुए
अमूढाः = ज्ञानीजन
तत् = उस

अव्ययम्	=अविनाशी	गच्छन्ति	=प्राप्त होते हैं
पदम्	=परमपदको		

परमपदके लक्षण और उसकी महिमा।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशाङ्कः, न, पावकः,
यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥ ६ ॥

और—

तत्	=उस (स्वयम्प्रकाशमय परमपदको)	(भासयते)	=प्रकाशित कर सकता है (तथा)
न	=न	यत्	=जिस परम पदको
सूर्यः	=सूर्य	गत्वा	=प्राप्त होकर (मनुष्य)
भासयते	=प्रकाशित कर सकता है	न निवर्तन्ते	=पीछे संसारमें नहीं आते हैं
न	=न	तत्	=वही
शशाङ्कः	=चन्द्रमा (और)	मम	=मेरा
न	=न	परमम्	=परम
पावकः	=अग्नि ही	धाम	=धाम है*

जीवात्माके स्वरूपका कथन।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

मम, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः,
मनःषष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति ॥ ७ ॥

और हे अर्जुन—

जीवलोके	=इस देहमें	मम	=मेरा
जीवभूतः	=यह जीवात्मा	एव	=ही

* परमधामका अर्थ गीता अध्याय ८ श्लोक २१ में देखना चाहिये।

सनातनः = सनातन
अंशः = अंश है*
(और वही इन)
प्रकृतिस्थानि = { त्रिगुणमयी मायामें स्थित हुई
मनःषष्ठानि = { मनसहित पांचों
इन्द्रियाणि = इन्द्रियोंको
कर्षति = { आकर्षण करता है

वायुके दृष्टान्तसे जीवात्मा के गमनका विषय।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८ ॥

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः, गृहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गन्धान्, इव, आशयात् ॥८॥

कैसे कि—

वायुः = वायु
आशयात् = गन्धके स्थानसे
गन्धान् = गन्धको
इव = जैसे
(ग्रहण करके ले जाता है वैसे ही)
ईश्वरः = { देहादिकोंका स्वामी जीवात्मा
अपि = भी
यत् (शरीरम्) = { जिस पहिले शरीरको
उत्क्रामति = त्यागता है
(तस्मात्) = उससे
एतानि = { इन मनसहित इन्द्रियोंको
गृहीत्वा = ग्रहण करके
च = फिर
यत् = जिस
शरीरम् = शरीरको
अवाप्नोति = प्राप्त होता है
(तस्मिन्) = उसमें
संयाति = जाता है

* जैसे विभागरहित स्थित हुआ भी महाकाश घटोंमें पृथक्-पृथक्की भांति प्रतीत होता है वैसे ही सब भूतोंमें एकीरूपसे स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक्-पृथक्की भांति प्रतीत होता है, इसीसे देहमें स्थित जीवात्माको भगवान्ने अपना सनातन अंश कहा है।

मन-इन्द्रियों-द्वारा जीवात्माके विषय-सेवनका कथन।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च, अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते ॥ ९ ॥

और उस शरीरमें स्थित हुआ—

अयम्	=यह जीवात्मा	च	=और
श्रोत्रम्	=श्रोत्र	मनः	=मनको
चक्षुः	=चक्षु	अधिष्ठाय	=आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारेसे
च	=और		
स्पर्शनम्	=त्वचाको		
च	=तथा	एव	=ही
रसनम्	=रसना	विषयान्	=विषयोंको
घ्राणम्	=घ्राण	उपसेवते	=सेवन करता है

सर्व अवस्थामें स्थित आत्माको मूढ़ नहीं जानते और ज्ञानी जानते हैं इस विषयका कथन।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भुञ्जानम्, वा, गुणान्वितम्, विमूढाः, न, अनुपश्यन्ति, पश्यन्ति, ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

परन्तु—

उत्क्रामन्तम्	=शरीर छोड़कर जाते हुएको	वा	=अथवा
वा	=अथवा	गुणान्वितम्	=तीनों गुणोंसे युक्त हुएको
स्थितम्	=शरीरमें स्थित हुएको (और)	अपि	=भी
		विमूढाः	=अज्ञानीजन
भुञ्जानम्	=विषयोंको भोगते हुएको	न	=नहीं
		अनुपश्यन्ति	=जानते हैं (केवल)

ज्ञान-चक्षुषः	= ज्ञानरूप नेत्रोंवाले	(ज्ञानीजन ही) पश्यन्ति	= तत्त्वसे जानते हैं

["] यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

यतन्तः, योगिनः, च, एनम्, पश्यन्ति, आत्मनि, अवस्थितम्,
यतन्तः, अपि, अकृतात्मानः, न, एनम्, पश्यन्ति, अचेतसः ॥ ११ ॥

क्योंकि–

योगिनः	= योगीजन (भी)	अकृतात्मानः	= जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया है (ऐसे)
आत्मनि	= अपने हृदयमें	अचेतसः	= अज्ञानीजन(तो)
अवस्थितम्	= स्थित हुए	यतन्तः	= यत्न करते हुए
एनम्	= इस आत्माको	अपि	= भी
यतन्तः	= यत्न करते हुए ही	एनम्	= इस आत्माको
पश्यन्ति	= तत्त्वसे जानते हैं	न	= नहीं
च	= और	पश्यन्ति	= जानते हैं

परमेश्वरके तेज-की महिमा ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

यत्, आदित्यगतम्, तेजः, जगत्, भासयते, अखिलम्,
यत्, चन्द्रमसि, यत्, च, अग्नौ, तत्, तेजः, विद्धि, मामकम् ॥ १२ ॥

और हे अर्जुन–

यत्	= जो	आदित्य-गतम्	= सूर्यमें स्थित हुआ
तेजः	= तेज		

अखिलम् = संपूर्ण
जगत् = जगत्को
भासयते = प्रकाशित करता है
च = तथा
यत् = जो (तेज)
चन्द्रमसि = चन्द्रमामें स्थित है (और)
यत् = जो (तेज)
अग्नौ = अग्निमें (स्थित है)
तत् = उसको (तूं)
मामकम् = मेरा ही
तेजः = तेज
विद्धि = जान

संपूर्ण जगत्को पृथिवी रूपसे धारण करनेवाले और चन्द्ररूपसे पोषण करनेवाले परमेश्वर के प्रभावका कथन।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

गाम्, आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम्, ओजसा,
पुष्णामि, च, ओषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः ॥१३॥

च = और
अहम् = मैं (ही)
गाम् = पृथ्वीमें
आविश्य = प्रवेश करके
ओजसा = अपनी शक्तिसे
भूतानि = सब भूतोंको
धारयामि = धारण करता हूं
च = और
रसात्मकः = रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय
सोमः = चन्द्रमा
भूत्वा = होकर
सर्वाः = संपूर्ण
ओषधीः = ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको
पुष्णामि = पुष्ट करता हूं

वैश्वानररूपसे संपूर्ण प्राणियोंके शरीर में परमात्मा की व्यापकता का कथन।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः,
प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम् ॥१४॥

तथा—

अहम्	= मैं (ही)	प्राणापान-समायुक्तः	= प्राण और अपानसे युक्त हुआ
प्राणिनाम्	= सब प्राणियोंके	चतुर्विधम्	= चार* प्रकारके
देहम्	= शरीरमें	अन्नम्	= अन्नको
आश्रितः	= स्थित हुआ	पचामि	= पचाता हूं
वैश्वानरः	= वैश्वानर अग्निरूप		
भूत्वा	= होकर		

प्रभावसहित भगवान् के स्वरूपका कथन।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, संनिविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदान्तकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम् ॥१५॥

च	= और		(तथा)
अहम्	= मैं (ही)	मत्तः	= मेरेसे ही
सर्वस्य	= सब प्राणियोंके	स्मृतिः	= स्मृति
हृदि	= हृदयमें	ज्ञानम्	= ज्ञान
संनिविष्टः	= अन्तर्यामी-रूपसे स्थित हूं	च	= और

* भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य ऐसे चार प्रकारके अन्न होते हैं, उनमें जो चबाकर खाया जाता है वह भक्ष्य है जैसे रोटी आदि और जो निगला जाता है वह भोज्य है जैसे दूध आदि तथा जो चाटा जाता है वह लेह्य है जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चोष्य है जैसे ऊख आदि।

अपोहनम्	= अपोहन*	वेद्यः	= जाननेके योग्य† हूं (तथा)
(भवति)	= होता है	वेदान्तकृत्	= वेदान्तका कर्ता
च	= और	च	= और
सर्वैः	= सब	वेदवित्	= वेदोंको जाननेवाला (भी)
वेदैः	= वेदोंद्वारा	अहम्	= मैं
अहम्	= मैं	एव	= ही (हूं)
एव	= ही		

क्षर और अक्षरके स्वरूपका कथन।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते ॥१६॥

तथा हे अर्जुन—

लोके	= इस संसारमें	एव	= भी
क्षरः	= नाशवान्	इमौ	= यह
च	= और	द्वौ	= दो प्रकारके‡
अक्षरः	= अविनाशी	पुरुषौ	= पुरुष हैं (उनमें)

* विचारके द्वारा बुद्धिमें रहनेवाले संशय, विपर्यय आदि दोषोंको हटानेका नाम अपोहन है ।

† सर्व वेदोंका तात्पर्य परमेश्वरको जनानेका है, इसलिये सब वेदोंद्वारा जाननेके योग्य एक परमेश्वर ही है ।

‡ गीता अध्याय ७ श्लोक ४-५में जो अपरा और परा प्रकृतिके नामसे कहे गये हैं तथा अध्याय १३ श्लोक १ में जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके नामसे कहे गये हैं उन्हीं दोनोंको यहां क्षर और अक्षरके नामसे वर्णन किया है ।

सर्वाणि =संपूर्ण
भूतानि ={ भूतप्राणियोंके शरीर तो
क्षरः =नाशवान्
च =और
कूटस्थः =जीवात्मा
अक्षरः =अविनाशी
उच्यते =कहा जाता है

पुरुषोत्तमके स्वरूपका कथन ।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः,
यः, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः ॥१७॥

तथा उन दोनोंसे–

उत्तमः =उत्तम
पुरुषः =पुरुष
तु =तो
अन्यः =अन्य ही है
(कि)
यः =जो
लोकत्रयम् =तीनों लोकोंमें
आविश्य =प्रवेश करके
बिभर्ति ={ सबका धारण पोषण करता है
(एवं)
अव्ययः =अविनाशी
ईश्वरः =परमेश्वर (और)
परमात्मा=परमात्मा
इति =ऐसे
उदाहृतः=कहा गया है

पुरुषोत्तमकी महिमा ।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितःपुरुषोत्तमः ॥१८॥

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः,
अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः ॥१८॥

यस्मात् =क्योंकि
अहम् =मैं
क्षरम् ={ नाशवान् जडवर्ग क्षेत्रसे तो

अतीतः	=सर्वथा अतीत हूं	लोके	=लोकमें
च	=और (मायामें स्थित)	च	=और
अक्षरात्	=अविनाशी जीवात्मासे	वेदे	=वेदमें
अपि	=भी	पुरुषोत्तमः	=पुरुषोत्तम (नामसे)
उत्तमः	=उत्तम हूं	प्रथितः	=प्रसिद्ध
अतः	=इसलिये	अस्मि	=हूं

भगवान्-को पुरुषोत्तम जाननेवाले की महिमा।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

यः, माम्, एवम्, असंमूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्,
सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत ॥१९॥

भारत	=हे भारत	सः	=वह
एवम्	=इस प्रकार तत्त्वसे	सर्ववित्	=सर्वज्ञ पुरुष
यः	=जो	सर्वभावेन	=सब प्रकारसे निरन्तर
असंमूढः	=ज्ञानी पुरुष		
माम्	=मेरेको	माम्	=मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही
पुरुषोत्तमम्	=पुरुषोत्तम		
जानाति	=जानता है	भजति	=भजता है

इस अध्यायमें कहे हुए उपदेश-का तत्त्व समझने से भगवत्प्राप्ति।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ,
एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत ॥२०॥

अनघ	=हे निष्पाप	भारत	=अर्जुन

इति	=ऐसे	एतत्	=इसको
इदम्	=यह	बुद्ध्वा	= { तत्त्वसे जान-कर (मनुष्य)
गुह्यतमम्	= { अति रहस्ययुक्त गोपनीय	बुद्धिमान्	=ज्ञानवान्
शास्त्रम्	=शास्त्र	च	=और
मया	=मेरेद्वारा	कृतकृत्यः	=कृतार्थ
उक्तम्	=कहा गया	स्यात्	=हो जाता है—

अर्थात् उसको और कुछ भी करना शेष नहीं रहता।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस अध्यायमें भगवान्‌ने अपना परम गोपनीय प्रभाव भली प्रकारसे कहा है। जो मनुष्य उक्त प्रकारसे भगवान्‌को सर्वोत्तम समझ लेता है फिर उसका मन एक क्षण भी भगवान्‌के चिन्तनका त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि जिस वस्तुको मनुष्य उत्तम समझता है उसीमें उसका प्रेम होता है और जिसमें प्रेम होता है उसीका चिन्तन होता है। अतएव सबका मुख्य कर्तव्य है कि भगवान्‌के परम गोपनीय प्रभावको भली प्रकार समझनेके लिये नाशवान् क्षणभङ्गुर संसारकी आसक्तिका सर्वथा त्याग करके एवं परमात्माके शरण होकर भजन और सत्सङ्गकी ही विशेष चेष्टा करें।

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ५ तक फलसहित दैवी और आसुरी संपदाका कथन । (६—२०) आसुरी संपदावालोंके लक्षण और उनकी अधोगतिका कथन । (२१—२४) शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्रके अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा ।

श्रीभगवानुवाच

दैवी संपदाके अभय आदि ९ गुणोंका कथन ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः,
दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम् ॥ १ ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन ! दैवी संपदा जिन पुरुषोंको प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है उनके लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूं, उनमेंसे—

अभयम् =सर्वथा भयका अभाव
सत्त्वसंशुद्धिः=अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता
ज्ञानयोग-व्यवस्थितिः = { तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति*
च =और
दानम् =सात्त्विक दान† (तथा)

* परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़ स्थितिका ही नाम ज्ञानयोगव्यवस्थिति समझना चाहिये ।

† गीता अध्याय १७ श्लोक २० में जिसका विस्तार किया है ।

दमः =इन्द्रियोंका दमन

यज्ञः ={ भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण (एवं)

स्वाध्यायः ={ वेदशास्त्रोंके पठनपाठनपूर्वक भगवत्के नाम और गुणोंका कीर्तन

च =तथा

तपः =स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहन करना (एवं)

आर्जवम् ={ शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता

दैवी संपदाके अहिंसा आदि ११ गुणोंका कथन।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शान्तिः, अपैशुनम्, दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम् ॥ २ ॥

तथा–

अहिंसा ={ मन वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना (तथा)

सत्यम् =यथार्थ और प्रिय भाषण*

अक्रोधः =अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना

त्यागः =कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग (एवं)

शान्तिः ={ अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव (और)

अपैशुनम् =किसीकी भी निन्दादि न करना (तथा)

भूतेषु =सब भूतप्राणियोंमें

* अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसेका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम सत्यभाषण है ।

दया = हेतुरहित दया

अलोलुप्त्वम् = इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना (और)

मार्दवम् = कोमलता (तथा)

ह्रीः = लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा (और)

अचापलम् = व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव

दैवी संपदाके तेज आदि ६ गुणोंका कथन।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता,
भवन्ति, संपदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत ॥ ३ ॥

तथा—

तेजः = तेज*

क्षमा = क्षमा

धृतिः = धैर्य (और)

शौचम् = बाहर भीतरकी शुद्धि† (एवं)

अद्रोहः = किसीमें भी शत्रु-भावका न होना (और)

नातिमानिता = अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव (यह सब तो)

भारत = हे अर्जुन

दैवीम् = दैवी

संपदम् = संपदाको

अभिजातस्य = प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण

भवन्ति = हैं

* श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं ।

† गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणी देखनी चाहिये ।

संक्षेपसे आसुरी संपदाका कथन।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

दम्भः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च,
अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, संपदम्, आसुरीम् ॥ ४ ॥

और—

पार्थ	=हे पार्थ	पारुष्यम्	=कठोर वाणी (एवं)
दम्भः	=पाखण्ड		
दर्पः	=घमण्ड	अज्ञानम्	=अज्ञान
च	=और	एव	=भी (यह सब)
अभिमानः	=अभिमान	आसुरीम्	=आसुरी
च	=तथा	संपदम्	=संपदाको
क्रोधः	=क्रोध	अभि-	=प्राप्तहुएपुरुषके
च	=और	जातस्य	(लक्षण हैं)

दैवी और आसुरी संपदाका फल।

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥

दैवी, संपत्, विमोक्षाय, निबन्धाय, आसुरी, मता,
मा, शुचः, संपदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पाण्डव ॥ ५ ॥

उन दोनों प्रकारकी संपदाओंमें—

दैवी संपत्	=दैवीसंपदा (तो)	मा शुचः	=शोक मत कर
विमोक्षाय	=मुक्तिके लिये (और)	(यतः)	=क्योंकि (तूं)
आसुरी	=आसुरी (संपदा)	दैवीम्	=दैवी
निबन्धाय	=बांधनेके लिये	संपदम्	=संपदाको
मता	=मानी गयी है		
(अतः)	=इसलिये	अभिजातः	=प्राप्त हुआ
पाण्डव	=हे अर्जुन (तूं)	असि	=है

विस्तारसे आसुरी स्वभाव-वाले पुरुषोंके लक्षण सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा ।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च,
दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु ॥ ६ ॥

और—

पार्थ	=हे अर्जुन	दैवः	=देवोंका स्वभाव
अस्मिन्	=इस	एव	=ही
लोके	=लोकमें	विस्तरशः	=विस्तारपूर्वक
भूतसर्गौ	=भूतोंके स्वभाव	प्रोक्तः	=कहा गया है
द्वौ	=दो प्रकारके	(अतः)	=इसलिये (अब)
(मतौ)	=माने गये हैं (एक तो)	आसुरम्	={असुरोंके स्वभावको भी विस्तारपूर्वक
दैवः	=देवोंके जैसा		
च	=और (दूसरा)		
आसुरः	=असुरोंके जैसा (उनमें)	मे	=मेरेसे
		शृणु	=सुन

आसुरी संपदा-वालोंमें सदाचार-के अभावका कथन ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः,
न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते ॥ ७ ॥

हे अर्जुन—

आसुराः	=आसुरी स्वभाववाले	च	=और
जनाः	=मनुष्य	निवृत्तिम्	={अकर्तव्यकार्यसे निवृत्त होनेको
प्रवृत्तिम्	={कर्तव्यकार्यमें प्रवृत्त होनेको	च	=भी

न =नहीं
विदुः =जानते हैं (इसलिये)
तेषु =उनमें
न =न (तो)
शौचम् =बाहर-भीतरकी शुद्धि है
न =न
आचारः =श्रेष्ठ आचरण है
च =और
न =न
सत्यम् =सत्यभाषण
अपि =ही
विद्यते =है

आसुरी संपदा-वालों की नास्तिकता का कथन।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्, अपरस्परसंभूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

तथा—

ते =वे आसुरी प्रकृति-वाले मनुष्य
आहुः =कहते हैं (कि)
जगत् =जगत्
अप्रतिष्ठम् =आश्रयरहित (और)
असत्यम् =सर्वथा झूठा (एवं)
अनीश्वरम् =बिना ईश्वरके
अपरस्पर-संभूतम् =अपने आप स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है
(अतः) =इसलिये
काम-हैतुकम् =केवल भोगोंको भोगनेके लिये
(एव) =ही (है)
अन्यत् =इसके सिवाय और
किम् =क्या है

आसुरी प्रकृति-वालोंके दुराचार-का वर्णन।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः, प्रभवन्ति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः ॥ ९ ॥

इस प्रकार—

एताम् = इस
दृष्टिम् = मिथ्या ज्ञानको
अवष्टभ्य = अवलम्बन करके
नष्टात्मानः = नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका (तथा)
अल्पबुद्धयः = मन्द है बुद्धि जिनकी (ऐसे वे)
अहिताः = सबका अपकार करनेवाले
उग्रकर्माणः = क्रूरकर्मी मनुष्य (केवल)
जगतः = जगत्‌का
क्षयाय = नाश करनेके लिये ही
प्रभवन्ति = उत्पन्न होते हैं

["] काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥१०॥

कामम्, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दम्भमानमदान्विताः,
मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः ॥१०॥

और वे मनुष्य—

दम्भमानमदान्विताः = दम्भ मान और मदसे युक्त हुए
दुष्पूरम् = किसी प्रकार भी न पूर्ण होनेवाली
कामम् = कामनाओंका
आश्रित्य = आसरा लेकर (तथा)
मोहात् = अज्ञानसे
असद्ग्राहान् = मिथ्या सिद्धान्तोंको
गृहीत्वा = ग्रहण करके
अशुचिव्रताः = भ्रष्ट आचरणोंसे युक्त हुए (संसारमें)
प्रवर्तन्ते = बर्तते हैं

["] चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

चिन्ताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयान्ताम्, उपाश्रिताः,
कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः ॥११॥

तथा वे—

प्रलयान्ताम्	= मरणपर्यन्त रहनेवाली	कामोपभोगपरमाः	= विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर हुए (एवं)
अपरिमेयाम्	= अनन्त	एतावत्	= इतनामात्र ही आनन्द है
चिन्ताम्	= चिन्ताओंको	इति	= ऐसे
उपाश्रिताः	= आश्रय किये हुए	निश्चिताः	= माननेवाले हैं
च	= और		

["] आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥१२॥

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः,
ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसञ्चयान् ॥१२॥

इसलिये—

आशापाशशतैः	= आशारूप सैकड़ों फांसियोंसे	कामभोगार्थम्	= विषयभोगोंकी पूर्तिके लिये
बद्धाः	= बंधे हुए (और)	अन्यायेन	= अन्यायपूर्वक
कामक्रोधपरायणाः	= कामक्रोधके परायण हुए	अर्थसञ्चयान्	= धनादिक बहुत-से पदार्थोंको (संग्रह करनेकी)
		ईहन्ते	= चेष्टा करते हैं

आसुरी प्रकृति-वालोंके ममता और अहंकार-युक्त अनेक मनोरथों का वर्णन ।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्, इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम् ॥१३॥

और उन पुरुषोंके विचार इस प्रकारके होते हैं कि—

मया	=मैंने	मे	=मेरे पास
अद्य	=आज	इदम्	=यह (इतना)
इदम्	=यह (तो)	धनम्	=धन
लब्धम्	=पाया है (और)	अस्ति	=है (और)
इमम्	=इस	पुनः	=फिर
मनोरथम्	=मनोरथको	अपि	=भी
प्राप्स्ये	=प्राप्त होऊंगा (तथा)	इदम्	=यह
		भविष्यति	=होवेगा

["]

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि, ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी ॥१४॥

तथा—

असौ	=वह	हनिष्ये	=मारूंगा (तथा)
शत्रुः	=शत्रु	अहम्	=मैं
मया	=मेरे द्वारा	ईश्वरः	=ईश्वर
हतः	=मारा गया (और)	च	=और
अपरान्	=दूसरे शत्रुओंको	भोगी	=ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूं (और)
अपि	=भी		
अहम्	=मैं	अहम्	=मैं

सिद्धः	= सब सिद्धियोंसे युक्त (एवं)	बलवान्	= बलवान् (और)
		सुखी	= सुखी हूं

["] आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया, यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

तथा मैं—

आढ्यः	= बड़ा धनवान् (और)	अस्ति	= है (मैं)
अभिजनवान्	= बड़े कुटुम्बवाला	यक्ष्ये	= यज्ञ करूंगा
अस्मि	= हूं	दास्यामि	= दान देऊंगा
मया	= मेरे	मोदिष्ये	= हर्षको प्राप्त होऊंगा
सदृशः	= समान	इति	= इस प्रकारके
अन्यः	= दूसरा	अज्ञानविमोहिताः	= अज्ञानसे मोहित हैं
कः	= कौन		

आसुरी प्रकृतिवालोंको घोर नरककी प्राप्ति।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

अनेकचित्तविभ्रान्ताः मोहजालसमावृताः, प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतन्ति, नरके, अशुचौ ॥१६॥

इसलिये वे—

अनेकचित्तविभ्रान्ताः	= अनेक प्रकारसे भ्रमित हुए चित्तवाले (अज्ञानीजन)	मोहजालसमावृताः	= मोहरूप जालमें फंसे हुए (एवं)

कामभोगेषु	= विषयभोगोंमें	अशुचौ	= महान् अपवित्र
प्रसक्ताः	= अत्यन्त आसक्त हुए	नरके	= नरकमें
		पतन्ति	= गिरते हैं

आसुरी प्रकृति-वालोंके लक्षण।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

आत्मसंभाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम् ॥१७॥

तथा—

ते	= वे	अविधि-पूर्वकम्	= शास्त्रविधिसे रहित
आत्म-संभाविताः	= अपने आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले	नामयज्ञैः	= केवल नाम-मात्रके यज्ञों-द्वारा
स्तब्धाः	= घमंडी पुरुष		
धनमान-मदान्विताः	= धन और मानके मदसे युक्त हुए	दम्भेन	= पाखण्डसे
		यजन्ते	= यजन करते हैं

["] **अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।**
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः ॥१८॥

तथा वे—

अहंकारम्	= अहंकार	दर्पम्	= घमंड
बलम्	= बल	कामम्	= कामना

च	=और	आत्म-परदेहेषु	=अपने और दूसरोंके शरीरमें (स्थित)
क्रोधम्	=क्रोधादिके	माम्	=मुझ अन्तर्यामीसे
संश्रिताः	=परायण हुए (एवं)	प्रद्विषन्तः	=द्वेष करनेवाले हैं
अभ्यसूयकाः	=दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष		

द्वेष करनेवाले नराधमों को आसुरी योनिकी प्राप्ति।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्, क्षिपामि, अजस्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु ॥१९॥

ऐसे—

तान्	=उन	संसारेषु	=संसारमें
द्विषतः	=द्वेष करनेवाले	अजस्रम्	=बारम्बार
अशुभान्	=पापाचारी (और)	आसुरीषु	=आसुरी
क्रूरान्	=क्रूरकर्मी	योनिषु	=योनियोंमें
नराधमान्	=नराधमोंको	एव	=ही
अहम्	=मैं	क्षिपामि	=गिराता हूं

अर्थात् शूकर कूकर आदि नीच योनियोंमें ही उत्पन्न करता हूं।

पुनः आसुरी स्वभाववालोंको अधोगति की प्राप्ति।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि, माम्, अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम् ॥२०॥

इसलिये—

कौन्तेय	=हे अर्जुन	मूढाः	=वे मूढ पुरुष

जन्मनि	= जन्म	ततः	= उससे भी
जन्मनि	= जन्ममें	अधमाम्	= अति नीच
आसुरीम्	= आसुरी	गतिम्	= गतिको
योनिम्	= योनिको	एव	= ही
आपन्नाः	= प्राप्त हुए	यान्ति	= प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं
माम्	= मेरेको		
अप्राप्य	= न प्राप्त होकर		

काम, क्रोध और लोभरूप नरकके तीन द्वारोंका कथन।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत् ॥२१॥

और हे अर्जुन—

कामः	= काम	आत्मनः	= आत्माका
क्रोधः	= क्रोध	नाशनम्	= नाश करनेवाले हैं अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं
तथा	= तथा		
लोभः	= लोभ		
इदम्	= यह	तस्मात्	= इससे
त्रिविधम्	= तीन प्रकारके	एतत्	= इन
नरकस्य	= नरकके	त्रयम्	= तीनोंको
द्वारम्	= द्वार*	त्यजेत्	= त्याग देना चाहिये

श्रेयसाधनसे परमगति की प्राप्ति।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

* सर्व अनर्थोंके मूल और नरककी प्राप्तिमें हेतु होनेसे यहां काम, क्रोध और लोभको नरकका द्वार कहा है।

एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः, आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्॥२२॥

क्योंकि—

कौन्तेय	=हे अर्जुन	आचरति	=आचरण करता है†
एतैः	=इन	ततः	=इससे (वह)
त्रिभिः	=तीनों	पराम्	=परम
तमोद्वारैः	=नरकके द्वारोंसे	गतिम्	=गतिको
विमुक्तः	=मुक्त हुआ*	याति	=जाता है अर्थात् मेरेको प्राप्त होता है
नरः	=पुरुष		
आत्मनः	=अपने		
श्रेयः	=कल्याणका		

शास्त्रविधिको त्यागकर इच्छानुकूल बर्तनेवालोंकी निन्दा।

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥२३॥

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः, न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्॥२३॥

और—

यः	=जो पुरुष	वर्तते	=बर्तता है
शास्त्रविधिम्	=शास्त्रकी विधिको	सः	=वह
उत्सृज्य	=त्यागकर	न	=न (तो)
कामकारतः	=अपनी इच्छासे	सिद्धिम्	=सिद्धिको
		अवाप्नोति	=प्राप्त होता है

* अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ।

† अपने उद्धारके लिये भगवत्-आज्ञानुसार बर्तना ही अपने कल्याणका आचरण करना है।

	(और)	न	=न
न	=न	सुखम्	=सुखको (ही)
पराम्	=परम		(प्राप्त होता है)
गतिम्	=गतिको (तथा)		

शास्त्रके अनुकूल कर्म करनेके लिये प्रेरणा।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ,
ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि ॥२४॥

तस्मात्	=इससे	(एवम्)	=ऐसा
ते	=तेरे लिये	ज्ञात्वा	=जानकर (तूं)
इह	=इस	शास्त्रविधानोक्तम्	=शास्त्रविधिसे नियत किये हुए
कार्याकार्यव्यवस्थितौ	=कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें	कर्म	=कर्मको (ही)
शास्त्रम्	=शास्त्र (ही)	कर्तुम्	=करनेके लिये
प्रमाणम्	=प्रमाण है	अर्हसि	=योग्य है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ सप्तदशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से ६ तक श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करनेवालोंका विषय। (७—२२) आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद। (२३—२८) ॐ तत् सत्के प्रयोगकी व्याख्या।

अर्जुन उवाच

शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे पूजन करनेवाले पुरुषोंकी निष्ठाके विषयमें अर्जुन-का प्रश्न।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः, तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अर्जुन बोला—

कृष्ण	=हे कृष्ण	तेषाम्	=उनकी
ये	=जो मनुष्य	निष्ठा	=स्थिति
शास्त्रविधिम्	=शास्त्रविधिको	तु	=फिर
उत्सृज्य	=त्यागकर (केवल)	का	=कौनसी है (क्या)
श्रद्धया	=श्रद्धासे	सत्त्वम्	=सात्त्विकी है
अन्विताः	=युक्त हुए	आहो	=अथवा
यजन्ते	=देवादिकोंका पूजन करते हैं	रजः	=राजसी (किंवा)
		तमः	=तामसी है

श्रीभगवानुवाच

गुणोंके अनुसार तीन प्रकारकी स्वाभाविक श्रद्धाका कथन।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा, सात्त्विकी, राजसी, च, एव, तामसी, च, इति, ताम्, शृणु ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन–

देहिनाम् = मनुष्योंकी
सा = वह (बिना शास्त्रीय संस्कारोंके केवल)
स्वभावजा = स्वभावसे उत्पन्न हुई*
श्रद्धा = श्रद्धा
सात्त्विकी = सात्त्विकी
च = और
राजसी = राजसी
च = तथा
तामसी = तामसी
इति = ऐसे
त्रिविधा = तीनों प्रकारकी
एव = ही
भवति = होती है
ताम् = उसको (तूं)
(मत्तः) = मेरेसे
शृणु = सुन

श्रद्धाके अनुसार पुरुषकी स्थिति-का कथन ।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत, श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः ॥ ३ ॥

भारत = हे भारत
सर्वस्य = सभी मनुष्योंकी
श्रद्धा = श्रद्धा
सत्त्वानुरूपा = उनके अन्तःकरणके अनुरूप
भवति = होती है (तथा)
अयम् = यह
पुरुषः = पुरुष
श्रद्धामयः = श्रद्धामय है
(अतः) = इसलिये
यः = जो पुरुष

* अनन्त जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके सञ्चित संस्कारोंसे उत्पन्न हुई श्रद्धा स्वभावजा श्रद्धा कही जाती है ।

यच्छ्रद्धः	=जैसी श्रद्धावाला है	एव	=भी
सः	=वह स्वयम्	सः	=वही है

अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप है।

देव, यक्ष और प्रेतादिके पूजन-से त्रिविध श्रद्धा-युक्त पुरुषोंकी पहिचान।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥ ४ ॥

यजन्ते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः, प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजन्ते, तामसाः, जनाः ॥ ४ ॥

उनमें—

सात्त्विकाः	=सात्त्विक पुरुष (तो)		(तथा)
देवान्	=देवोंको	अन्ये	=अन्य (जो)
यजन्ते	=पूजते हैं (और)	तामसाः	=तामस
राजसाः	=राजस पुरुष	जनाः	=मनुष्य हैं (वे)
यक्षरक्षांसि	=यक्ष और राक्षसोंको (पूजते हैं)	प्रेतान्	=प्रेत
		च	=और
		भूतगणान्	=भूतगणोंको
		यजन्ते	=पूजते हैं

शास्त्रसे विरुद्ध घोर तप करने-वालोंकी निन्दा।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यन्ते. ये, तपः, जनाः, दम्भाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

और हे अर्जुन—

ये	=जो		(केवल मनोकल्पित)
जनाः	=मनुष्य	घोरम्	=घोर
अशास्त्रविहितम्	=शास्त्रविधिसे रहित	तपः	=तपको
		तप्यन्ते	=तपते हैं (तथा)

दम्भाहंकार-संयुक्ताः	= दम्भ और अहंकारसे युक्त (एवं)	कामराग-बलान्विताः	= कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं

["] **कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।**
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥

कर्षयन्तः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्, च, एव, अन्तःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

तथा जो–

शरीरस्थम्	= शरीररूपसे स्थित	कर्षयन्तः	= कृश करनेवाले हैं†
भूतग्रामम्	= भूतसमुदायको*	तान्	= उन
च	= और	अचेतसः	= अज्ञानियोंको (तूं)
अन्तःशरीरस्थम्	= अन्तःकरणमें स्थित	आसुरनिश्चयान्	= आसुरी स्वभाववाले
माम्	= मुझ अन्तर्यामीको	विद्धि	= जान
एव	= भी		

आहार, यज्ञ, तप और दानके भेदोंको सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा ।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः, यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु ॥ ७ ॥

---

* अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकोंके रूपमें परिणत हुए आकाशादि पांच भूतोंको ।

† शास्त्रसे विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणोंद्वारा शरीरको सुखाना एवं भगवान्‌के अंशस्वरूप जीवात्माको क्लेश देना भूतसमुदायको और अन्तर्यामी परमात्माको कृश करना है ।

और हे अर्जुन ! जैसे श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है वैसे ही—

आहारः = भोजन
अपि = भी
सर्वस्य = सबको (अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार)
त्रिविधः = तीन प्रकारका
प्रियः = प्रिय
भवति = होता है
तु = और
तथा = वैसे ही
यज्ञः = यज्ञ
तपः = तप (और)
दानम् = दान भी (तीन-तीन प्रकारके होते हैं)
तेषाम् = उनके
इमम् = इस
भेदम् = न्यारे-न्यारे भेदको (तूं मेरेसे)
शृणु = सुन

सात्त्विक आहार-के लक्षण।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः,
रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

आयुः = आयु
सत्त्व = बुद्धि
बल = बल
आरोग्य = आरोग्य
सुख = सुख (और)
प्रीति = प्रीतिको
विवर्धनाः = बढ़ानेवाले (एवं)
रस्याः = रसयुक्त
स्निग्धाः = चिकने (और)
स्थिराः = स्थिर रहनेवाले* (तथा)
हृद्याः = स्वभावसे ही मनको प्रिय (ऐसे)
आहाराः = आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ (तो)
सात्त्विकप्रियाः = सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं

* जिस भोजनका सार शरीरमें बहुत कालतक रहता है उसको स्थिर रहनेवाला कहते हैं।

राजस आहारके लक्षण ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः,
आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

और—

कटु	= कड़ुवे	दुःखशोकामयप्रदाः	= दुःख चिन्ता और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले
अम्ल	= खट्टे	आहाराः	= आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
लवण	= लवणयुक्त (और)	राजसस्य	= राजस पुरुषको
अत्युष्ण	= अति गरम (तथा)	इष्टाः	= प्रिय होते हैं
तीक्ष्ण	= तीक्ष्ण		
रूक्ष	= रूखे (और)		
विदाहिनः	= दाहकारक (एवं)		

तामस आहारके लक्षण ।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्,
उच्छिष्टम्, अपि, च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम् ॥ १० ॥

तथा—

यत्	= जो	पूति	= दुर्गन्धयुक्त (एवं)
भोजनम्	= भोजन	पर्युषितम्	= बासी (और)
यातयामम्	= अधपका	उच्छिष्टम्	= उच्छिष्ट है
गतरसम्	= रसरहित	च	= तथा (जो)
च	= और	अमेध्यम्	= अपवित्र

अपि	=भी है	तामस-प्रियम्	=तामस पुरुषको प्रिय होता है
(तत्)	=वह (भोजन)		

सात्त्विक यज्ञके लक्षण।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

अफलाकाङ्क्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते, यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः ॥११॥

और हे अर्जुन—

यः	=जो	मनः	=मनको
यज्ञः	=यज्ञ	समाधाय	=समाधान करके
विधिदृष्टः	=शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ है (तथा)	अफलाकाङ्क्षिभिः	=फलको न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा
यष्टव्यम् एव	=करना ही कर्तव्य है	इज्यते	=किया जाता है
		सः	=वह (यज्ञ तो)
इति	=ऐसे	सात्त्विकः	=सात्त्विक है

राजस यज्ञके लक्षण।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

अभिसन्धाय, तु, फलम्, दम्भार्थम्, अपि, च, एव, यत्, इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम् ॥१२॥

तु	=और	च	=अथवा
भरतश्रेष्ठ	=हे अर्जुन	फलम्	=फलको
यत्	=जो (यज्ञ)	अपि	=भी
दम्भार्थम् एव	=केवल दम्भाचरण-के ही लिये	अभिसन्धाय	=उद्देश्य रखकर
		इज्यते	=किया जाता है

तम् = उस | राजसम् = राजस
यज्ञम् = यज्ञको (तूं) | विद्धि = जान

तामस यज्ञके लक्षण।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मन्त्रहीनम्, अदक्षिणम्, श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते ॥१३॥

तथा—

विधिहीनम् = शास्त्रविधिसे हीन (और)
असृष्टान्नम् = अन्नदानसे रहित (एवं)
मन्त्रहीनम् = बिना मन्त्रोंके
अदक्षिणम् = बिना दक्षिणाके
(और)
श्रद्धाविरहितम् = बिना श्रद्धाके किये हुए
यज्ञम् = यज्ञको
तामसम् = तामस (यज्ञ)
परिचक्षते = कहते हैं

शारीरिक तपके लक्षण।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्, ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते ॥१४॥

तथा हे अर्जुन—

देव = देवता
द्विज = ब्राह्मण
गुरु = गुरु* (और)
प्राज्ञ = ज्ञानी जनोंका
पूजनम् = पूजन (एवं)
शौचम् = पवित्रता
आर्जवम् = सरलता
ब्रह्मचर्यम् = ब्रह्मचर्य
च = और
अहिंसा = अहिंसा

* यहां गुरु शब्दसे माता, पिता, आचार्य और वृद्ध एवं अपनेसे जो किसी प्रकार भी बड़े हों उन सबको समझना चाहिये।

	(यह)	तपः	= तप
शारीरम्	= शरीरसम्बन्धी	उच्यते	= कहा जाता है

वाणीसंबन्धी तपके लक्षण ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्, स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते ॥१५॥

च	= तथा	स्वाध्यायाभ्यसनम्	= वेदशास्त्रोंके पढ़नेका एवं परमेश्वरके नाम जपनेका अभ्यास है
यत्	= जो		
अनुद्वेगकरम्	= उद्वेगको न करनेवाला		
प्रियहितम्	= प्रिय और हितकारक	(तत्)	= वह
	(एवं)	एव	= निःसन्देह
सत्यम्	= यथार्थ	वाङ्मयम्	= वाणीसंबन्धी
वाक्यम्	= भाषण है*	तपः	= तप
च	= और (जो)	उच्यते	= कहा जाता है

मानसिक तपके लक्षण ।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः, भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते ॥१६॥

तथा—

मनःप्रसादः	= मनकी प्रसन्नता		(और)
		सौम्यत्वम्	= शान्तभाव (एवं)

* मन और इन्द्रियोंद्वारा जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा ही कहनेका नाम यथार्थ भाषण है ।

मौनम् = भगवत्-चिन्तन करनेका स्वभाव
आत्म-विनिग्रहः = मनका निग्रह (और)
भाव-संशुद्धिः = अन्तःकरणकी पवित्रता
इति = ऐसे
एतत् = यह
मानसम् = मनसंबन्धी
तपः = तप
उच्यते = कहा जाता है

सात्त्विक तपके लक्षण ।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७॥

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः,
अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते ॥१७॥

परन्तु हे अर्जुन—

अफलाकाङ्क्षिभिः = फलको न चाहनेवाले
युक्तैः = निष्कामी योगी
नरैः = पुरुषोंद्वारा
परया = परम
श्रद्धया = श्रद्धासे
तप्तम् = किये हुए
तत् = उस (पूर्वोक्त)
त्रिविधम् = तीन प्रकारके
तपः = तपको (तो)
सात्त्विकम् = सात्त्विक
परिचक्षते = कहते हैं

राजस तपके लक्षण ।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८॥

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दम्भेन, च, एव, यत्,
क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम् ॥१८॥

च = और
यत् = जो
तपः = तप
सत्कार-मानपूजार्थम् = सत्कार, मान और पूजाके लिये

(वा)	= अथवा	चलम्	= क्षणिक फलवाला (तप)
दम्भेन	= केवल पाखण्डसे	इह	= यहां
एव	= ही	राजसम्	= राजस
क्रियते	= किया जाता है	प्रोक्तम्	= कहा गया है
तत्	= वह		
अध्रुवम्	= अनिश्चित*(और)		

तामस तपके लक्षण।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥१९॥

मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः,
परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम्॥१९॥

और–

यत्	= जो	परस्य	= दूसरेका
तपः	= तप	उत्सादनार्थम्	= अनिष्ट करनेके लिये
मूढग्राहेण	= मूढतापूर्वक हठसे	क्रियते	= किया जाता है
आत्मनः	= मन, वाणी और शरीरकी	तत्	= वह (तप)
पीडया	= पीड़ाके सहित	तामसम्	= तामस
वा	= अथवा	उदाहृतम्	= कहा गया है

सात्त्विक दानके लक्षण।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ २०॥

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे,
देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम् ॥२०॥

---

* अनिश्चित फलवाला उसको कहते हैं कि जिसका फल होने न होनेमें शङ्का हो।

च	=और (हे अर्जुन)	पात्रे	=पात्रके ‡ प्राप्त होनेपर
दातव्यम्	=दान देना ही कर्तव्य है	अनुपकारिणे	=प्रत्युपकार न करनेवालेके लिये
इति	=ऐसे भावसे	दीयते	=दिया जाता है
यत्	=जो	तत्	=वह
दानम्	=दान	दानम्	=दान (तो)
देशे	=देश*	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
काले	=काल†	स्मृतम्	=कहा गया है
च	=और		

राजस दान के लक्षण ।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः,
दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम् ॥२१॥

तु	=और	च	=तथा
यत्	=जो दान	प्रत्युपकारार्थम्	=प्रत्युपकारके प्रयोजनसे×
परिक्लिष्टम्	=क्लेशपूर्वक§		

*-† जिस देश-कालमें जिस वस्तुका अभाव हो वही देश-काल उस वस्तुद्वारा प्राणियोंकी सेवा करनेके लिये योग्य समझा जाता है ।

‡ भूखे, अनाथ, दुखी, रोगी और असमर्थ तथा भिक्षुक आदि तो अन्न, वस्त्र और ओषधि एवं जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो उस वस्तुद्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं और श्रेष्ठ आचरणों-वाले विद्वान् ब्राह्मणजन धनादि सब प्रकारके पदार्थोंद्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं ।

§ जैसे प्रायः वर्तमान समयके चन्दे-चिट्ठे आदिमें धन दिया जाता है।

× अर्थात् बदलेमें अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे ।

वा	=अथवा	तत्	=वह
फलम्	=फलको	दानम्	=दान
उद्दिश्य	=उद्देश्य रखकर*	राजसम्	=राजस
पुनः	=फिर	स्मृतम्	=कहा गया है
दीयते	=दिया जाता है		

तामस दानके लक्षण ।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २ २॥

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते,
असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥२२॥

च	=और	अदेशकाले	=अयोग्य देशकालमें
यत्	=जो	अपात्रेभ्यः	=कुपात्रोंके लिये†
दानम्	=दान	दीयते	=दिया जाता है
असत्कृतम्	=बिना सत्कार किये	तत्	=वह (दान)
(वा)	=अथवा	तामसम्	=तामस
अवज्ञातम्	=तिरस्कारपूर्वक	उदाहृतम्	=कहा गया है

ॐ तत्सत्की महिमा ।

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २ ३॥

ॐतत्सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः,
ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा ॥२३॥

* अर्थात् मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये ।

† अर्थात् मद्य-मांसादि अभक्ष्य वस्तुओंके खानेवालों एवं चोरी, जारी आदि नीच कर्म करनेवालोंके लिये ।

और हे अर्जुन–

ॐ	= ॐ	तेन	= उसीसे
तत्	= तत्	पुरा	= सृष्टिके आदिकालमें
सत्	= सत्	ब्राह्मणाः	= ब्राह्मण
इति	= ऐसे (यह)	च	= और
त्रिविधः	= तीन प्रकारका	वेदाः	= वेद
ब्रह्मणः	= सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका	च	= तथा
निर्देशः	= नाम	यज्ञाः	= यज्ञादिक
स्मृतः	= कहा है	विहिताः	= रचे गये हैं

ओंकारके प्रयोग-की व्याख्या।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥२४॥

तस्मात्, ॐ, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः, प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्॥२४॥

तस्मात्	= इसलिये	सततम्	= सदा
ब्रह्म-वादिनाम्	= वेदको कथन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी	ॐ	= ॐ
		इति	= ऐसे (इस परमात्माके नामको)
विधानोक्ताः	= शास्त्रविधिसे नियत की हुई	उदाहृत्य	= उच्चारण करके (ही)
यज्ञदान-तपःक्रियाः	= यज्ञ, दान और तपरूपक्रियाएं	प्रवर्तन्ते	= आरम्भ होती हैं

तत् शब्दके प्रयोगकी व्याख्या

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥२५॥

तत्, इति, अनभिसंधाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः, दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियन्ते, मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥२५॥

और—

तत्	= तत् अर्थात् तत् नामसे कहे जाने-वाले परमात्माका ही यह सब है	यज्ञतपः-क्रियाः	= यज्ञ तपरूप क्रियाएं
इति	= ऐसे (इस भावसे)	च	= तथा
फलम्	= फलको	दानक्रियाः	= दानरूप क्रियाएं
अनभि-संधाय	= न चाहकर	मोक्ष-काङ्क्षिभिः	= कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा
विविधाः	= नाना प्रकारकी	क्रियन्ते	= की जाती हैं

सत् शब्दके प्रयोग की व्याख्या ।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते, प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते ॥२६॥

और—

सत्	= सत्	प्रयुज्यते	= प्रयोग किया जाता है
इति	= ऐसे	तथा	= तथा
एतत्	= यह (परमात्माका नाम)	पार्थ	= हे पार्थ
सद्भावे	= सत्यभावमें	प्रशस्ते	= उत्तम
च	= और	कर्मणि	= कर्ममें (भी)
साधुभावे	= श्रेष्ठ भावमें	सत्	= सत्

शब्दः	=शब्द	युज्यते	=प्रयोग किया जाता है

["] यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते,
कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते ॥२७॥

च	=तथा	इति	=ऐसे
यज्ञे	=यज्ञ	उच्यते	=कही जाती है
तपसि	=तप	च	=और
च	=और	तदर्थीयम्	= { उस परमात्माके अर्थ किया हुआ
दाने	=दानमें		
(या)	=जो	कर्म	=कर्म
स्थितिः	=स्थिति है	एव	=निश्चयपूर्वक
(सा)	=वह	सत्	=सत् है
एव	=भी	इति	=ऐसे
सत्	=सत् है	अभिधीयते	=कहा जाता है

अश्रद्धासे किये हुए कर्मकी निन्दा ।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्,
असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह ॥२८॥

और—

पार्थ	=हे अर्जुन	तप्तम्	=तपा हुआ
अश्रद्धया	=विना श्रद्धाके	तपः	=तप
हुतम्	= { होमा हुआ हवन (तथा)	च	=और
		यत्	=जो (कुछ भी)
दत्तम्	=दिया हुआ दान (एवं)	कृतम्	=किया हुआ कर्म है

(तत्)	= वह (समस्त)	नो	= न (तो)
असत्	= असत्	इह	= इस लोकमें (लाभदायक है)
इति	= ऐसे	च	= और
उच्यते	= कहा जाता है (इसलिये)	न	= न
तत्	= वह	प्रेत्य	= मरनेके पीछे (ही लाभदायक है)

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सच्चिदानन्दघन परमात्माके नामका निरन्तर चिन्तन करता हुआ निष्कामभावसे केवल परमेश्वरके लिये शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्मोंका परम श्रद्धा और उत्साहके सहित आचरण करे।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

प्रधान विषय—१ से १२ तक त्यागका विषय। (१३—१८) कर्मोंके होनेमें सांख्यसिद्धान्तका कथन। (१९–४०) तीनों गुणोंके अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुखके पृथक्-पृथक् भेद। (४१–४८) फलसहित वर्णधर्मका विषय। (४९–५५) ज्ञाननिष्ठाका विषय। (५६—६६) भक्ति-सहित निष्काम कर्मयोगका विषय। (६७–७८) श्रीगीताजीका माहात्म्य।

अर्जुन उवाच

संन्यास और त्यागका तत्त्व जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

संन्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्, त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन ॥ १ ॥

उसके उपरान्त अर्जुन बोला—

महाबाहो	= हे महाबाहो	हृषीकेश	= हे अन्तर्यामिन्

केशि-निषूदन	= हे वासुदेव (मैं)	तत्त्वम्	= तत्त्वको
संन्यासस्य	= संन्यास	पृथक्	= पृथक्-पृथक्
च	= और	वेदितुम्	= जानना
त्यागस्य	= त्यागके	इच्छामि	= चाहता हूं

श्रीभगवानुवाच

त्यागके विषयमें दूसरोंके ४ सिद्धान्तों का कथन ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, संन्यासम्, कवयः, विदुः, सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः ॥ २ ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णभगवान् बोले, हे अर्जुन ! कितने ही—

कवयः	= पण्डितजन(तो)	(च)	= और (कितने ही)
काम्यानाम्	= काम्य*	विचक्षणाः	= विचारकुशल पुरुष
कर्मणाम्	= कर्मोंके		
न्यासम्	= त्यागको		
संन्यासम्	= संन्यास	सर्वकर्म-फलत्यागम्	= सबकर्मोंकेफल-के त्यागको†
विदुः	= जानते हैं		

* स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तथा रोग-सङ्कटादिकी निवृत्तिके लिये जो यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि कर्म किये जाते हैं, उनका नाम 'काम्यकर्म' है ।

† ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पिता आदि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीरसम्बन्धी खानपान इत्यादिक जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें इस लोक और परलोककी संपूर्ण कामनाओंके त्यागका नाम सब कर्मोंके फलका त्याग है ।

त्यागम् =त्याग	प्राहुः =कहते हैं

["] त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः,
यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे ॥ ३ ॥

तथा—

एके =कई एक	च =और
मनीषिणः=विद्वान्	अपरे =दूसरे विद्वान्
इति =ऐसे	इति =ऐसे
प्राहुः =कहते हैं (कि)	(आहुः) =कहते हैं (कि)
कर्म =कर्म (सभी)	यज्ञदान-तपःकर्म ={ यज्ञ, दान और तपरूप कर्म
दोषवत् =दोषयुक्त हैं (इसलिये)	
त्याज्यम्={ त्यागनेके योग्य हैं	न त्याज्यम् ={ त्यागने योग्य नहीं हैं

त्यागके विषयमें अपना निश्चय कहनेके लिये भगवान् का कथन ।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

निश्चयम्, शृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम,
त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

परन्तु-

भरतसत्तम =हे अर्जुन	मे =मेरे
तत्र =उस	निश्चयम् =निश्चयको
त्यागे ={ त्यागके विषयमें (तूं)	शृणु =सुन
	पुरुषव्याघ्र=हे पुरुषश्रेष्ठ (वह)

त्यागः	=त्याग (सात्त्विक राजस और तामस ऐसे)	त्रिविधः	=तीनों प्रकारका
		हि	=ही
		संप्रकीर्तितः	=कहा गया है

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंके त्यागका निषेध ।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

तथा—

यज्ञदान-तपःकर्म	=यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	यज्ञः	=यज्ञ
न त्याज्यम्	=त्यागनेके योग्य नहीं है (किन्तु)	दानम्	=दान
तत्	=वह	च	=और
एव	=निःसन्देह	तपः	=तप (यह तीनों)
कार्यम्	=करना कर्तव्य है (क्योंकि)	एव	=ही
		मनीषिणाम्	=बुद्धिमान्* पुरुषोंको
		पावनानि	=पवित्र करनेवाले हैं

यज्ञ, दान और तप आदि कर्मोंमें फल तथा आसक्तिके त्यागका कथन ।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम् ॥ ६ ॥

---

* वह मनुष्य बुद्धिमान् है जो कि फल और आसक्तिको त्यागकर केवल भगवत्-अर्थ कर्म करता है ।

इसलिये—

पार्थ	=हे पार्थ	फलानि	=फलोंको
एतानि	=यह यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	त्यक्त्वा	=त्यागकर (अवश्य)
तु	=तथा	कर्तव्यानि	=करने चाहिये
(अन्यानि)	=और	इति	=ऐसा
अपि	=भी	मे	=मेरा
कर्माणि	=संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म	निश्चितम्	=निश्चय किया हुआ
सङ्गम्	=आसक्तिको	उत्तमम्	=उत्तम
च	=और	मतम्	=मत है

तामस त्यागके लक्षण ।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

नियतस्य, तु, संन्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते,
मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

तु	=और (हे अर्जुन)		(इसलिये)
नियतस्य	=नियत*	मोहात्	=मोहसे
कर्मणः	=कर्मका	तस्य	=उसका
संन्यासः	=त्याग करना	परित्यागः	=त्याग करना
न उपपद्यते	=योग्य नहीं है	तामसः	=तामस त्याग
		परिकीर्तितः	=कहा गया है

राजस त्यागके लक्षण ।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्,
सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत् ॥ ८ ॥

---

* इसी अध्यायके श्लोक ४८ की टिप्पणीमें इसका अर्थ देखना चाहिये ।

और यदि कोई मनुष्य—

यत्	=जो (कुछ)	त्यजेत्	=त्याग कर दे (तो)
कर्म	=कर्म है	सः	=वह पुरुष (उस)
(तत्)	=वह (सब)	राजसम्	=राजस
एव	=ही	त्यागम्	=त्यागको
दुःखम्	=दुःखरूप है	कृत्वा	=करके
इति	=ऐसे (समझकर)	एव	=भी
कायक्लेश-भयात्	=शारीरिक क्लेशके भयसे (कर्मोंका)	त्यागफलम्	=त्यागके फलको
		न लभेत्	=प्राप्त नहीं होता है

अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही होता है।

सात्त्विक त्यागके लक्षण।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन, सङ्गम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः॥ ९ ॥

और—

अर्जुन	=हे अर्जुन	सङ्गम्	=आसक्तिको
कार्यम्	=करना कर्तव्य है	च	=और
इति	=ऐसे (समझकर)	फलम्	=फलको
एव	=ही	त्यक्त्वा	=त्यागकर
यत्	=जो	क्रियते	=किया जाता है
नियतम्	=शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ कर्तव्य	सः	=वह
		एव	=ही
कर्म	=कर्म	सात्त्विकः	=सात्त्विक

त्यागः	= त्याग	मतः	= माना गया है

अर्थात् कर्तव्यकर्मोंको स्वरूपसे न त्यागकर उनमें जो आसक्ति और फलका त्यागना है वही सात्त्विक त्याग माना गया है ।

रागद्वेषके त्यागसे त्यागी के लक्षण ।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते, त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः ॥१०॥

और हे अर्जुन ! जो पुरुष—

अकुशलम्	= अकल्याण-कारक	न अनुषज्जते	= आसक्त नहीं होता है (वह)
कर्म	= कर्मसे (तो)	सत्त्व-समाविष्टः	= शुद्ध सत्त्वगुण-से युक्त हुआ पुरुष
न द्वेष्टि	= द्वेष नहीं करता है (और)	छिन्नसंशयः	= संशयरहित
कुशले	= कल्याण-कारक कर्ममें	मेधावी	= ज्ञानवान् (और)
		त्यागी	= त्यागी है

स्वरूपसे सर्व-कर्म त्यागमें अशक्यता का कथन और कर्म-फलके त्यागसे त्यागीका लक्षण।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः, यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते ॥११॥

हि	= क्योंकि	अशेषतः	= संपूर्णतासे
देहभृता	= देहधारी पुरुषके द्वारा	कर्माणि	= सब कर्म
		त्यक्तुम्	= त्यागे जानेको

न शक्यम्	= शक्य नहीं हैं	सः	= वह
(तस्मात्)	= इससे	तु	= ही
यः	= जो पुरुष	त्यागी	= त्यागी है
कर्मफल-त्यागी	= कर्मोंके फलका त्यागी है	इति	= ऐसे
		अभिधीयते	= कहा जाता है

सकामी पुरुषोंको कर्मफलकी प्राप्ति और त्यागी पुरुषोंके लिये सर्वथा कर्मफलके अभावका कथन।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्, भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, संन्यासिनाम्, क्वचित् ॥१२॥

तथा—

अत्यागिनाम्	= सकामी पुरुषोंके	प्रेत्य	= मरनेके पश्चात् (भी)
कर्मणः	= कर्मका (ही)	भवति	= होता है
इष्टम्	= अच्छा	तु	= और
अनिष्टम्	= बुरा	संन्यासिनाम्	= त्यागी* पुरुषोंके (कर्मोंका फल)
च	= और		
मिश्रम्	= मिला हुआ		
(इति)	= ऐसे	क्वचित्	= किसी कालमें भी
त्रिविधम्	= तीन प्रकारका		
फलम्	= फल	न	= नहीं होता—

क्योंकि उनके द्वारा होनेवाले कर्म वास्तवमें कर्म नहीं हैं।

* संपूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें फल, आसक्ति और कर्तापनके अभिमानको जिसने त्याग दिया है उसीका नाम त्यागी है।

संपूर्ण कर्मोंके होनेमें अधिष्ठानादि पञ्च हेतुओं का निरूपण ।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥

पञ्च, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे,
सांख्ये, कृतान्ते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

और—

महाबाहो	= हे महाबाहो	सांख्ये	= सांख्य
सर्वकर्मणाम्	= संपूर्ण कर्मोंकी	कृतान्ते	= सिद्धान्तमें
सिद्धये	= सिद्धिके लिये*	प्रोक्तानि	= कहे गये हैं
एतानि	= यह	(तानि)	= उनको (तूं)
पञ्च	= पांच	मे	= मेरेसे
कारणानि	= हेतु	निबोध	= भली प्रकार जान

[„] अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्,
विविधाः, च, पृथक्, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, पञ्चमम् ॥१४॥

और हे अर्जुन—

अत्र	= इस विषयमें	च	= तथा
अधिष्ठानम्	= आधार†	पृथग्विधम्	= न्यारे न्यारे
च	= और	करणम्	= करण‡
कर्ता	= कर्ता	च	= और

* अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके सिद्ध होनेमें ।

† जिसके आश्रय कर्म किये जायं उसका नाम आधार है ।

‡ जिन-जिन इन्द्रियादिकों और साधनोंके द्वारा कर्म किये जाते हैं उनका नाम करण है ।

विविधाः	=नाना प्रकारकी	एव	=ही
पृथक्	=न्यारी न्यारी	पञ्चमम्	=पांचवां हेतु
चेष्टाः	=चेष्टा (एवं)	दैवम्	=दैव*
तथा	=वैसे		(कहा गया है)

["] शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः॥ १५॥

शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः,
न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, पञ्च, एते, तस्य, हेतवः ॥१५॥

क्योंकि–

नरः	=मनुष्य	यत्	=जो (कुछ)
शरीरवाङ्-मनोभिः	={ मन, वाणी और शरीरसे	कर्म	=कर्म
		प्रारभते	=आरम्भ करता है
न्याय्यम्	=शास्त्रके अनुसार	तस्य	=उसके
वा	=अथवा	एते	=यह
विपरीतम्	=विपरीत	पञ्च	=पांचों (ही)
वा	=भी	हेतवः	=कारण हैं

आत्माको कर्ता माननेवाले की निन्दा ।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥ १६॥

तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः,
पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः ॥१६॥

तु	=परन्तु	यः	=जो पुरुष
एवम्	=ऐसा	अकृत-बुद्धित्वात्	={ अशुद्ध बुद्धि† होनेके कारण
सति	=होनेपर ही		

* पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारोंका नाम दैव है ।
† सत्सङ्ग और शास्त्रके अभ्याससे तथा भगवत्-अर्थ कर्म और उपासनाके

तत्र	= उस विषयमें	पश्यति	= देखता है
केवलम्	= केवल शुद्ध स्वरूप	सः	= वह
आत्मानम्	= आत्माको	दुर्मतिः	= मलिन बुद्धि-वाला अज्ञानी
कर्तारम्	= कर्ता	न पश्यति	= यथार्थ नहीं देखता है

आत्माको अकर्ता माननेवालेकी प्रशंसा।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥१७॥

यस्य, न, अहंकृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते,
हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते॥१७॥

और हे अर्जुन—

यस्य	= जिस पुरुषके (अन्तःकरणमें)	सः	= वह पुरुष
अहंकृतः	= मैं कर्ता हूं (ऐसा)	इमान्	= इन
भावः	= भाव	लोकान्	= सब लोकोंको
न	= नहीं है (तथा)	हत्वा	= मारकर
यस्य	= जिसकी	अपि	= भी (वास्तवमें)
बुद्धिः	= बुद्धि (सांसारिक पदार्थोंमें और संपूर्ण कर्मोंमें)	न	= न (तो)
		हन्ति	= मारता है (और)
न लिप्यते	= लिपायमान नहीं होती	न	= न
		निबध्यते	= पापसे बंधता है*

करनेसे मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध होती है इसलिये जो उपरोक्त साधनोंसे रहित है उसकी बुद्धि अशुद्ध है ऐसा समझना चाहिये।

* जैसे अग्नि, वायु और जलके द्वारा प्रारब्धवश किसी प्राणीकी हिंसा होती देखनेमें आवे तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है, वैसे ही जिस

कर्मप्रेरक और कर्मसंग्रह का निर्णय ।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना, करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसंग्रहः ॥१८॥

तथा हे भारत–

परिज्ञाता	=ज्ञाता*		(और)
ज्ञानम्	=ज्ञान† (और)	कर्ता	=कर्ता§
ज्ञेयम्	=ज्ञेय‡	करणम्	=करण× (और)
त्रिविधा	=यह तीनों (तो)	कर्म	=क्रिया+
कर्मचोदना	=कर्मके प्रेरक हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे तो कर्ममें प्रवृत्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है	इति	=यह
		त्रिविधः	=तीनों
		कर्मसंग्रहः	=कर्मके संग्रह हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे कर्म बनता है

पुरुषका देहमें अभिमान नहीं है और स्वार्थरहित केवल संसारके हितके लिये ही जिसकी सम्पूर्ण क्रियाएं होती हैं उस पुरुषके शरीर और इन्द्रियोंद्वारा यदि किसी प्राणीकी हिंसा होती हुई लोकदृष्टिमें देखी जाय तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है; क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारके न होनेसे किसी प्राणीकी हिंसा हो ही नहीं सकती तथा बिना कर्तृत्व अभिमानके किया हुआ कर्म वास्तवमें अकर्म ही है इसलिये वह पुरुष पापसे नहीं बंधता है ।

* जाननेवालेका नाम ज्ञाता है ।

† जिसके द्वारा जाना जाय उसका नाम ज्ञान है ।

‡ जाननेमें आनेवाली वस्तुका नाम ज्ञेय है ।

§ कर्म करनेवालेका नाम कर्ता है ।

× जिन साधनोंसे कर्म किया जाय उनका नाम करण है ।

\+ करनेका नाम क्रिया है ।

तीनों गुणोंके अनुसार ज्ञान कर्म और कर्ताके भेदोंको सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः,
प्रोच्यते, गुणसंख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि ॥ १९ ॥

उन सबमें—

ज्ञानम् =ज्ञान
च =और
कर्म =कर्म
च =तथा
कर्ता =कर्ता
एव =भी
गुणभेदतः=गुणोंके भेदसे
गुणसंख्याने=सांख्यशास्त्रमें
त्रिधा ={तीन तीन प्रकारसे
प्रोच्यते =कहे गये हैं
तानि =उनको
अपि =भी (तूं मेरेसे)
यथावत् =भली प्रकार
शृणु =सुन

सात्त्विक ज्ञानके लक्षण।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते,
अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम् ॥ २० ॥

हे अर्जुन—

येन =जिस ज्ञानसे (मनुष्य)
विभक्तेषु =पृथक् पृथक्
सर्वभूतेषु =सब भूतोंमें
एकम् =एक
अव्ययम् =अविनाशी
भावम् =परमात्मभावको
अविभक्तम् =विभागरहित (समभावसे स्थित)
ईक्षते =देखता है
तत् =उस
ज्ञानम् =ज्ञानको (तो तूं)
सात्त्विकम् =सात्त्विक
विद्धि =जान

राजस ज्ञानके लक्षण ।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्,
वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम् ॥२१॥

तु	=और	नाना-भावान्	=अनेक भावोंको
यत्	=जो	पृथक्त्वेन	=न्यारा-न्यारा करके
ज्ञानम्	=ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य	वेत्ति	=जानता है
		तत्	=उस
सर्वेषु	=संपूर्ण	ज्ञानम्	=ज्ञानको (तूं)
भूतेषु	= भूतोंमें	राजसम्	=राजस
पृथग्विधान्	= भिन्न-भिन्न प्रकारके	विद्धि	=जान

तामस ज्ञानके लक्षण ।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्,
अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥२२॥

तु	=और	कृत्स्नवत्	=सम्पूर्णताके सदृश
यत्	=जो ज्ञान		
एकस्मिन्	=एक	सक्तम्	=आसक्त है*
कार्ये	=कार्यरूप शरीरमें ही	च	=तथा (जो)
		अहैतुकम्	=बिना युक्तिवाला

* अर्थात् जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा मनुष्य एक क्षणभङ्गुर नाशवान् शरीरको ही आत्मा मानकर उसमें सर्वस्वकी भांति आसक्त रहता है ।

अतत्त्वार्थवत् = तत्त्व अर्थसे रहित (और)
अल्पम् = तुच्छ है
तत् = वह (ज्ञान)
तामसम् = तामस
उदाहृतम् = कहा गया है

सात्त्विक कर्मके लक्षण ।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

नियतम्, सङ्गरहितम्, अरागद्वेषतः, कृतम्, अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते ॥२३॥

तथा हे अर्जुन–

यत् = जो
कर्म = कर्म
नियतम् = शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ (और)
सङ्गरहितम् = कर्तापनके अभिमानसे रहित
अफलप्रेप्सुना = फलको न चाहनेवाले पुरुषद्वारा
अरागद्वेषतः = बिना रागद्वेषसे
कृतम् = किया हुआ है
तत् = वह (कर्म तो)
सात्त्विकम् = सात्त्विक
उच्यते = कहा जाता है

राजस कर्मके लक्षण ।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुनः, क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम् ॥२४॥

तु = और
यत् = जो
कर्म = कर्म
बहुलायासम् = बहुत परिश्रमसे युक्त है
पुनः = तथा
कामेप्सुना = फलको चाहनेवाले
वा = और

साहंकारेण	= अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा	तत्	= वह (कर्म)
क्रियते	= किया जाता है	राजसम्	= राजस
		उदाहृतम्	= कहा गया है

तामस कर्मके लक्षण ।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

अनुबन्धम्, क्षयम, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्,
मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते ॥२५॥

तथा–

यत्	= जो	अनवेक्ष्य	= न विचारकर
कर्म	= कर्म	मोहात्	= केवल अज्ञानसे
अनुबन्धम्	= परिणाम	आरभ्यते	= आरम्भ किया जाता है
क्षयम्	= हानि		
हिंसाम्	= हिंसा	तत्	= वह कर्म
च	= और	तामसम्	= तामस
पौरुषम्	= सामर्थ्यको	उच्यते	= कहा जाता है

सात्त्विक कर्ताके लक्षण ।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥

मुक्तसङ्गः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः,
सिद्ध्यसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते ॥२६॥

तथा हे अर्जुन ! जो कर्ता–

मुक्तसङ्गः	= आसक्तिसे रहित (और)	धृत्युत्साह-समन्वितः	= धैर्य और उत्साह-से युक्त (एवं)
अनहंवादी	= अहंकारके वचन न बोलनेवाला	सिद्ध्य-सिद्ध्योः	= कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें

निर्विकारः	= हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है (वह)	कर्ता	= कर्ता (तो)
		सात्त्विकः	= सात्त्विक
		उच्यते	= कहा जाता है

राजस कर्ताके लक्षण ।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥

रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः, हर्षशोकान्वितः, कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः ॥२७॥

और जो—

रागी	= आसक्तिसे युक्त	अशुचिः	= अशुद्धाचारी (और)
कर्मफल-प्रेप्सुः	= कर्मोंके फलको चाहनेवाला (और)	हर्ष-शोकान्वितः	= हर्ष-शोकसे लिपायमान है (वह)
लुब्धः	= लोभी है (तथा)	कर्ता	= कर्ता
हिंसात्मकः	= दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाव-वाला	राजसः	= राजस
		परिकीर्तितः	= कहा गया है

तामस कर्ताके लक्षण ।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः, विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते ॥२८॥

तथा जो—

अयुक्तः	= विक्षेपयुक्त चित्तवाला	शठः	= धूर्त (और)
प्राकृतः	= शिक्षासे रहित	नैष्कृतिकः	= दूसरेकी आजीविकाका नाशक (एवं)
स्तब्धः	= घमंडी		

विषादी	= शोक करनेके स्वभाववाला	दीर्घसूत्री	= दीर्घसूत्री* है (वह)
अलसः	= आलसी	कर्ता	= कर्ता
च	= और	तामसः	= तामस
		उच्यते	= कहा जाता है

तीनों गुणोंके अनुसार बुद्धि और धृतिके भेदोंको सुननेके लिये भगवान्की आज्ञा।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, शृणु, प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनंजय ॥२९॥

तथा–

धनंजय	= हे अर्जुन (तूं)	भेदम्	= भेद
बुद्धेः	= बुद्धिका	अशेषेण	= संपूर्णतासे
च	= और	पृथक्त्वेन	= विभागपूर्वक
धृतेः	= धारणशक्तिका	(मया)	= मेरेसे
एव	= भी		
गुणतः	= गुणोंके कारण	प्रोच्यमानम्	= कहा हुआ
त्रिविधम्	= तीन प्रकारका	शृणु	= सुन

सात्त्विकी बुद्धिके लक्षण।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये, बन्धम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥३०॥

पार्थ	= हे पार्थ	प्रवृत्तिम्	= प्रवृत्तिमार्ग†

* दीर्घसूत्री उसको कहा जाता है कि जो थोड़े कालमें होने लायक साधारण कार्यको भी फिर कर लेंगे ऐसी आशासे बहुत कालतक नहीं पूरा करता।

† गृहस्थमें रहते हुए फल और आसक्तिको त्यागकर भगवत्-अर्पण-बुद्धिसे केवल लोकशिक्षाके लिये राजा जनककी भांति बर्तनेका नाम प्रवृत्तिमार्ग है।

च = और	बन्धम् = बन्धन
निवृत्तिम् = निवृत्तिमार्गको*	च = और
च = तथा	मोक्षम् = मोक्षको
कार्याकार्ये = कर्तव्य और अकर्तव्यको (एवं)	या = जो बुद्धि
भयाभये = भय और अभयको (तथा)	वेत्ति = तत्त्वसे जानती है
	सा = वह
	बुद्धिः = बुद्धि तो
	सात्त्विकी = सात्त्विकी है

राजसी बुद्धिके लक्षण । यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च, अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी ॥ ३१ ॥

और–

पार्थ = हे पार्थ	च = और
यया = जिस बुद्धिके द्वारा (मनुष्य)	अकार्यम् = अकर्तव्यको
धर्मम् = धर्म	एव = भी
च = और	अयथावत् = यथार्थ नहीं
अधर्मम् = अधर्मको	प्रजानाति = जानता है
च = तथा	सा = वह
कार्यम् = कर्तव्य	बुद्धिः = बुद्धि
	राजसी = राजसी है

* देहाभिमानको त्यागकर केवल सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित हुए श्रीशुकदेवजी और सनकादिकोंकी भांति संसारसे उपराम होकर विचरनेका नाम निवृत्तिमार्ग है ।

तामसी बुद्धिके लक्षण ।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता, सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी ॥३२॥

और—

पार्थ	=हे अर्जुन	च	=तथा (और भी)
या	=जो	सर्वार्थान्	=सम्पूर्ण अर्थोंको
तमसा	=तमोगुणसे	विपरीतान्	=विपरीत ही
आवृता	=आवृत हुई बुद्धि	(मन्यते)	=मानती है
अधर्मम्	=अधर्मको	सा	=वह
धर्मम्	=धर्म	बुद्धिः	=बुद्धि
इति	=ऐसा	तामसी	=तामसी है
मन्यते	=मानती है		

सात्त्विकी धृतिके लक्षण ।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियाक्रयाः, योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥३३॥

और—

पार्थ	=हे पार्थ	अव्यभि-चारिण्या	=अव्यभि-चारिणी*
योगेन	=ध्यानयोगके द्वारा	धृत्या	=धारणासे (मनुष्य)
यया	=जिस		

* भगवत्-विषयके सिवाय अन्य सांसारिक विषयोंको धारण करना ही व्यभिचार-दोष है, उस दोषसे जो रहित है वह अव्यभिचारिणी धारणा है ।

मनः-	मन प्राण और	सा	= वह
प्राणेन्द्रिय-	= इन्द्रियोंकी	धृतिः	= धारणा (तो)
क्रियाः	क्रियाओंको*		
धारयते	= धारण करता है	सात्त्विकी	= सात्त्विकी है

राजसी धृतिके लक्षण ।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन, प्रसङ्गेन, फलाकाङ्क्षी, धृतिः, सा, पार्थ, राजसी ॥ ३४ ॥

तु	= और	धृत्या	= धारणाके द्वारा
पार्थ	= हे पृथापुत्र	धर्मकामार्थान्	= धर्म अर्थ और कामोंको
अर्जुन	= अर्जुन	धारयते	= धारण करता है
फलाकाङ्क्षी	= फलकी इच्छावाला मनुष्य	सा	= वह
प्रसङ्गेन	= अति आसक्तिसे	धृतिः	= धारणा
यया	= जिस	राजसी	= राजसी है

तामसी धृतिके लक्षण ।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम्, एव, च, न, विमुञ्चति, दुर्मेधाः, धृतिः, सा, पार्थ, तामसी ॥ ३५ ॥

तथा—

पार्थ	= हे पार्थ	यया	= जिस
दुर्मेधाः	= दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य	(धृत्या)	= धारणाके द्वारा
		स्वप्नम्	= निद्रा

* मन, प्राण और इन्द्रियोंको भगवत्-प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान और निष्काम कर्मोंमें लगानेका नाम उनकी क्रियाओंको धारण करना है ।

भयम् = भय
शोकम् = चिन्ता
च = और
विषादम् = दुःखको (एवं)
मदम् = उन्मत्तताको
एव = भी
न विमुञ्चति = नहीं छोड़ता है अर्थात् धारण किये रहता है
सा = वह
धृतिः = धारणा
तामसी = तामसी है

तीनों गुणोंके अनुसार सुखके भेदोंको सुननेके लिये भगवान्‌की आज्ञा और सात्त्विक सुखके लक्षण ।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ, अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखान्तम्, च, निगच्छति ॥३६॥

हे अर्जुन--

इदानीम् = अब
सुखम् = सुख
तु = भी (तूं)
त्रिविधम् = तीन प्रकारका
मे = मेरेसे
शृणु = सुन
भरतर्षभ = हे भरतश्रेष्ठ
यत्र = जिस सुखमें
(साधक पुरुष)
अभ्यासात् = भजन ध्यान और सेवादिके अभ्याससे
रमते = रमण करता है
च = और
दुःखान्तम् = दुःखोंके अन्तको
निगच्छति = प्राप्त होता है

["]

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्, तत्, सुखम्, सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

तत् = वह (सुख)
अग्रे = प्रथम साधनके आरम्भकालमें

	(यद्यपि)	आत्मबुद्धि-प्रसादजम्	= भगवत्-विषयक बुद्धि-के प्रसादसे उत्पन्न हुआ
विषम्	= विषके	सुखम्	= सुख है
इव	= सदृश भासता है* (परन्तु)	तत्	= वह
परिणामे	= परिणाममें	सात्त्विकम्	= सात्त्विक
अमृतोपमम्	= अमृतके तुल्य है	प्रोक्तम्	= कहा गया है
(अतः)	= इसलिये		
यत्	= जो		

राजस सुखके लक्षण ।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

विषयेन्द्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्, परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम् ॥३८॥

और—

यत्	= जो	तत्	= वह (यद्यपि)
सुखम्	= सुख	अग्रे	= भोगकालमें
विषयेन्द्रिय-संयोगात्	= विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे	अमृतोपमम्	= अमृतके सदृश (भासता है परन्तु)
(भवति)	= होता है	परिणामे	= परिणाममें
		विषम्	= विषके†

* जैसे खेलमें आसक्तिवाले बालकको विद्याका अभ्यास मूढ़ताके कारण प्रथम विषके तुल्य भासता है वैसे ही विषयोंमें आसक्तिवाले पुरुषको भगवत्-भजन, ध्यान, सेवा आदि साधनोंका अभ्यास मर्म न जाननेके कारण प्रथम विषके सदृश भासता है ।

† बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह और परलोकका नाशक होनेसे विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाले सुखको परिणाममें विषके सदृश कहा है ।

इव	= सदृश है.	राजसम्	= राजस
(अतः)	= इसलिये		
तत्	= वह (सुख)	स्मृतम्	= कहा गया है

तामस सुखके लक्षण ।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

यत्, अग्रे, च, अनुबन्धे, च, सुखम्, मोहनम्, आत्मनः,
निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥३९॥

तथा -

यत्	= जो	तत्	= वह
सुखम्	= सुख	निद्रालस्य-प्रमादोत्थम्	= निद्रा आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न हुआ (सुख)
अग्रे	= भोगकालमें		
च	= और		
अनुबन्धे	= परिणाममें		
च	= भी		
आत्मनः	= आत्माको	तामसम्	= तामस
मोहनम्	= मोहनेवाला है	उदाहृतम्	= कहा गया है

तीनों गुणोंके विषयका उपसंहार ।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः, सत्त्वम्,
प्रकृतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः ॥४०॥

पुनः	= और (हे अर्जुन)	वा	= अथवा
पृथिव्याम्	= पृथिवीमें	देवेषु	= देवताओंमें (ऐसा)
वा	= या	तत्	= वह (कोई भी)
दिवि	= स्वर्गमें	सत्त्वम्	= प्राणी

न =नहीं
अस्ति =है (कि)
यत् =जो
एभिः =इन
प्रकृतिजैः=प्रकृतिसे उत्पन्न हुए
त्रिभिः =तीनों
गुणैः =गुणोंसे
मुक्तम् =रहित
स्यात् =हो

क्योंकि यावन्मात्र सर्व जगत् त्रिगुणमयी मायाका ही विकार है।

वर्णधर्मके विषयका आरम्भ

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परंतप, कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः ॥४१॥

इसलिये—

परंतप =हे परंतप
ब्राह्मण- क्षत्रिय- विशाम् =ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके
च =तथा
शूद्राणाम् =शूद्रोंके (भी)
कर्माणि =कर्म
स्वभाव- प्रभवैः =स्वभावसे उत्पन्न हुए
गुणैः =गुणों करके
प्रविभक्तानि= विभक्त किये गये हैं

अर्थात्, पूर्वकृत् कर्मोंके संस्काररूप स्वभावसे उत्पन्न हुए गुणोंके अनुसार विभक्त किये गये हैं।

ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्मोंका कथन।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२॥

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षान्तिः, आर्जवम्, एव, च, ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम् ॥४२॥

शमः =अन्तःकरणका निग्रह
दमः =इन्द्रियोंका दमन

शौचम्	= बाहर भीतरकी शुद्धि*	ज्ञानम्	= शास्त्रविषयक ज्ञान
तपः	= धर्मके लिये कष्ट सहन करना	च	= और
क्षान्तिः	= क्षमाभाव (एवं)	विज्ञानम्	= परमात्मतत्त्व-का अनुभव
आर्जवम्	= मन इन्द्रियां और शरीरकी सरलता	एव	= भी (ये तो)
आस्तिक्यम्	= आस्तिक बुद्धि	ब्रह्मकर्म स्वभावजम्	= ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं

क्षत्रियके स्वाभाविक कर्मोंका कथन।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपलायनम्, दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

और-

शौर्यम्	= शूरवीरता	अपि	= भी
तेजः	= तेज	अपलायनम्	= न भागनेका स्वभाव (एवं)
धृतिः	= धैर्य		
दाक्ष्यम्	= चतुरता	दानम्	= दान
च	= और	च	= और
युद्धे	= युद्धमें	ईश्वरभावः	= स्वामीभाव†

* गीता अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणीमें देखना चाहिये ।

† अर्थात् निःस्वार्थभावसे सबका हित सोचकर शास्त्राज्ञानुसार शासन-द्वारा प्रेमके सहित पुत्रतुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव ।

	(ये सब)	स्वभावजम्	= स्वाभाविक
क्षात्रम्	= क्षत्रियके	कर्म	= कर्म हैं

वैश्य और शूद्रके स्वाभाविक कर्मोंका कथन।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्, परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

तथा—

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्	= खेती, गौपालन और क्रयविक्रयरूप सत्य व्यवहार* (ये)	परिचर्यात्मकम्	= सब वर्णोंकी सेवा करना (यह)
वैश्यकर्म स्वभावजम्	= वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं (और)	शूद्रस्य	= शूद्रका
		अपि	= भी
		स्वभावजम्	= स्वाभाविक
		कर्म	= कर्म है

स्वाभाविक कर्मोंसे भगवत्-प्राप्तिका कथन और उनकी विधि।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

---

* वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल, नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) वस्तु मिलाकर दे देना अथवा (अच्छी) ले लेना तथा नफा, आढ़त और दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे दूसरेके हकको ग्रहण कर लेना इत्यादिक दोषोंसे रहित जो सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है उसका नाम सत्य-व्यवहार है ।

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः,
स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु ॥४५॥

एवं इस

स्वे	= अपने	यथा	= जिस प्रकारसे
स्वे	= अपने (स्वाभाविक)	स्वकर्म-निरतः	= अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य
कर्मणि	= कर्ममें		
अभिरतः	= लगा हुआ		
नरः	= मनुष्य	सिद्धिम्	= परमसिद्धिको
संसिद्धिम्	= भगवत् प्राप्तिरूप परमसिद्धिको	विन्दति	= प्राप्त होता है
		तत्	= उस विधिको (तूं मेरेसे)
लभते	= प्राप्त होता है (परन्तु)	शृणु	= सुन

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥

यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्,
स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिम्, विन्दति, मानवः ॥४६॥

हे अर्जुन—

यतः	= जिस परमात्मासे	सर्वम्	= सर्व (जगत्)
भूतानाम्	= सर्व भूतोंकी	ततम्	= व्याप्त है*
प्रवृत्तिः	= उत्पत्ति हुई है (और)	तम्	= उस परमेश्वरको
येन	= जिससे	स्वकर्मणा	= अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा
इदम्	= यह		

* जैसे बर्फ जलसे व्याप्त है वैसे ही संपूर्ण संसार सच्चिदानन्दघन परमात्मासे व्याप्त है।

अभ्यर्च्य	=पूजकर*	सिद्धिम्	=परमसिद्धिको
मानवः	=मनुष्य	विन्दति	=प्राप्त होता है

स्वधर्मपालन-की प्रशंसा।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ४७ ॥

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥४७॥

इसलिये—

स्वनुष्ठितात्	=अच्छी प्रकार आचरण किये हुए	स्वभाव-नियतम्	=स्वभावसे नियत किये हुए
परधर्मात्	=दूसरेके धर्मसे	कर्म	=स्वधर्मरूप कर्मको
विगुणः	=गुणरहित	कुर्वन्	=करता हुआ (मनुष्य)
(अपि)	=भी		
स्वधर्मः	=अपना धर्म	किल्बिषम्	=पापको
श्रेयान्	=श्रेष्ठ है	न	=नहीं
(यस्मात्)	=क्योंकि	आप्नोति	=प्राप्त होता

स्वधर्म-त्याग-का निषेध।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

सहजम्, कर्म, कौन्तेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्, सर्वारम्भाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः ॥४८॥

---

* जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको ही सर्वस्व समझकर पतिका चिन्तन करती हुई पतिकी आज्ञानुसार पतिके ही लिये मन, वाणी, शरीरसे कर्म करती है वैसे ही परमेश्वरको ही सर्वस्व समझकर परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार मन, वाणी और शरीरसे परमेश्वरके ही लिये स्वाभाविक कर्तव्यकर्मका आचरण करना कर्मद्वारा परमेश्वरको पूजना है ।

अतएव—

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र
सदोषम् = दोषयुक्त
अपि = भी
सहजम् = स्वाभाविक*
कर्म = कर्मको
न = नहीं
त्यजेत् = त्यागना चाहिये
हि = क्योंकि
धूमेन = धूएंसे
अग्निः = अग्निके
इव = सदृश
सर्वारम्भाः = सब ही कर्म (किसी न किसी)
दोषेण = दोषसे
आवृताः = आवृत हैं

सांख्ययोगसे भगवत्प्राप्तिका कथन ।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः,
नैष्कर्म्यसिद्धिम्, परमाम्, संन्यासेन, अधिगच्छति ॥ ४९ ॥

तथा हे अर्जुन—

सर्वत्र = सर्वत्र
असक्तबुद्धिः = आसक्तिरहित बुद्धिवाला
विगतस्पृहः = स्पृहारहित (और)
जितात्मा = जीते हुए अन्तःकरणवाला पुरुष
संन्यासेन = सांख्ययोगके द्वारा (भी)
परमाम् = परम
नैष्कर्म्यसिद्धिम् = नैष्कर्म्यसिद्धिको
अधिगच्छति = प्राप्त होता है—

अर्थात् क्रियारहित शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिरूप परमसिद्धिको प्राप्त होता है ।

---

* प्रकृतिके अनुसार शास्त्रविधिसे नियत किये हुए जो वर्णाश्रमके धर्म और सामान्य धर्मरूप स्वाभाविक कर्म हैं उनको ही यहां 'स्वधर्म' 'सहज

[ज्ञानयोगके अनुसार भगवत्-प्राप्तिकी विधि-को समझनेके लिये अर्जुनके प्रति भगवान्की आज्ञा।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे,
समासेन, एव, कौन्तेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा ॥५०॥

इसलिये—

कौन्तेय = हे कुन्तीपुत्र
सिद्धिम् = { अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको
प्राप्तः = प्राप्त हुआ पुरुष
यथा = जैसे
(सांख्ययोगके द्वारा)
ब्रह्म = { सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको
आप्नोति = प्राप्त होता है
तथा = तथा
या = जो
ज्ञानस्य = तत्त्वज्ञानकी
परा = परा
निष्ठा = निष्ठा है
(तत्) = उसको
एव = भी (तू)
मे = मेरेसे
समासेन = संक्षेपसे
निबोध = जान

ज्ञानयोगके अनुसार भगवत्-प्राप्तिका पात्र बननेकी विधि।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च,
शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च ॥५१॥

'कर्म' 'स्वकर्म' 'नियतकर्म' 'स्वभावज कर्म' 'स्वभावनियत कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है।

विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः,
ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः ॥५२॥

हे अर्जुन–

विशुद्धया = विशुद्ध
बुद्ध्या = बुद्धिसे
युक्तः = युक्त
विविक्तसेवी = एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला (तथा)
लघ्वाशी = मिताहारी*
यतवाक्कायमानसः = जीते हुए मन वाणी शरीरवाला (और)
वैराग्यम् = दृढ़ वैराग्यको
समुपाश्रितः = भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष
नित्यम् = निरन्तर
ध्यानयोगपरः = ध्यानयोगके परायण हुआ
धृत्या = सात्त्विक धारणासे†
आत्मानम् = अन्तःकरणको
नियम्य = वशमें करके
च = तथा
शब्दादीन् = शब्दादिक
विषयान् = विषयोंको
त्यक्त्वा = त्यागकर
च = और
रागद्वेषौ = रागद्वेषोंको
व्युदस्य = नष्ट करके

["] अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्,
विमुच्य, निर्ममः, शान्तः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥५३॥

* हल्का और अल्प आहार करनेवाला।

† गीता अध्याय १८ श्लोक ३३में जिसका विस्तार है।

तथा—

अहंकारम् = अहंकार
बलम् = बल
दर्पम् = घमंड
कामम् = काम
क्रोधम् = क्रोध (और)
परिग्रहम् = संग्रहको
विमुच्य = त्यागकर
निर्ममः = ममतारहित
(और)
शान्तः = शान्त अन्तः-करण हुआ
ब्रह्मभूयाय = सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये
कल्पते = योग्य होता है

ज्ञानयोगसे परा भक्तिकी प्राप्ति।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, काङ्क्षति,
समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम् ॥५४॥

फिर वह—

ब्रह्मभूतः = सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव-से स्थित हुआ
प्रसन्नात्मा = प्रसन्नचित्त-वाला पुरुष
न = न (तो किसी वस्तुके लिये)
शोचति = शोक करता है (और)
न = न (किसीकी)
काङ्क्षति = आकाङ्क्षा (ही) करता है (एवं)
सर्वेषु = सब
भूतेषु = भूतोंमें
समः = समभाव हुआ*
पराम् मद्भक्तिम् = मेरी परा-भक्तिको†
लभते = प्राप्त होता है

* गीता अध्याय ६ श्लोक २९ में देखना चाहिये ।

† जो तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ

परा भक्तिसे भगवत्-प्राप्ति ।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः,
ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनन्तरम् ॥५५॥

और उस—

भक्त्या	=पराभक्तिके द्वारा	अस्मि	=हूं (तथा)
माम्	=मेरेको	ततः	=उस भक्तिसे
तत्त्वतः	=तत्त्वसे	माम्	=मेरेको
अभिजानाति	=भली प्रकार जानता है (कि)	तत्त्वतः	=तत्त्वसे
(अहम्)	=मैं	ज्ञात्वा	=जानकर
यः	=जो	तदनन्तरम्	=तत्काल ही
च	=और	विशते	=मेरेमें प्रवेश हो जाता है
यावान्	=जिस प्रभाववाला		

अर्थात् अनन्यभावसे मेरेको प्राप्त हो जाता है फिर उसकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवके सिवाय और कुछ भी नहीं रहता ।

भक्तिसहित निष्काम कर्म-योगसे भगवत्-प्राप्ति ।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः,
मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम् ॥५६॥

और—

मद्व्यपाश्रयः	=मेरे परायण हुआ निष्कामकर्मयोगी (तो)	सर्वकर्माणि	=संपूर्ण कर्मोंको

जानना बाकी नहीं रहता वही यहां 'पराभक्ति' 'ज्ञानकी परानिष्ठा' 'परम नैष्कर्म्यसिद्धि' और 'परमसिद्धि' इत्यादि नामोंसे कही गयी है ।

सदा	= सदा	शाश्वतम्	= सनातन
कुर्वाणः	= करता हुआ	अव्ययम्	= अविनाशी
अपि	= भी	पदम्	= परमपदको
मत्प्रसादात्	= मेरी कृपासे	अवाप्नोति	= प्राप्त हो जाता है

भक्तिसहित निष्काम कर्मयोग करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, संन्यस्य, मत्परः, बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव ॥५७॥

इसलिये हे अर्जुन ! तूं—

सर्वकर्माणि	= सब कर्मोंको	बुद्धियोगम्	= समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोगको
चेतसा	= मनसे	उपाश्रित्य	= अवलम्बन करके
मयि	= मेरेमें	सततम्	= निरन्तर
संन्यस्य	= अर्पण करके*	मच्चित्तः	= मेरेमें चित्तवाला
मत्परः	= मेरे परायण हुआ	भव	= हो

भगवत्-चिन्तनसे उद्धार और भगवत्-आज्ञाके त्यागसे अधोगति।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

मच्चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि, अथ, चेत्, त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

इस प्रकार—

त्वम्	= तूं	मच्चित्तः	= मेरेमें निरन्तर मनवाला हुआ

* गीता अध्याय ९ श्लोक २७ में जिसकी विधि कही है ।

मत्प्रसादात् = मेरी कृपासे
सर्वदुर्गाणि = { जन्म मृत्यु आदि सब सङ्कटोंको
(अनायास ही)
तरिष्यसि = तर जायगा
अथ = और
चेत् = यदि
अहंकारात् = { अहंकारके कारण
(मेरे वचनोंको)
न = नहीं
श्रोष्यसि = सुनेगा (तो)
विनङ्क्ष्यसि = { नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगा

बिना इच्छा भी स्वाभाविक कर्मोंके होनेमें प्रकृतिकी प्रबलता-का निरूपण।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

यत्, अहंकारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे,
मिथ्या, एषः, व्यवसायः, ते, प्रकृतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति ॥५९॥

और—

यत् = जो (तूं)
अहंकारम् = अहंकारको
आश्रित्य = अवलम्बन करके
इति = ऐसे
मन्यसे = मानता है (कि)
न योत्स्ये = { मैं युद्ध नहीं करूंगा (तो)
एषः = यह
ते = तेरा
व्यवसायः = निश्चय
मिथ्या = मिथ्या है
(यतः) = क्योंकि
प्रकृतिः = { क्षत्रियपन-का स्वभाव
त्वाम् = तेरेको
नियोक्ष्यति = { जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा

["] स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

स्वभावजेन, कौन्तेय, निबद्धः, स्वेन, कर्मणा, कर्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत् ॥६०॥

और—

कौन्तेय	= हे अर्जुन	अपि	= भी
यत्	= जिस कर्मको (तूं)	स्वेन	= अपने (पूर्वकृत)
मोहात्	= मोहसे	स्वभावजेन	= स्वाभाविक
न	= नहीं	कर्मणा	= कर्मसे
कर्तुम्	= करना	निबद्धः	= बंधा हुआ
इच्छसि	= चाहता है	अवशः	= परवश होकर
तत्	= उसको	करिष्यसि	= करेगा

सबके हृदयमें अन्तर्यामी परमात्मा की व्यापकता का कथन ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति, भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि, मायया ॥६१॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन		(उनके कर्मोंके अनुसार)
यन्त्रारूढानि	= शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए	भ्रामयन्	= भ्रमाता हुआ
सर्वभूतानि	= संपूर्ण प्राणियोंको	सर्वभूतानाम्	= सब भूतप्राणियोंके
ईश्वरः	= अन्तर्यामी परमेश्वर	हृद्देशे	= हृदयमें
मायया	= अपनी मायासे	तिष्ठति	= स्थित है

ईश्वरके शरण होनेके लिये आज्ञा और उसका फल ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत, तत्प्रसादात्, पराम्, शान्तिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम् ॥६२॥

इसलिये—

भारत	=हे भारत	तत्प्रसादात्	=उस परमात्माकी कृपासे (ही)
सर्वभावेन	=सब प्रकारसे	पराम्	=परम
तम्	=उस परमेश्वरकी	शान्तिम्	=शान्तिको (और)
एव	=ही	शाश्वतम्	=सनातन
शरणम्	=अनन्यशरणको*	स्थानम्	=परमधामको
गच्छ	=प्राप्त हो	प्राप्स्यसि	=प्राप्त होगा

उपदेशका उपसंहार ।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया, विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु ॥६३॥

इति	=इस प्रकार (यह)	गुह्यात्	=गोपनीयसे (भी)

* लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर एवं शरीर और संसारमें अहंता, ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्यभावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्‌का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनकी आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मोंका निःस्वार्थभावसे केवल परमेश्वरके लिये आचरण करना यह 'सब प्रकारसे परमात्माके अनन्यशरण' होना है ।

गुह्यतरम्	= अति गोपनीय	विमृश्य	= अच्छी प्रकार विचारके
ज्ञानम्	= ज्ञान		(फिर तूं)
मया	= मैंने	यथा	= जैसे
ते	= तेरे लिये	इच्छसि	= चाहता है
आख्यातम्	= कहा है	तथा	= वैसे ही
एतत्	= इस रहस्ययुक्त ज्ञानको	कुरु	= कर
अशेषेण	= संपूर्णतासे		

अर्थात् जैसी तेरी इच्छा हो वैसे ही कर ।

अर्जुनकी प्रीति-के कारण पुनः उपदेश का आरम्भ ।

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, श्रृणु, मे, परमम्, वचः,
इष्टः, असि, मे, दृढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम् ॥६४॥

इतना कहनेपर भी अर्जुनका कोई उत्तर नहीं मिलनेके कारण श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन—

सर्व-गुह्यतमम्	= संपूर्ण गोपनीयोंसे भी अति गोपनीय	दृढम्	= अतिशय
		इष्टः	= प्रिय
		असि	= है
मे	= मेरे	ततः	= इससे
परमम्	= परम रहस्ययुक्त	इति	= यह
वचः	= वचनको (तूं)	हितम्	= परमहित-कारक वचन (मैं)
भूयः	= फिर (भी)		
श्रृणु	= सुन (क्योंकि तूं)	ते	= तेरे लिये
मे	= मेरा	वक्ष्यामि	= कहूंगा

भगवान्की भक्ति करनेके लिये आज्ञा और उसका फल ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे ॥६५॥

हे अर्जुन ! तूं–

मन्मनाः भव = केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य निरन्तर अचल मनवाला हो (और)

मद्भक्तः (भव) = मुझ परमेश्वरको ही अतिशय श्रद्धा भक्तिसहित निष्कामभावसे नाम, गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और पठनपाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो (तथा)

मद्याजी (भव) = मेरा (शङ्ख चक्र गदा पद्म और किरीट कुण्डल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर वनमाला और कौस्तुभ-मणिधारी विष्णुका) मन वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो (और)

माम् = मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति बल ऐश्वर्य माधुर्य गम्भीरता उदारता वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको

नमस्कुरु = विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर

(एवम्) = ऐसा करनेसे (तूं)

माम् = मेरेको

एव = ही

एष्यसि	=प्राप्त होगा (यह मैं)	(यतः)	= क्योंकि (तूं)
ते	=तेरे लिये	मे	= मेरा
सत्यम्	=सत्य	प्रियः	= अत्यन्त प्रिय (सखा)
प्रतिजाने	= प्रतिज्ञा करता हूं	असि	= है

सर्व धर्मोंका आश्रय त्यागकर केवल भगवत्-शरण होनेके लिये आज्ञा।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६ ६ ॥

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,
अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः ॥६६॥

इसलिये—

सर्व-धर्मान्	= सर्व धर्मोंको अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके आश्रयको	शरणम्	= अनन्य शरणको*
		व्रज	= प्राप्त हो
परित्यज्य	= त्यागकर	अहम्	= मैं
		त्वा	= तेरेको
एकम्	= केवल एक	सर्वपापेभ्यः	= संपूर्ण पापोंसे
माम्	= मुझ सच्चिदानन्द-घन वासुदेव परमात्माकी ही	मोक्षयिष्यामि	= मुक्त कर दूंगा
		मा शुचः	= तूं शोक मत कर

अपात्रके प्रति श्रीगीताजी का उपदेश करनेके लिये निषेध।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६ ७ ॥

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन,
न, च, अशुश्रूषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति ॥६७॥

---

* इसी अध्यायके श्लोक ६२की टिप्पणीमें अनन्यशरणका भाव देखना चाहिये ।

हे अर्जुन ! इस प्रकार—

ते	= तेरे (हितके लिये कहे हुए)	च	= तथा
		न	= न
इदम्	= इस गीतारूप परम रहस्यको	अशुश्रूषवे	= बिना सुननेकी इच्छावालेके ही प्रति
कदाचन	= किसी कालमें भी		
न	= न (तो)	(वाच्यम्)	= कहना चाहिये (एवं)
अतपस्काय	= तपरहित मनुष्यके प्रति	यः	= जो
		माम्	= मेरी
वाच्यम्	= कहना चाहिये	अभ्यसूयति	= निन्दा करता है
च	= और		
न	= न	(तस्मै)	= उसके प्रति भी
अभक्ताय	= भक्ति* रहितके प्रति	न	= नहीं कहना चाहिये

परन्तु जिनमें यह सब दोष नहीं हों ऐसे भक्तोंके प्रति प्रेमपूर्वक उत्साहके सहित कहना चाहिये ।

श्रीगीताजीके प्रचार का माहात्म्य ।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति, भक्तिम्, मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशयः ॥६८॥

क्योंकि—

यः	= जो पुरुष	मयि	= मेरेमें

* वेद, शास्त्र और परमेश्वर तथा महात्मा और गुरुजनोंमें श्रद्धा, प्रेम और पूज्यभावका नाम भक्ति है ।

परास् = परम
भक्तिम् = प्रेम
कृत्वा = करके
इमम् = इस
परमम् = परम
गुह्यम् = { रहस्ययुक्त गीता शास्त्रको
मद्भक्तेषु = मेरे भक्तोंमें
अभिधास्यति = कहेगा*
(सः) = वह
असंशयः = निःसन्देह
माम् = मेरेको
एव = ही
एष्यति = प्राप्त होगा

["] न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तमः,
भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि ॥६९॥

च = और
न = न (तो)
तस्मात् = उससे बढ़कर
मे = मेरा
प्रियकृत्तमः = { अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला
मनुष्येषु = मनुष्योंमें
कश्चित् = कोई
(अस्ति) = है
च = और
न = न
तस्मात् = उससे बढ़कर
मे = मेरा
प्रियतरः = अत्यन्त प्यारा
भुवि = पृथिवीमें
अन्यः = दूसरा कोई
भविता = होवेगा

श्रीगीताजीके पठन का माहात्म्य । अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

* अर्थात् निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ावेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा ।

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः,
ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः ॥७०॥

च	= तथा (हे अर्जुन)	तेन	= उसके द्वारा
यः	= जो (पुरुष)	अहम्	= मैं
इमम्	= इस	ज्ञानयज्ञेन	= ज्ञानयज्ञसे*
धर्म्यम्	= धर्ममय	इष्टः	= पूजित
आवयोः	= हम दोनोंके	स्याम्	= होऊंगा
संवादम्	= संवादरूप गीताशास्त्रको	इति	= ऐसा
		मे	= मेरा
अध्येष्यते	= पढ़ेगा अर्थात् नित्य पाठ करेगा	मतिः	= मत है

श्रीगीताजीके श्रवण का माहात्म्य ।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥

श्रद्धावान्, अनसूयः, च, शृणुयात्, अपि, यः, नरः, सः, अपि,
मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

तथा—

यः	= जो	शृणुयात् अपि	= श्रवणमात्र भी करेगा
नरः	= पुरुष	सः	= वह
श्रद्धावान्	= श्रद्धायुक्त	अपि	= भी
च	= और	मुक्तः	= पापोंसे मुक्त हुआ
अनसूयः	= दोषदृष्टिसे रहित हुआ (इस गीताशास्त्रका)	पुण्यकर्मणाम्	= उत्तम कर्म करनेवालोंके
		शुभान्	= श्रेष्ठ

* गीता अध्याय ४ श्लोक ३३ का अर्थ देखना चाहिये ।

लोकान् = लोकोंको | प्राप्नुयात् = प्राप्त होवेगा

गीताश्रवणसे अर्जुनका मोह नष्ट हुआ या नहीं यह जानने के लिये भगवान्‌का प्रश्न ।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥७२॥

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा,
कच्चित्, अज्ञानसंमोहः, प्रनष्टः, ते, धनंजय ॥७२॥

इस प्रकार गीताका माहात्म्य कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अर्जुनसे पूछा—

पार्थ = हे पार्थ
कच्चित् = क्या
एतत् = यह (मेरा वचन)
त्वया = तैंने
एकाग्रेण = एकाग्र
चेतसा = चित्तसे
श्रुतम् = श्रवण किया
(और)
धनंजय = हे धनंजय
कच्चित् = क्या
ते = तेरा
अज्ञान-संमोहः = अज्ञानसे उत्पन्न हुआ मोह
प्रनष्टः = नष्ट हुआ

अर्जुन उवाच

अपने मोहका नाश होना स्वीकार करके अर्जुनका भगवत्-आज्ञा माननेकी प्रतिज्ञा करना ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

नष्टः, मोहः, स्मृतिः, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत,
स्थितः, अस्मि, गतसंदेहः, करिष्ये, वचनम्, तव ॥७३॥

इस प्रकार भगवान्‌के पूछनेपर अर्जुन बोला—

अच्युत = हे अच्युत
त्वत्प्रसादात् = आपकी कृपासे
(मम) = मेरा
मोहः = मोह
नष्टः = नष्ट हो गया है (और)
मया = मुझे
स्मृतिः = स्मृति

लब्धा	= प्राप्त हुई है (इसलिये मैं)	अस्मि	= हूं (और)
		तव	= आपकी
गतसंदेहः	= संशयरहित हुआ	वचनम्	= आज्ञा
स्थितः	= स्थित	करिष्ये	= पालन करूंगा

संजय उवाच

श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवाद-की महिमा ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः, संवादम्, इमम्, अश्रौषम्, अद्भुतम्, रोमहर्षणम् ॥७४॥

इसके उपरान्त संजय बोला, हे राजन्—

इति	= इस प्रकार	इमम्	= इस
अहम्	= मैंने	अद्भुतम्	= अद्भुत रहस्ययुक्त (और)
वासुदेवस्य	= श्रीवासुदेवके		
च	= और	रोमहर्षणम्	= रोमाञ्चकारक
महात्मनः	= महात्मा	संवादम्	= संवादको
पार्थस्य	= अर्जुनके	अश्रौषम्	= सुना

["]

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्, योगम्, योगेश्वरात्, कृष्णात्, साक्षात्, कथयतः, स्वयम् ॥७५॥

कैसे कि—

व्यासप्रसादात्	= श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टिद्वारा	अहम्	= मैंने
		एतत्	= इस
		परम्	= परम (रहस्ययुक्त)

गुह्यम्	=गोपनीय	योगेश्वरात्	=योगेश्वर
योगम्	=योगको	कृष्णात्	=श्रीकृष्ण भगवान्से
साक्षात्	=साक्षात्		
कथयतः	=कहते हुए		
स्वयम्	=स्वयम्	श्रुतवान्	=सुना है

श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादसे संजयका हर्षित होना।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

राजन्, संस्मृत्य, संस्मृत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्, केशवार्जुनयोः, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहुः ॥७६॥

इसलिये—

राजन्	=हे राजन्	च	=और
केशवार्जुनयोः	=श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुनके	अद्भुतम्	=अद्भुत
		संवादम्	=संवादको
		संस्मृत्य संस्मृत्य	=पुनः पुनः स्मरण करके (मैं)
इमम्	=इस (रहस्ययुक्त)	मुहुर्मुहुः	=बारम्बार
पुण्यम्	=कल्याणकारक	हृष्यामि	=हर्षित होता हूं

भगवान्के विश्वरूप को स्मरण करके संजयका हर्षित होना।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः॥ ७ ७॥

तत्, च, संस्मृत्य, संस्मृत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरेः, विस्मयः, मे, महान्, राजन्. हृष्यामि, च, पुनः, पुनः ॥७७॥

तथा—

राजन्	=हे राजन्	हरेः	=श्रीहरिके*

* जिसका स्मरण करनेसे पापोंका नाश होता है उसका नाम हरि है।

तत्	=उस	मे	=मेरे चित्तमें
अति	=अति	महान्	=महान्
अद्भुतम्	=अद्भुत	विस्मयः	=आश्चर्य (होता है)
रूपम्	=रूपको	च	=और
च	=भी	(अहम्)	=मैं
संस्मृत्य संस्मृत्य	=पुनः पुनः स्मरण करके	पुनःपुनः	=बारम्बार
		हृष्यामि	=हर्षित होता हूं

श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभाव-का कथन।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः,
तत्र, श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम ॥७८॥

हे राजन् ! विशेष क्या कहूं—

यत्र	=जहां	तत्र	=वहींपर
योगेश्वरः	=योगेश्वर	श्रीः	=श्री
कृष्णः	=श्रीकृष्ण भगवान् हैं	विजयः	=विजय
	(और)	भूतिः	=विभूति (और)
यत्र	=जहां	ध्रुवा	=अचल
धनुर्धरः	=गाण्डीव धनुषधारी	नीतिः	=नीति है
पार्थः	=अर्जुन है	(इति)	=ऐसा
		मम	=मेरा
		मतिः	=मत है

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो
नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

"श्रीमद्भगवद्गीता" यह एक परम रहस्यका विषय है। इसको परम कृपालु श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनको निमित्त करके सभी प्राणियोंके हितके लिये कहा है परन्तु इसके प्रभावको वे ही पुरुष जान सकते हैं कि जो भगवान्‌के शरण होकर श्रद्धा, भक्तिसहित इसका अभ्यास करते हैं, इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको उचित है कि जितना शीघ्र हो सके अज्ञाननिद्रासे चेतकर एवं अपना मुख्य कर्तव्य समझकर श्रद्धा, भक्तिसहित सदा इसका श्रवण, मनन और पठनपाठनद्वारा अभ्यास करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार साधनमें लग जायं। क्योंकि जो मनुष्य श्रद्धा, भक्तिसहित इसका मर्म जाननेके लिये इसके अन्तर प्रवेश करके सदा इसका मनन करते हैं, एवं भगवत्-आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर रहते हैं, उनके अन्तः-करणमें प्रतिदिन नये-नये सद्भाव उत्पन्न होते हैं और वे शुद्धान्तःकरण हुए शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत्-प्राप्ति

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥

श्रीविष्णु

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत्-प्राप्ति

गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी मनुष्य त्यागके द्वारा परमात्माको प्राप्त कर सकता है। परमात्माको प्राप्त करनेके लिये "त्याग" ही मुख्य साधन है। अतएव सात श्रेणियोंमें विभक्त करके त्यागके लक्षण संक्षेपमें लिखे जाते हैं।

(१) निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग।

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य-भोजन और प्रमाद आदि शास्त्रविरुद्ध नीच कर्मोंको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी न करना। यह पहिली श्रेणीका त्याग है।

(२) काम्य कर्मोंका त्याग।

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे एवं रोग-संकटादिकी निवृत्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाले यज्ञ, दान, तप और उपासनादि सकाम कर्मोंको अपने स्वार्थके लिये न करना*। यह दूसरी श्रेणीका त्याग है।

(३) तृष्णाका सर्वथा त्याग।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ

---

* यदि कोई लौकिक अथवा शास्त्रीय ऐसा कर्म संयोगवश प्राप्त हो जाय जो कि स्वरूपसे तो सकाम हो, परंतु उसके न करनेसे किसीको कष्ट पहुँचता हो या कर्म-उपासनाकी परम्परामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो स्वार्थका त्याग करके केवल लोकसंग्रहके लिये उसका कर लेना सकाम कर्म नहीं है।

भी अनित्य पदार्थ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए हों उनके बढ़नेकी इच्छाको भगवत्-प्राप्तिमें बाधक समझकर उसका त्याग करना। यह तीसरी श्रेणीका त्याग है।

(४) स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेका त्याग।

अपने सुखके लिये किसीसे भी धनादि पदार्थोंकी अथवा सेवा करानेकी याचना करना एवं बिना याचनाके दिये हुए पदार्थोंको या की हुई सेवाको स्वीकार करना तथा किसी प्रकार भी किसीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी मनमें इच्छा रखना इत्यादि जो स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेके भाव हैं उन सबका त्याग करना*। यह चौथी श्रेणीका त्याग है।

(५) संपूर्ण कर्तव्यकर्मोंमें आलस्य और फलकी इच्छाका सर्वथा त्याग।

ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीरसंबन्धी खानपान इत्यादि जितने कर्तव्यकर्म हैं उन सबमें आलस्यका और सब प्रकारकी कामनाका त्याग करना।

* यदि कोई ऐसा अवसर योग्यतासे प्राप्त हो जाय कि शरीरसंबन्धी सेवा अथवा भोजनादि पदार्थोंके स्वीकार न करनेसे किसीको कष्ट पहुँचता हो या लोकशिक्षामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो उस अवसरपर स्वार्थका त्याग करके केवल उनकी प्रीतिके लिये सेवादिका स्वीकार करना दोषयुक्त नहीं है; क्योंकि स्त्री, पुत्र और नौकर आदिसे की हुई सेवा एवं बन्धु-बान्धव और मित्र आदिद्वारा दिये हुए भोजनादि पदार्थ स्वीकार न करनेसे उनको कष्ट होना एवं लोक-मर्यादामें बाधा पड़ना सम्भव है।

(क) ईश्वर-भक्तिमें आलस्यका त्याग।

अपने जीवनका परम कर्तव्य मानकर परम दयालु, सबके सुहृद्, परम प्रेमी, अन्तर्यामी परमेश्वरके गुण, प्रभाव और प्रेमकी रहस्यमयी कथाका श्रवण, मनन और पठन-पाठन करना तथा आलस्यरहित होकर उनके परम पुनीत नामका उत्साहपूर्वक ध्यानसहित निरन्तर जप करना।

(ख) ईश्वर-भक्तिमें कामनाका त्याग।

इस लोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंको क्षणभंगुर, नाशवान् और भगवान्की भक्तिमें बाधक समझकर किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये न तो भगवान्से प्रार्थना करना और न मनमें इच्छा ही रखना। तथा किसी प्रकारका संकट आ जानेपर भी उसके निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना न करना अर्थात् हृदयमें ऐसा भाव रखना कि प्राण भले ही चले जायं, परन्तु इस मिथ्या जीवनके लिये विशुद्ध भक्तिमें कलङ्क लगाना उचित नहीं है। जैसे भक्त प्रह्लादने पिताद्वारा बहुत सताये जानेपर भी अपने कष्ट-निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना नहीं की।

अपना अनिष्ट करनेवालोंको भी, "भगवान् तुम्हारा बुरा करें" इत्यादि किसी प्रकारके कठोर शब्दोंसे सराप न देना और उनका अनिष्ट होनेकी मनमें इच्छा भी न रखना।

भगवान्की भक्तिके अभिमानमें आकर किसीको वरदानादि भी न देना, जैसे कि "भगवान् तुम्हें आरोग्य करें" "भगवान् तुम्हारा दुःख दूर करें" "भगवान् तुम्हारी आयु बढ़ावें" इत्यादि।

पत्रव्यवहारमें भी सकाम शब्दोंका लिखना अर्थात् जैसे "अठे उठे श्रीठाकुरजी सहाय छै" "ठाकुरजी बिक्री चलासी" "ठाकुरजी वर्षा करसी" "ठाकुरजी आराम करसी" इत्यादि

सांसारिक वस्तुओंके लिये ठाकुरजीसे प्रार्थना करनेके रूपमें सकाम शब्द मारवाड़ीसमाजमें प्रायः लिखे जाते हैं, वैसे न लिखकर "श्रीपरमात्मादेव आनन्दरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं" "श्रीपरमेश्वरका भजन सार है" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना तथा इसके सिवा अन्य किसी प्रकारसे भी लिखने, बोलने आदिमें सकाम शब्दोंका प्रयोग न करना।

(ग) देवताओंके पूजनमें आलस्य और कामनाका त्याग।

शास्त्रमर्यादासे अथवा लोकमर्यादासे पूजनेके योग्य देवताओंको पूजनेका नियत समय आनेपर उनका पूजन करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है एवं भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना परम कर्तव्य है, ऐसा समझकर उत्साहपूर्वक विधिके सहित उनका पूजन करना एवं उनसे किसी प्रकारकी भी कामना न करना।

उनके पूजनके उद्देश्यसे रोकड़-बहीखाते आदिमें भी सकाम शब्द न लिखना अर्थात् जैसे मारवाड़ीसमाजमें नये बसनेके दिन अथवा दीपमालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करके "श्रीलक्ष्मीजी लाभ मोकलो देसी" "भण्डार भरपूर राखसी" "ऋद्धि सिद्धि करसी" "श्रीकालीजीके आसरे" "श्रीगङ्गाजीके आसरे" इत्यादि बहुतसे सकाम शब्द लिखे जाते हैं वैसे न लिखकर "श्रीलक्ष्मीनारायणजी सब जगह आनन्दरूपसे विराजमान हैं" तथा "बहुत आनन्द और उत्साहके सहित श्रीलक्ष्मीजीका पूजन किया" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना और नित्य रोकड़ नकल आदिके आरम्भ करनेमें भी उपरोक्त रीतिसे ही लिखना।

(घ) माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवामें आलस्य और कामनाका त्याग।

माता, पिता, आचार्य एवं और भी जो पूजनीय पुरुष वर्ण, आश्रम, अवस्था और गुणोंमें किसी प्रकार भी अपनेसे बड़े हों उन

सबकी सब प्रकारसे नित्य सेवा करना और उनको नित्य प्रणाम करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। इस भावको हृदयमें रखते हुए आलस्यका सर्वथा त्याग करके, निष्काम भावसे उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार उनकी सेवा करनेमें तत्पर रहना।

(ङ) यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

पञ्च महायज्ञादि* नित्य कर्म अन्यान्य नैमित्तिक कर्मरूप यज्ञादिका करना, तथा अन्न, वस्त्र, विद्या, औषध और धनादि पदार्थोंके दानद्वारा संपूर्ण जीवोंको यथायोग्य सुख पहुंचानेके लिये मन, वाणी और शरीरसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना तथा अपने धर्मका पालन करनेके लिये हर प्रकारसे कष्ट सहन करना इत्यादि शास्त्रविहित कर्मोंमें इस लोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंकी कामनाका सर्वथा त्याग करके एवं अपना परम कर्तव्य मानकर श्रद्धासहित उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ ही उनका आचरण करना।

(च) आजीविकाद्वारा गृहस्थ-निर्वाहके उपयुक्त कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

आजीविकाके कर्म जैसे वैश्यके लिये कृषि, गोरक्ष्य और वाणिज्यादि कहे हैं वैसे ही जो अपने-अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार शास्त्रमें विधान किये गये हों उन सबके पालनद्वारा संसारका हित करते हुए ही गृहस्थका निर्वाह करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है। इसलिये अपना कर्तव्य मानकर लाभ-हानिको समान समझते हुए सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग करके उत्साहपूर्वक उपरोक्त कर्मोंका करना।†

---

* पञ्च महायज्ञ ये हैं—देवयज्ञ (अग्निहोत्रादि), ऋषियज्ञ (वेद-पाठ, सन्ध्या, गायत्री-जपादि), पितृयज्ञ (तर्पण-श्राद्धादि) मनुष्ययज्ञ (अतिथिसेवा) और भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव)।

† उपरोक्त भावसे करनेवाले पुरुषके कर्म लोभसे रहित होनेके कारण

(छ) शरीरसंबन्धी कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग

शरीर-निर्वाहके लिये शास्त्रोक्त रीतिसे भोजन, वस्त्र और औषधादिके सेवनरूप जो शरीरसंबन्धी कर्म हैं उनमें सब प्रकारके भोगविलासोंकी कामनाका त्याग करके एवं सुख, दुःख, लाभ, हानि और जीवन-मरण आदिको समान समझकर केवल भगवत्-प्राप्तिके लिये ही योग्यताके अनुसार उनका आचरण करना।

पूर्वोक्त चार श्रेणियोंके त्यागसहित इस पांचवीं श्रेणीके त्यागानुसार संपूर्ण दोषोंका और सब प्रकारकी कामनाओंका नाश होकर केवल एक भगवत्-प्राप्तिकी ही तीव्र इच्छाका होना ज्ञानकी पहिली भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

(६) संसारके संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका सर्वथा त्याग

धन, भवन और वस्त्रादि संपूर्ण वस्तुएं तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि संपूर्ण बान्धवजन एवं मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इस लोकके और परलोकके जितने विषय-भोगरूप पदार्थ हैं उन सबको क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्तिका न रहना तथा केवल

उनमें किसी प्रकारका भी दोष नहीं आ सकता; क्योंकि आजीविकाके कर्मोंमें लोभ ही विशेषरूपसे पाप करानेका हेतु है, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि गीता अध्याय १८ श्लोक ४४ की टिप्पणीमें जैसे वैश्यके प्रति वाणिज्यके दोषोंका त्याग करनेके लिये विस्तारपूर्वक लिखा है, उसी प्रकार अपने-अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार संपूर्ण कर्मोंमें सब प्रकारके दोषोंका त्याग करके केवल भगवान्‌की आज्ञा समझकर, भगवान्‌के लिये निष्काम भावसे ही संपूर्ण कर्मोंका आचरण करे।

एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही अनन्यभावसे विशुद्ध प्रेम होनेके कारण मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाली संपूर्ण क्रियाओंमें और शरीरमें भी ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना यह छठी श्रेणीका त्याग है* ।

उक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषोंका संसारके संपूर्ण पदार्थोंमें वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान्‌में ही अनन्य प्रेम हो जाता है। इसलिये उनको भगवान्‌के गुण-प्रभाव और रहस्यसे भरी हुई विशुद्ध प्रेमके विषयकी कथाओंका सुनना-सुनाना और मनन करना तथा एकान्त देशमें रहकर निरन्तर भगवान्‌का भजन, ध्यान और शास्त्रोंके मर्मका विचार करना ही प्रिय लगता है। विषयासक्त मनुष्योंमें रहकर हास्य-विलास, प्रमाद, निन्दा, विषय-भोग और व्यर्थ वार्तादिमें अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी बिताना अच्छा नहीं लगता एवं उनके द्वारा संपूर्ण कर्तव्य कर्म भगवान्‌के स्वरूप और नामका मनन रहते हुए ही बिना आसक्तिके केवल भगवदर्थ होते हैं।

इस प्रकार संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका त्याग होकर केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही विशुद्ध प्रेमका होना ज्ञानकी दूसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

---

* संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग तो तीसरी और पांचवीं श्रेणीके त्यागमें कहा गया, परंतु उपरोक्त त्यागके होनेपर भी उनमें ममता और आसक्ति शेष रह जाती है; जैसे भजन, ध्यान और सत्सङ्गके अभ्याससे भरतमुनिका संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग होनेपर भी हरिणमें और हरिणके पालनरूप कर्ममें ममता और आसक्ति बनी रही। इसलिये संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिके त्यागको छठी श्रेणीका त्याग कहा है।

(७) संसार, शरीर और संपूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासना और अहंभावका सर्वथा त्याग

संसारके संपूर्ण पदार्थ मायाके कार्य होनेसे सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं; ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीरसहित संसारके संपूर्ण पदार्थोंमें और संपूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासनाका सर्वथा अभाव हो जाना अर्थात् अन्तःकरणमें उनके चित्रोंका संस्काररूपसे भी न रहना एवं शरीरमें अहंभावका सर्वथा अभाव होकर मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले संपूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका लेशमात्र भी न रहना यह सातवीं श्रेणीका त्याग है* ।

इस सातवीं श्रेणीके त्यागरूप परवैराग्यको† प्राप्त हुए पुरुषोंके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ संपूर्ण संसारसे अत्यन्त उपराम हो जाती हैं । यदि किसी कालमें कोई सांसारिक फुरना हो भी जाती है तो भी उसके संस्कार नहीं जमते, क्योंकि उनकी एक सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्यभावसे गाढ़ स्थिति निरन्तर बनी रहती है ।

* संपूर्ण संसारके पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका एवं ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर भी उनमें सूक्ष्म वासना और कर्तृत्व अभिमान शेष रह जाता है । इसलिये सूक्ष्म वासना और अहंभावके त्यागको सातवीं श्रेणीका त्याग कहा है ।

† पूर्वोक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषकी तो विषयोंका विशेष संसर्ग होनेसे कदाचित् उनमें कुछ आसक्ति हो भी सकती है, परन्तु इस सातवीं श्रेणीके त्यागी पुरुषका विषयोंके साथ संसर्ग होनेपर भी उनमें आसक्ति नहीं हो सकती; क्योंकि उसके निश्चयमें एक परमात्माके सिवा अन्य कोई वस्तु रहती ही नहीं । इसलिये इस त्यागको परवैराग्य कहा है ।

इसलिये उनके अन्तःकरणमें संपूर्ण अवगुणोंका अभाव होकर अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपैशुनता ५, लज्जा, अमानित्व ६, निष्कपटता, शौच ७, सन्तोष ८, तितिक्षा ९, सत्सङ्ग, सेवा, यज्ञ, दान, तप १०, स्वाध्याय ११, शम १२, दम १३, विनय, आर्जव १४, दया १५, श्रद्धा १६, विवेक १७, वैराग्य १८, एकान्तवास, अपरिग्रह १९, समाधान २०, उपरामता, तेज २१,

---

१ मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना। २ अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसा-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना। ३ चोरीका सर्वथा अभाव। ४ आठ प्रकारके मैथुनोंका अभाव। ५ किसीकी भी निन्दा न करना। ६ सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना। ७ बाहर और भीतरकी पवित्रता (सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी एवं यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल-मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको तो बाहरकी शुद्धि कहते हैं और राग-द्वेष तथा कपटादि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ और शुद्ध हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है)। ८ तृष्णाका सर्वथा अभाव। ९ शीत, उष्ण, सुख, दुःखादि द्वन्द्वोंका सहन करना। १० स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट सहना। ११ वेद और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन। १२ मनका वशमें होना। १३ इन्द्रियोंका वशमें होना। १४ शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता। १५ दुखियोंमें करुणा। १६ वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वास। १७ सत् और असत् पदार्थका यथार्थ ज्ञान। १८ ब्रह्मलोकतकके संपूर्ण पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव। १९ ममत्वबुद्धिसे संग्रहका अभाव। २० अन्तःकरणमें संशय और विक्षेपका अभाव। २१ श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त और नीच

क्षमा १, धैर्य २, अद्रोह ३, अभय ४, निरहंकारता, शान्ति ५ और ईश्वरमें अनन्य भक्ति इत्यादि सद्गुणोंका आविर्भाव स्वभावसे ही हो जाता है।

इस प्रकार शरीरसहित संपूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें वासना और अहंभावका अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें ही एकीभावसे नित्य निरन्तर दृढ़ स्थिति रहना ज्ञानकी तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

उपरोक्त गुणोंमेंसे कितने ही तो पहिली और दूसरी भूमिकामें ही प्राप्त हो जाते हैं, परंतु संपूर्ण गुणोंका आविर्भाव तो प्रायः तीसरी भूमिकामें ही होता है। क्योंकि यह सब भगवत्-प्राप्तिके अति समीप पहुंचे हुए पुरुषोंके लक्षण एवं भगवत्-स्वरूपके साक्षात् ज्ञानमें हेतु हैं; इसीलिये श्रीकृष्ण भगवान्‌ने प्रायः इन्हीं गुणोंको श्रीगीताजीके १३ वें अध्यायमें (श्लोक ७ से ११ तक) ज्ञानके नामसे तथा १६ वें अध्यायमें (श्लोक १ से ३ तक) दैवी संपदाके नामसे कहा है।

तथा उक्त गुणोंको शास्त्रकारोंने सामान्य धर्म माना है। इसलिये मनुष्यमात्रका ही इनमें अधिकार है अतएव उपरोक्त सद्गुणोंका अपने अन्तःकरणमें आविर्भाव करनेके लिये सभीको भगवान्‌के शरण होकर विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः पापाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

१ अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना। २ भारी विपत्ति आनेपर भी अपनी स्थितिसे चलायमान न होना। ३ अपने साथ द्वेष रखनेवालोंमें भी द्वेषका न होना। ४ सर्वथा भयका अभाव। ५ इच्छा और वासनाओंका अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें नित्य-निरन्तर प्रसन्नताका रहना।

उपसंहार

इस लेखमें सात श्रेणियोंके त्यागद्वारा भगवत्-प्राप्तिका होना कहा गया है। उनमें पहिली ५ श्रेणियोंके त्यागतक तो ज्ञानकी प्रथम भूमिकाके लक्षण और छठी श्रेणीके त्यागतक दूसरी भूमिकाके लक्षण तथा सातवीं श्रेणीके त्यागतक तीसरी भूमिकाके लक्षण बताये गये हैं। उक्त तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुआ पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। फिर उसका इस क्षणभङ्गुर नाशवान् अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगे हुए पुरुषका स्वप्नके संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता वैसे ही अज्ञाननिद्रासे जगे हुए पुरुषका भी मायाके कार्यरूप अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। यद्यपि लोक-दृष्टिमें उस ज्ञानी पुरुषके शरीरद्वारा प्रारब्धसे संपूर्ण कर्म होते हुए दिखायी देते हैं एवं उन कर्मोंद्वारा संसारमें बहुत ही लाभ पहुंचता है; क्योंकि कामना, आसक्ति और कर्तृत्व अभिमानसे रहित होनेके कारण उस महात्माके मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए आचरण लोकमें प्रमाणस्वरूप समझे जाते हैं और ऐसे पुरुषोंके भावसे ही शास्त्र बनते हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवको प्राप्त हुआ पुरुष तो इस त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ही है; इसलिये वह न तो गुणोंके कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति और निद्रा आदिके प्राप्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकाङ्क्षा ही करता है, क्योंकि सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति आदिमें एवं मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण आदिमें सर्वत्र

उसका समभाव हो जाता है, इसलिये उस महात्माको न तो किसी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति और अप्रियकी निवृत्तिमें हर्ष होता है, न किसी अप्रियकी प्राप्ति और प्रियके वियोगमें शोक ही होता है। यदि उस धीर पुरुषका शरीर किसी कारणसे शस्त्रों-द्वारा काटा भी जाय या उसको कोई अन्य प्रकारका भारी दुःख आकर प्राप्त हो जाय तो भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें अनन्यभावसे स्थित हुआ पुरुष उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता। क्योंकि उसके अन्तःकरणमें संपूर्ण संसार मृगतृष्णाके जलकी भांति प्रतीत होता है और एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी होनापना नहीं भासता। विशेष क्या कहा जाय, वास्तवमें उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका भाव वह स्वयं ही जानता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियों-द्वारा प्रकट करनेके लिये किसीका भी सामर्थ्य नहीं है। अतएव जितना शीघ्र हो सके, अज्ञाननिद्रासे चेतकर उक्त सात श्रेणियों-में कहे हुए त्यागद्वारा परमात्माको प्राप्त करनेके लिये सत्पुरुषों-की शरण ग्रहण करके उनके कथनानुसार साधन करनेमें तत्पर होना चाहिये। क्योंकि यह अति दुर्लभ मनुष्यका शरीर बहुत जन्मोंके अन्तमें परमदयालु भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। इसलिये नाशवान्, क्षणभङ्गुर संसारके अनित्य भोगोंको भोगनेमें अपने जीवनका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः